खण्ड

1

अपराधशास्त्र : प्रकृति एवं अवधारणा

इकाई-1 5

अपराधशास्त्र का अर्थ, क्षेत्र तथा विषयवस्तु

इकाई-2 23

अपराध की कानूनी तथा समाजशास्त्रीय व्याख्याएँ

इकाई-3 45

अपराध के सामान्य कारण

इकाई-4 61

भारत में अपराध

परामर्श-समिति

: कुलपति - प्रो० ए० के० बख्शी

: निदेशक - डॉ० एम०एन०सिंह

: कुलसचिव - डॉ० ए०के० सिंह

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

1. डॉ० एम० एन० सिंह	निदेशक सामाजिक विज्ञान विद्याशाखा, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विशवविद्यालय, फाफामऊ, इलाहाबाद
2. डा० इति तिवारी -	एसोसिऐट प्रोफेसर, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विशवविद्यालय, फाफामऊ, इलाहाबाद
3. श्री रमेश चन्द्र यादव	(परामर्शदाता) समाजशास्त्र, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विशवविद्यालय, फाफामऊ, इलाहाबाद

लेखक

डॉ० मणीन्द्र कुमार तिवारी	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, डी०ए०वी०कालेज, कानपुर
डा० इति तिवारी	एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, उ०प्र०रा०टण्डन मुक्त विशवविद्यालय, फाफामऊ, इलाहाबाद
श्री रमेश चन्द्र यादव	शैक्षणिक परामर्शदाता -समाजशास्त्र उ०प्र०रा०टण्डन मुक्त विशवविद्यालय, फाफामऊ, इलाहाबाद

सम्पादक

प्रो० जयकान्त तिवारी	अध्यक्ष,समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

परिमापक

प्रो० आभा अवस्थी	अवकाश प्राप्त प्रो० लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
प्रो० जयकान्त तिवारी	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

अनुवाद की स्थिति में

मूल लेखक	**अनुवादक**
मूल सम्पादक	**भाषा सम्पादक**
मूल परिमापक	**परिमापक**

सहयोगी टीम

प्रूफ रीडर

प्रभारी पाठ्य सामग्री लेखन	डॉ० हरीशचन्द्र जायसवाल

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं उपलब्ध कराई गई हैं। वि.वि. इस सामग्री के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

MASY-10\2

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से डॉ आर.के पाण्डेय, कुल सचिव, दारा मुदित एवं पकाशित, 2017

मुदक- चन्दकला यूनिवर्सल प्रा०लि०, 42/7 जवाहर लाला नेहरू रोड, इलाहाबाद

खण्ड-1 : खण्ड परिचय - अपराधशास्त्र : प्रकृति एवं अवधारणा

इस पाठ्यक्रम में अपराधशास्त्र के प्रकृति एवं अवधारणा के मूलभूत तत्वों पर विचार किया गया है। इस काण्ड के अन्तर्गत इकाई 1 से लेकर इकाई 4 तक में अपराध का अर्थ एवं परिभाषा प्रकृति एवं अवधारणा का वर्णन किया गया है।

इकाई 1 के अन्तर्गत अपराधशास्त्र की परिभाषाएँ (कानूनी एवं समाजशास्त्रीय) तथा इसके विभिन्न सम्प्रदायों की चर्चा की गई है। जिसके अन्तर्गत पूर्वशास्त्रीय सम्प्रदाय, शास्त्रीय सम्प्रदाय एवं नवशास्त्रीय सम्प्रदाय का उल्लेख किया गया है। अपराधशास्त्र को विषयवस्तु का विस्तार से वर्णन किया गया है।

अपराध की कानूनी तथा समाजशास्त्रीय व्याख्याएँ इकाई 2 के अन्तर्गत वणित की गई हैं। अपराध के तत्वों का वर्णन तथा अपराध की कानूनी परिभाषा, क्लासिकल विचार, नवीन विचलनवादी विचार, मार्क्सवादी विचार आदि का विस्तृत उल्लेख किया गया है। इसके अन्तर्गत विभिन्न सम्पर्क का सिद्धान्त, अप्रतिमानता का सिद्धान्त, विभिन्न अवसर का सिद्धान्त, अपराधी उपसंस्कृति का सिद्धान्त, बहुकारकीय उपागम का विस्तृत वर्णन किया गया है।

इकाई 3 के अन्तर्गत अपराध के सामान्य कारणों की विस्तृत व्याख्या की गई है। अपराध के वैयक्तिक कारण (आयु, लिंग, शरीर रचना,मानसिक दशा), पारिवारिक कारण, सामाजिक कारण, आर्थिक कारण, राजनैतिक कारणों की व्याख्या की गई है। अन्य कारण (भौगोलिक कारण, समाचार पत्र, चित्रपट,दूरदर्शन, सहशिक्षा) एवं महिलाओं पर बढ़ते अत्याचार के कारणों का वर्णन किया गया है।

भारत में अपराध की रूपरेखा एवं वर्गीकरण की चर्चा इकाई-4 के अन्तर्गत की गई है। सदरलैण्ड का वर्गीकरण, बोंगर का वर्गीकरण, क्लिनार्ड एवं क्विने का वर्गीकरण,हेज के आधार पर भारत में अपराध,साइबर अपराध तथा भारत में अपराध का तथ्यात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इकाई - 1 : अपराधशास्त्र का अर्थ, क्षेत्र तथा विषयवस्तु

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 अपराधशास्त्र का अर्थ

- 1.2.1 अपराधशास्त्र की परिभाषाएं
- 1.2.2 अपराधशास्त्र की कानूनी परिभाषा
- 1.2.3 अपराधशास्त्र की समाजशास्त्रीय परिभाषा

1.3 अपराधशास्त्र के सम्प्रदाय

- 1.3.1 पूर्व शास्त्रीय सम्प्रदाय
  - 1.3.1.1 प्रेत शास्त्रीय सम्प्रदाय
  - 1.3.1.2 स्वतंत्र इच्छा का सम्प्रदाय
- 1.3.2 शास्त्रीय सम्प्रदाय
- 1.3.3 नव शास्त्रीय सम्प्रदाय
- 1.3.4 प्रारूपवादी सम्प्रदाय
  - 1.3.4.1 इटैलियन सम्प्रदाय
  - 1.3.4.2 मानसिक परीक्षण सम्प्रदाय
  - 1.3.4.3 मनोविषलेषणात्मक सम्प्रदाय
- 1.3.5 भौगोलिक सम्प्रदाय
- 1.3.6 सामाजिक सम्प्रदाय
- 1.3.7 समाजशास्त्रीय सम्प्रदाय
- 1.3.8 विविध कारक सम्प्रदाय

1.4 अपराध शास्त्र का क्षेत्र

1.5 अपराध शास्त्र की विषयवस्तु

1.6 सारांश

1.7 बोध प्रश्न

1.8 बोध प्रश्न के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- अपराध शास्त्र की अवधारणा पर चर्चा कर सकेंगे।
- अपराधशास्त्र के विभिन्न सम्प्रदायों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- अपराधशास्त्र का क्षेत्र एवं विषयवस्तु निर्धारित कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में अपराधशास्त्र की अवधारणा उसके विविध आधारों पर परिभाषाओं, क्षेत्र तथा विषयवस्तु की विवेचना की गयी है। अपराध शास्त्र की परिभाषा पर विद्वानों में सहमति नहीं है। अलग-अलग आधारों पर विभिन्न विद्वानों ने अपराध शास्त्र की अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं, जैसे - समाजशास्त्रीय, आर्थिक, भौगोलिक मनोवैज्ञानिक आदि।

मानव जीवन तथा समाज, मानव व्यवहार एवं रीति-रिवाज व सामाजिक मानदण्डों की क्रिया प्रतिक्रिया के द्वारा अपना अस्तित्व बनाये हुए है तथा अपनी पहचान के लिए संघर्षरत है। समाज में व्यक्ति जब तक समाज के निर्धारित मानदण्डों के अनुसार कार्य करता रहता है तब तक सब कुछ ठीक रहता है किन्तु जब समाज की मान्यताओं के विपरीत कार्य करता है तथा उससे समाज को हानि पहुँचती है तो इस प्रकार के समस्त कार्य अपराधी व्यवहार कहलाते हैं।

1.2 अपराधशास्त्र का अर्थ

'अपराधशास्त्र' शब्द का प्रयोग विस्तृत तथा सीमित दोनों अर्थों में किया जाता है। व्यापक अर्थ में कहा जा सकता है कि अपराध शास्त्र वह वैज्ञानिक अध्ययन है जिसके अन्तर्गत वे सभी विषयवस्तु सम्मिलित हैं जो कि अपराध को समझने, रोकने तथा उसकी विधि के विकास से सम्बद्ध है। सीमित अर्थ में कहा जा सकता है कि अपराध शास्त्र वस्तुतः वह अध्ययन है जिसके अन्तर्गत अपराध और अपराध के लिए उत्तरदायी कारणों की व्याख्या और विवेचना होती है। संक्षेप में "अपराध शास्त्र सामाजिक संदर्भ में घटने वाले अपराधों का वैज्ञानिक अध्ययन मात्र है।"

अपराध शास्त्र मानवीय समाज में होने वाले अपराधों का ज्ञान या शास्त्र है। यह एक व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक अध्ययन है जिसमें विभिन्न वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। अपराध शास्त्र का सम्बन्ध मनुष्य के सामाजिक जीवन से होता है। सामाजिक नियम किस-किस प्रकार से बनते हैं? सामाजिक नियमों का उल्लंघन किस प्रकार एवं क्यों होता है? सामाजिक नियमों के उल्लंघन के फलस्वरूप समाज एवं व्यक्तियों की उल्लंघनकर्ता के प्रति क्या प्रतिक्रिया होती है? इन सब बातों का अध्ययन करने वाले शास्त्र को अपराध शास्त्र कहा जाता है।

"अपराध शास्त्र ज्ञान की वह शाखा व शास्त्र है जो अपराधी व्यवहार के कारणों, अपराध के प्रति समाज की प्रतिक्रिया, अपराध के नियंत्रण तथा अपराधियों के सुधार आदि विषयों पर विचार करता हो।

वाल्टर रेक लेसने अपराध शास्त्र का वर्णन इस प्रकार किया "वह विज्ञान जो अपराधी संहिताओं या समाज के नियमों व कानूनों के उल्लंघन का अध्ययन करता हो।"

इस आधार पर अपराध शास्त्री वह है जिसका पेशेवर प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक भूमिका, अपराध की घटना संबंधी वैज्ञानिक अध्ययन व विश्लेषण के सम्बन्ध में हैं।

1.2.1 अपराधशास्त्र की परिभाषा

अपराधशास्त्र ज्ञान की वह शाखा है जो समय तथा परिस्थितियों के साथ विकसित एवं परिवर्तित होती है। अपराध के कारणों, तकनीकों एवं नियंत्रण के तरीकों के साथ-साथ इसकी अपराध पद्धति में बदलाव आना स्वाभाविक है। जिस तरह समाज एवं सामाजिक परिस्थितियाँ स्थिर नहीं हैं, उसी तरह विधि एवं विधि की परिभाषा भी स्थिर नहीं है।' यही कारण है कि आज तक अपराध शास्त्र की परिभाषा को किसी एक सूत्र में नहीं पिरोया जा सकता है।

अपराधशास्त्र की परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं -

"अपराधशास्त्र ज्ञान की वह शाखा है जो अपराध का अध्ययन एक सामाजिक घटना के रूप में करती है।"- सदरलैण्ड

इस प्रकार सदरलैण्ड अपराध का समाज से सम्बन्ध स्थापित करते हुए उसका अध्ययन एक सामाजिक घटना के रूप में करने की बात कहते हैं।

1.2.2 अपराधशास्त्र की कानूनी दृष्टि से परिभाषा

अपराधशास्त्र वह अध्ययन है जिसकी विषय वस्तु में अपराध की व्याख्या और उसके निवारण कानूनी परिभाषा के साथ अपराधियों एवं बाल अपराधियों के दण्ड अथवा उपचार सम्मिलित हैं।" - डी0आर0 टैफ्ट

इस परिभाषा के द्वारा टैफ्ट ने अपराधशास्त्र के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों पहलू को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। टैफ्ट की परिभाषा को आगे बढ़ाते हुए रेकलेस ने कहा है कि - "अपराध शास्त्री जिसका अध्ययन करते हैं, वही अपराध शास्त्र है।"

1.2.3 अपराधशास्त्र की समाजशासत्रीय परिभाषा

इस सन्दर्भ में इलियट की परिभाषा अत्यन्त सार्थक लगती है। एम0ए0 इलियट

के अनुसार "अपराधशास्त्र अपराध और उसके उपचार का वैज्ञानिक अध्ययन है।"

मैनहीम अपराधशास्त्र की परिभाषा दो दृष्टिकोणों से देते हैं। उनके अनुसार - "संकुचित भाव में अपराधशास्त्र अपराधों का ऐसा अध्ययन है जिसमें अपराधों के प्रकार, विस्तार एवं कारण सन्निहित हैं तथा विस्तृत भाव से यह दण्डशास्त्र को अपने में समाहित करते हुए दण्ड व अपराध से संव्यवहार करने वाली प्रणालियों और अपराध निवारण की समस्याओं का अध्ययन है।"

बेब्स्टर ने अपराधशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार दी है - "अपराध का सामाजिक प्रमेय के रूप में वैज्ञानिक अध्ययन अपराध शास्त्र है जिसमें अपराधियों एवं इनके मानसिक गुणों, इनकी आदतों एवं इनके अनुशासन इत्यादि का अध्ययन शामिल है।"

अपराध शास्त्र के अर्थ एवं विभिन्न परिभाषाओं के उपरोक्त विवेचन से उसकी प्रकृति स्पष्ट हो जाती है। अपराध शास्त्र एक वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित अध्ययन है। इसका उद्देश्य समाज में व्याप्त विभिन्न अपराधों का अध्ययन करना एवं उनके उन्मूलन के उपायों की खोज करना है अतः अपराध शास्त्र के समपूर्ण रूप से समझने के लिए अपराध को भी जान लेना अति प्रासंगिक है।

1.3 अपराधशास्त्र के सम्प्रदाय

अपराध के कारणों एवं उनके उपचार के विषय में एक ही विचारधारा के समर्थक और एक मत विद्वानों के समूह को अपराधशास्त्र का सम्प्रदाय कहा जाता है।" - सदरलैण्ड

मुनि हो या मनीषी, दार्शनिक हो या समाजशास्त्री, सभी प्रकार के सामाजिक विद्वानों ने अपराध के कारणों एवं उपायों पर चिन्तन किया है। किसी ने अपराध का कारण भूत-प्रेत, शैतान या असुर का नियंत्रण माना है तो किसी ने मनुष्य की स्वतंत्र एवं स्वच्छन्द इच्छा प्रवृत्ति को उत्तरदायी माना है। किसी ने अपराध के पीछे भौगोलिक वातावरण को उत्तरदायी ठहराया है तो किसी ने सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों को इसके लिए दोषी माना है। अपराधशास्त्र के जो सम्प्रदाय अब तक चर्चित एवं प्रचलित रहे हैं वे मुख्य रूप से निम्नलिखित हैं -

1. पूर्ण शास्त्रीय सम्प्रदाय - (क) प्रेत शास्त्रीय विचारधारा
   (ख) स्वतंत्र इच्छा का सिद्धान्त
2. शास्त्रीय सम्प्रदाय
3. नव-शास्त्री सम्प्रदाय

4. भौगोलिक अथवा परिस्थितिवादी सम्प्रदाय

5. सामाजिक सम्प्रदाय

6. समाजशास्त्रीय सम्प्रदाय

7. प्रारूपवादी सम्प्रदाय - (क) इटैलियन सम्प्रदाय

(ख) मानसिक परीक्षण सम्प्रदाय

(ग) मनोविश्लेषणात्मक सम्प्रदाय

8. विविध कारक अथवा बहुगुण हेतुक सम्प्रदाय ।

1.3.1 पूर्व शास्त्रीय सम्प्रदाय

अपराधशास्त्र का प्राचीनतम सम्प्रदाय पूर्व शास्त्रीय सम्प्रदाय माना जाता है। इसका काल सत्रहवीं अठारहवीं के मध्य रहा। इस सम्प्रदाय की मुख्यतया दो विचारधाराएं रही हैं -

1.3.1.1 (क) प्रेत शास्त्रीय विचारधारा

यह अपराधशास्त्र की सर्वाधिक प्राचीन विचारधारा है इस विचारधारा के समर्थकों के अनुसार अपराधों का मुख्य कारण भूत-प्रेतों का नियंत्रण माना जाता है। हम यह जानते हैं कि मनुष्य स्वभाव से अपराधी नहीं होता है। जन्म के समय वह निष्कपट, निश्छल एवं निष्कलंक होता है, लेकिन कालान्तर में वह दानवीय प्रवृत्तियों से घिर जाता है। भूत प्रेत, शैतान, असुर आदि उस पर नियंत्रण कर लेते हैं यही मनुष्य को अपराध करने के लिए प्रेरित करते हैं। इसके अनुसार -

(क) प्रेतात्मा व्यक्ति में प्रवेश कर लेती है तथा

(ख) प्रेतात्मा द्वारा व्यक्ति को अपने वश में कर लिया जाता है।

इस विचारधारा के समर्थक अपराधों के निवारण के लिए मनुष्य की इन प्रेतात्माओं से मुक्ति की आवश्यकता मानते हैं। इसके लिए वे पूजा पाठ, जादू-टोना आदि की राय लेते हैं।

अगस्ट कॉन्ट इस विचारधारा के प्रमुख समर्थक माने जाते हैं। यह सही है कि आधुनिक विचारधारा के लोग इसमें विश्वास नहीं रखते हैं, लेकिन ग्रामीण अंचल में आज भी इसके असंख्य अन्ध विश्वासी मौजूद हैं।

1.3.1.2 (ख) स्वतंत्र इच्छा का सिद्धान्त

पूर्व शास्त्रीय सम्प्रदाय एक और विचारधारा 'स्वतन्त्र इच्छा' की है। इनके

समर्थकों का मानना है कि मनुष्य में कुछ व्यवहार तो जन्मजात अर्थात स्वाभाविक रूप से होते हैं और कुछ व्यवहार वह अनुकरण से सीखता है। मनुष्य अपने जीवन में कई व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है सबका आचरण एवं व्यवहार एक सा नहीं होता कुछ व्यक्ति सदव्यवहार एवं सदाचरण वाले होते हैं तो कुछ दुराचरण एवं बुरे व्यवहार वाले। व्यक्ति इनमें से किसी का भी अनुकरण करने के लिए स्वतन्त्र होता है, अपनी इस स्वतंत्र इच्छा शक्ति के कारण कुछ व्यक्ति जान बूझकर आपराधिक व्यवहार का चयन करते हैं। ऐसे व्यक्तियों की भावना कलुषित एवं दुराश्यपूर्ण मानी जाती है।

1.3.2 शास्त्रीय सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के समर्थकों का मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति प्रायः वही कार्य करना चाहता है जिसमें उसे सुख प्राप्त होता है वह कष्टों से दूर रहना चाहता है, वह कोई भी कार्य करने से पूर्व सुख-दुख की परिकल्पना कर लेता है, जिस कार्य को करने से उसे अधिकतम सुख की प्राप्ति की सम्भावना होती है वह उसी कार्य को चुनता है। यदि किसी व्यक्ति को दूसरों का घर जलाने में ही सुख मिलता है तो वह वही कार्य करेगा, चाहे वह अपराधी ही क्यों न हो। इसे 'सुखवादी- दर्शन' कहा जाता है, और इसी सुखवादी दर्शन पर यह शास्त्रीय सम्प्रदाय आधारित है।

शास्त्रीय सम्प्रदाय के प्रमुख समर्थक हैं -

(1) **सीजर बेकेरिया** - बेकेरिया ने अपनी पुस्तक 'अपराध एवं दण्ड' के माध्यम से शास्त्रीय सम्प्रदाय की नींव डाली, इसके महत्वपूर्ण बिन्दु निम्न हैं -

(क) अपराध सुखवादी दर्शन पर आधारित है मनुष्य वही कार्य करता है, जिसमें उसे दुख की अपेक्षा सुख अधिक मिलता है, फिर चाहे ऐसा कार्य अपराधी ही क्यों न हो।

(ख) सुख एवं दुख का निर्धारण मनुष्य स्वयं करता है।

(ग) अपराध सम्पूर्ण समाज के प्रति क्षति कारक होता है। कोई अपराध कितना गम्भीर है इस बात का अनुमान इससे लगाया जाता है कि उससे समाज को कितनी क्षति पहुँची है।

(घ) दण्ड का उद्देश्य अपराधों का निवारण होना चाहिए न कि प्रतिशोध

(ङ) मृत्यु दण्ड समाप्त किया जाना चाहिए।

(2) **जैरेमी बेन्थम** - "बेन्थम के समय से आधुनिक काल तक जितने भी सुधार विधि-व्यवस्था में हुए हैं उनमें से मुझे एक भी ऐसा ज्ञात नहीं है जिसकी प्रेरणा बेन्थम से प्राप्त नहीं हे।

बेन्थम ने उपयोगिता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया एवं यह संकेत दिया कि विधि निर्माण का कार्य उपयोगिता के सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए। बेन्थम वैचारिकी का समर्थक था। बेन्थम की धारणा थी कि विधियाँ ऐसी हो जो "अधिकतम लोगों की अधिकतम सुख दे सकें।" उनका उद्देश्य अधिकतम लोगों का अधिकतम कल्याण होना चाहिए। जो व्यक्ति विधियों का उल्लंघन करते हैंवे जन साधारण की सुख समृद्धि में बाधा डालते हैं। बेन्थम ऐसे कार्यों को अपराध मानता है। जहाँ तक अपराध के कारणों का प्रश्न है, बेन्थम की मान्यता यह है कि व्यक्ति कोई भी कार्य करने से पूर्व उस कार्य से मिलने वाले सुख एवं दुख की तुलना करता है और वह वही कार्य करता है जिसमें उसे दुख की अपेक्षा सुख की प्राप्ति अधिक होती है।

बेन्थम के अनुसार "प्रकृति ने मनुष्य को दो सम्प्रभु स्वामियों सुख एवं दुख के अधीन रखा है यह उन्हीं का कर्तव्य है कि वे बताएं कि हमें क्या करना चाहिए तथा यह निर्णय करें कि हम भविष्य में क्या कर सकते हैं।" मानव के समस्त कार्यों की कसौटी बेन्थम उपयोगिता बताते हैं।

जर्मन अपराध शास्त्री फ्यूअर बेकने अपराधों की रोक थाम के लिए विधि को आवश्यक मानते हैं उनके अनुसार दण्ड अपराध के अनुसार होना चाहिए।

1.3.3 नवशास्त्रीय सिद्धान्त

शास्त्रीय सम्प्रदाय की कमियों एवं भ्रान्तियों के परिणामस्वरूप नव-शास्त्रीय सम्प्रदाय का उदय हुआ। नवशास्त्रीय सम्प्रदाय के समर्थकों का यह मत है कि अपराधों का कारण सुख प्राप्ति की भावना या इच्छा शक्ति ही नहीं है अपितु परिस्थितियाँ एवं वैयक्तिक विषमताएँ भी हैं। समान अपराध के लिए समान दण्ड की व्यवस्था को नव शास्त्रीय सम्प्रदाय वाले उचित नहीं मानते। उनका मानना है कि एक शिशु अथवा विकृत चित्त वाले व्यक्ति को प्रौढ़ अथवा स्वस्थचित्त व्यक्ति के बराबर दण्ड देना कभी उचित नहीं हो सकता है।

टैफ्ट - "किशोर आयु, निर्बुद्धि, अक्षम एवं विकृत चित्त वाले अपराधियों के प्रति अन्य अपराधियों की अपेक्षा उदार नीति अपनाना नितान्त आवश्यक है।"

नवशास्त्रीय सम्प्रदाय के समर्थकों में रोसी, गैराल्ड एवं जौली के नाम प्रमुख रूप से जाने जाते हैं।

1.3.4 प्रारूपवादी सम्प्रदाय

मनुष्य की शारीरिक बनावट एवं मानसिक स्थिति को प्रारूपवादी सम्प्रदाय अपराध का प्रमुख कारण मानते हैं। इस सम्प्रदाय के समर्थकों की मान्यता है कि अपराधी

व्यक्ति का व्यक्तित्व सामान्य व्यक्ति से बिल्कुल भिन्न होता है। अपराधी व्यक्ति को आसानी से पहचाना जा सकता है।

(अ) इटैलियन सम्प्रदाय

(ब) मानसिक परीक्षण

(स) मनोविश्लेषणात्मक

1.3.4.1 इटैलियन सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रमुख समर्थक लोम्ब्रासो माने जाते हैं। लोम्ब्रोसो ट्यूरिन विश्वविद्यालय में चिकित्सा शास्त्र के प्राध्यापक थे। उन्होंने सन 1876 ई0 में **अपराधी व्यक्ति** नाम की एक पुस्तक लिखी थी जिसमें अपराधी व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है। उनके विचार मुख्य रूप से इस प्रकार हैं -

(क) अपराधी व्यक्ति जन्म से ही अपराधी होते हैं, वे अपराधी बनते नहीं हैं। अपराधी व्यक्तियों की आकृति सामान्य व्यक्ति की आकृति से बिल्कुल भिन्न होती है।

(ख) अपराधी व्यक्ति को शारीरिक बनावट के आधार पर ही पहचान किया जाता है।

इस प्रकार लोम्ब्रोसो ने शरीर रचना के आधार पर अपराधी की पहचान स्थापित करने का प्रयास किया है।

एनरिको फेरी - एनरिको फेरी लोम्ब्रोसो का शिष्य था। उनका जन्म इटली में हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि - "फेरी यद्यपि अपराध शास्त्री के रूप में लोम्ब्रोसो का शिष्य था लेकिन उससे वह अधिक विद्वान व आधुनिक था।

फेरी ने अपराधियों को पाँच भागों में विभाजित किया है -

क) जन्मजात अर्थात सहज अपराधी

ख) पागल अपराधी

ग) आवेग युक्त अपराधी

घ) यदाकदा अपराधी

ङ) अभ्यस्त अपराधी।

रेफिले गैरो फेलो - गैरोफेलो को भी लोम्ब्रोसो का शिष्य माना जाता है। उन्होंने मनुष्य की चेतना के दो महत्वपूर्ण आधार माना है -

1) करुणा एवं

2) सच्चाई अथवा न्यासिता

जो व्यक्ति इन दोनों भावनाओं का उल्लंघन करता है, अपराधी कहलाता है। इसका स्पष्ट अभिप्राय यह हुआ कि अपराधी व्यक्ति में करूणा एवं सच्चाई का अभाव होता है। करूणा दया का दूसरा नाम है। यह एक मानवीय गुण है जो अपराधी में नहीं पाया जाता है । गैरोफेलो ने अपराधियों को चार श्रेणियों में रखा है -

1) हत्यारे

2) हिंसक अपराधी

3) चोर एवं

4) कामवासनात्मक अपराधी।

1.3.4.2 मानसिक परीक्षण सम्प्रदाय

मानसिक परीक्षण सम्प्रदाय का जनक गोडार्ड को माना जाता है। इस सम्प्रदाय का अभ्युदय हुआ जब लोम्ब्रोसो ने सिद्धान्त की लोकप्रियता कम होने लगी है । गोडार्ड ने अपराधों का कारण एवं अपराधी की पहचान मानसिक दुर्बलता माना है। मानसिक दुर्बलता के कारण व्यक्ति कार्य की प्रकृति एवं उसके परिणामों को समझने में असर्थ होता है और इसी कारण वह अपराध कर बैठता है। मानसिक दुर्बलता मैन्डेलियन यूनिट के रूप में वंशानुक्रम द्वारा प्राप्त होती है।

गोडार्ड ने अपराधी के बीच अन्तर का माध्यम भी मानसिक दुर्बलता को ही बनाया था लेकिन कालान्तर में इसकी भी लोकप्रियता कम होती चली गई।

1.3.4.3 मनोविश्लेषणात्मक सम्प्रदाय

प्रारूप वादी सम्प्रदाय का तीसरा महत्वपूर्ण उपसम्प्रदाय मनोविश्लेषणात्मक सम्प्रदाय के नाम से जाना जाता है। इस उपसम्प्रदाय का प्रादुर्भाव उस समय हुआ जब लोम्ब्रोसो का सिद्धान्त अपनी लोकप्रियता खोने लगा। लोम्ब्रोसो अपराधों का मुख्य कारण शारीरिक विशेषताएं एवं विषमताएं मानता था। यह एक संकुचित विचारधारा मानी गई और आने वाले अपराध शास्त्रियों ने इसे आगे बढ़ाने का विचार किया। मनोविश्लेषणात्मक सम्प्रदाय इसी का परिणाम है।

इस सम्प्रदाय के प्रमुख समर्थक फ्रायड, एडलर, कार्लजुंग ओटोरॉक आदि माने जाते हैं।

फ्रायड (1856-1939) ने अपने जीवन काल में जिस सिद्धान्त को जन्म दिया वह ईडिपस कम्प्लैक्स के नाम से विख्यात है। वह वासना तृप्ति की भावना पर आधारित

है।

फ्रायड के अनुसार सभी प्रकार के अपराधों का कारण अपने निकट सम्बन्धियों के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा है। वह इच्छा बड़ी प्रबल होती है तथा उसका दमन करना कठिन होता है। अपनी इस इच्छा को पूरी करने के लिए व्यक्ति हत्या भी करता है और चोरी थी। अपनी विचारधारा को कार्य बढ़ाते हुए उन्होंने यह कहा कि अचेतन निराशा भी अपराधों का एक मुख्य कारण है। मनुष्य का जीवन संघर्षमय है। उसे अपने कार्यों में कभी सफलता मिलती है तो कभी असफलता। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो असफलाओं से निराश नहीं होते हैं और सफलता के लिए निरन्तर प्रयास एवं संघर्ष करते रहते हैं। सफलता मिलने पर कोई दुष्कृत्य अथवा अपराध नहीं करता लेकिन असफलता से निराश व्यक्ति कोई न कोई अपराध कर बैठता हैं।

एडबर अपराधों का कारण अपराधी मनस मानता है। अपराधी मनस हीनता की भावना से ग्रस्त होता है तथा क्षतिपूर्ति करने की भावना से अपराध का कार्य अपनाता है। साथ ही बच्चों के प्रति अविश्वास की भावना एवं उपेक्षा करना भी अपराधों का एक कारण है।

ओटोरेंक बच्चों को एक कच्ची मिट्टी होने के समरूप की संज्ञा देता है। उसका कहना है कि बच्चों को चाहे तो भगवान बनाया जा सकता है और चाहे तो शैतान। बच्चे विघटित व्यक्तित्व के रूप में पैदा होते हैं। यदि बच्चों का उचित समाजीकरण हो जाता है और उनके दुखों को सहन करने की प्रवृत्ति आ जाती है तो वे अपराधों की ओर नहीं जाते हैं।

वातावरणीय दृष्टिकोण सम्प्रदाय

यह सही है कि मानव मन की प्रवृत्ति उसे अपराधों की ओर धकेलती है, फिर भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि अपराधों के लिए बाह्य जगत एवं वातावरण भी उतना ही जिम्मेदार है। इस तथ्य को सर्वप्रथम उजागर करने वाला यही सम्प्रदाय है। यह सम्प्रदाय तीन उपसम्प्रदायों में विभक्त है -

(1) भौगोलिक अथवा परिस्थितिवादी सम्प्रदाय

(2) सामाजिक अथवा समाजवादी सम्प्रदाय एवं

(3) समाजशास्त्रीय सम्प्रदाय

1.3.5 भौगोलिक अथवा परिस्थिति वादी सम्प्रदाय

यह सम्प्रदाय भौगोलिक वातावरण एवं परिस्थितियों को अपराध का प्रमुख

कारण मानता है। इस सम्प्रदाय के मुख्य विचारक, क्वेटलेट, ग्वेरी, एडोल्फ,मान्टेस्क्यू, लैकेसन आदि माने जाते हैं। इनके अनुसार अनुकूल परिस्थिति, कम भीड़ भाड़ वाले क्षेत्र, अधिक उपजाऊ भूमि वाले क्षेत्र, अनुकूल वर्षा वाले क्षेत्र पर अपराध कम होते हैं जबकि प्रतिकूल परिस्थिति में, अधिक जनसंख्या एवं भीड़ भाड़, कम उपजाऊ जमीन, प्रतिकूल वर्षा वाले क्षेत्र में अपराध अधिक होते हैं।

1.3.6 सामाजिक सम्प्रदाय

अपराध शास्त्र का यह आधुनिक एवं नवीन सम्प्रदाय है। यह आर्थिक व्यवस्था पर आधारित है। इस सम्प्रदाय के विचारक अपराधों का मुख्य कारण आर्थिक दशा मानते हैं । जब समाज में आर्थिक विशेषताएं पायी जाती हैं अमीर एवं निर्धन वर्गों के बीच खाई बढ़ती जाती है बेरोजगारी एवं बेकारी विषम रूप ले लेती है तो आर्थिक शोषण एवं विषमताओं के विरूद्ध समाज के एक वर्ग में आक्रोश पैदा होना स्वाभाविक है और यही आक्रोश अपराधों को जन्म देता है।

मार्क्स, एंजिल्स, बोंगर आदि इस सम्प्रदाय के प्रमुख विचारक माने जाते हैं।

मार्क्स एवं एंजिल्स के अनुसार -

(क) उत्पादन आर्थिक स्वार्थ से प्रेरित होते हैं, और आर्थिक स्वार्थ वर्ग संघर्ष को जन्म देता है। वर्ग संघर्ष से अपराध कार्य होते हैं।

(ख) आर्थिक विषमताएं अपराध की दुष्प्रेरक होती हैं। जिस समाज में आर्थिक विषमताएं अधिक नहीं होती उसमें अपराध कम होते हैं।

1.3.7 समाजशास्त्रीय सम्प्रदाय

अपराध के कारणों को समाज, समूह एवं संगठनों में ढूँढने वाला सम्प्रदाय समाजशास्त्रीय सम्प्रदाय के नाम से माना जाता है। इस सम्प्रदाय के प्रमुख विचारक सदर लैण्ड, रैकलेस, टैक्ट, कैवन आर्गबर्न आदि माने जाते हैं।

सदरलैण्ड इस सम्प्रदाय के मुख्य विचारक एवं अमेरिकी समाजशास्त्री हैं। सदर लैण्ड की मान्यता है कि अपराध सीखे जाते हैं उनका अविष्कार नहीं होता। मनुष्य संगति में रहकर ही अपराध सीखता है। जो कार्य दूसरे व्यक्ति करते हैं उन्हीं को देखकर अपराधी उनका अनुसरण करता है। यह एक प्रक्रिया है जिसे सीखने की प्रक्रिया कहा जाता है।

रैकलेस अपराधों का मुख्य कारण व्यक्तित्व की दुर्बलता मानता है। उनके अनुसार दुर्बल व्यक्तित्व वाला व्यक्ति समाज के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता है और वह अपराध की ओर प्रवृत्त हो जाता हैं।

टैफ्ट अपराधों को संस्कृति की उपज मानता है। उसके अनुसार अपराध सीधे सामाजिक विघटन से सम्बन्धित होते हैं। ऐसे वातावरण में उन लोगों को प्रशंसा की जाती है जो संघर्ष करते हैं और जिनको इसमें सफलता मिलती है।

आगबर्न के मतानुसार समाज में होने वाले परिवर्तन ही अपराध का मुख्य कारण हैं। समाज में परिवर्तन होता है तो उसमें संक्रमण की स्थिति पैदा होती है और ऐसी स्थिति में अपराधों की संख्या में वृद्धि होती है।

1.3.8 विविध कारक सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के विचारकों की यह मान्यता है कि अपराध किसी एक कारण से नहीं किया जाता अपितु उसके पीछे अनेक कारण निहित होते हैं। अब तक के सारे सम्प्रदाय किसी एक कारण विशेष से सम्बन्धित रहे हैं। कोई अपराधों का कारण प्रेतात्मा के नियंत्रण को मानता है तो कोई सुख प्राप्ति की इच्छा शक्ति को। कोई अपराधों का कारण मनुष्य की शारीरिक विषमताओं एवं विशेषताओं में खोजता है तो कोई इसे मानव मन अथवा मस्तिष्क में ढूँढने का प्रयास करता है। कोई अपराधों का कारण सामाजिक परिस्थितियाँ मानता है तो कोई आर्थिक, विविध कारक सम्प्रदाय अपराधों का कारण इन सबका समुच्चय मानता है।

1.4 अपराधशास्त्र का क्षेत्र

अपराध शास्त्र का अध्ययन क्षेत्र निर्धारित करना उतना ही कठिन है जितना इसकी परिभाषा देना। पाषाण युग से परमाणु युग तक जीवन के हर क्षेत्र में बदलाव के साथ अपराध शास्त्र का अध्ययन का क्षेत्र भी बदला है। एक समय था जब अपराध शास्त्र का क्षेत्र अपराधों के कारणों एवं उनके निवारण का पता लगाने तक सीमित था कालान्तर में इनकी तह में जाकर जड़ को खोजने का प्रयास किया गया और अपराधों के निवारण के लिए जड़ को नष्ट करने का उपाय सोचा गया। अपराध निवारण का सुधारवादी दृष्टिकोण इसी का परिणाम है। इस प्रकार लेखक के मत में अपराध शास्त्र के अन्तर्गत आज निम्न बातों का अध्ययन किया जाता है :

1. अपराध क्या है?
2. अपराध क्यों किये जाते हैं?
3. अपराधी मन के क्या कारण हैं? इसमें अपराधी के व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है।
4. अपराधों का निवारण कैसे किया जा सकता है? इसमें दण्ड के साथ साथ

सुधारवादी दृष्टिकोण पर विशेष बल दिया जाता है।

5. अपराध से अपराधी तक कैसे पहुँचा जा सकता है? यह अन्वेषण को सम्मिलित करता है।

सदर लैण्ड, इलियट,रेडजीन विच आदि अपराध शास्त्रियों ने भी अपराध शास्त्र का अध्ययन क्षेत्र निर्धारित करने का सफल प्रयास किया है।

सदर लैण्ड ने अपराध शास्त्र के अध्ययनक्षेत्र में निम्न तीन तत्वों का सम्मिलित किया है -

1. विधि निर्माण की प्रक्रिया
2. विधि उल्लंघन की प्रक्रिया एवं
3. विधि के उल्लंघन से उत्पन्न प्रतिक्रिया

इन्हीं तत्वों के आधार पर सदर लैण्ड ने अपराध शास्त्र को भी तीन भागों में वर्गीकृत किया है -

1. विधि का समाजशास्त्र
2. आपराधिक हेतु विज्ञान
3. दण्ड शास्त्र

विधि का समाज शास्त्र विधि के निर्माण एवं आपराधिक हेतु विज्ञान अपराध के कारणों का एवं दण्डशास्त्र एवं अपराधों के निवारण हेतु दण्ड व्यवस्था का अध्ययन करता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि दण्ड व्यवस्था के अन्तर्गत सुधारात्मक उपायों जैसे परीवीक्षा, पैरोल आदि को भी सम्मिलित किया जाता है। इलियट ने अपराध शास्त्र के अध्ययन की विषय वस्तु में निम्नांकित चार तत्वों को सम्मिलित किया है -

1. **अपराध की प्रकृति** - इस शीर्षक के अन्तर्गत अपराधों की व्याख्या की जाती है और अपराध के तत्वों के सन्दर्भ में अपराधों की परिभाषा दी जाती है।
2. **आपराधिक आचरण अथवा व्यवहार के कारण** - इसमें अपराध के कारणों का अध्ययन किया जाता है और यह पता लगाने की प्रयास किया जाता है कि अपराध क्यों किए जाते हैं।
3. **अपराधियों का वैयक्तिक अध्ययन** - इस शीर्षक के अन्तर्गत अपराधी व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक, मानसिक आदि स्थितियों पर विचार किया जाता है। इतना ही नहीं, यह अपराधी व्यक्ति के स्वभाव चरित्र आचरण आदि के अध्ययन को भी सम्मिलित करता है।

4. **अपराधों का उपचार एवं निवारण** - इसमें अपराधों की रोकथाम के उपायों पर विचार किया जाता है। अपराधों के रोकथाम एवं निवारण के लिए दण्ड व्यवस्था एवं सुधार वादी दृष्टिकोण दोनों का प्रावधान है एवं इन दोनों का अध्ययन अपराध शास्त्र में किया जाता है।

वाल्टर रेकलेस (1955) ने भी अपराध शास्त्र में सम्मिलित विषयों की बात की है। उन्होंने अपराध शास्त्र के विषय क्षेत्र में निम्नलिखित सुझाव रखे हैं-

1. इसमें यह अध्ययन होना चाहिए कि अपराध की सूचना अधिकारियों तक किस प्रकार पहुँचती है तथा अधिकारी स्तर पर किस प्रकार कार्य होता है।

2. इसमें अपराधी कानून के विकास एवं उन परिवर्तनों का अध्ययन होना चाहिए जिनका सम्बन्ध विभिन्न समाजों के सामाजिक मूल्यों एवं सामजिक, आर्थिक व राजनैतिक व्यवस्थाओं से होता है।

3. इसमें अपराधियों के लक्षणों जैसे लिंग, वर्ग, वैवाहिक स्थिति, व्यवसाय रोजगार, मनोवैज्ञानिक व शारीरिक विशेषताओं तथा शारीरिक व मानसिक व्याधिकीय दशाओं का अध्ययन होना चाहिए और इन लक्षणों की गैर अपराधियों से तुलना होना चाहिए।

4. इसमें अपराध की क्षेत्रवार संख्या में भिन्नता और अपराध के विशिष्ट प्रतिमानों में पायी जाने वाली भिन्नता का अध्ययन होना चाहिए।

5. इसमें आपराधिक कारणों सम्बन्धी तथा कारणों के सिद्धान्तों की रचना पर प्रकाश डाला जाना चाहिए।

6. इसमें अपराध के विशेष प्रकारों एवं उनकी भिन्नताएँ शामिल हैं जैसे संगठित अपराध, श्वेत वसन अपराध आदि।

7. इसमें अपराध से निकटस्थ सम्बन्ध वाली समस्याओं, मद्यपान, नशीले पदार्थों का सेवन, वेश्यावृत्ति, जुआ और आवारागर्दी का अध्ययन होना चाहिए। अनेक समाजों में इनमें से कुछ या अधिकतर समस्याओं को भले ही अपराध न माना जाता हो लेकिन इन समस्याओं का अपराध से निकट का सम्बन्ध होता है।

8. इसमें कानून लागू करने की प्रभाविता और अपराध के नियंत्रण में विशेष नियमों के प्रभाव का अध्ययन होना चाहिए।

9. इसमें अपराधियों के सुधार सम्बन्धी उपायों जैसे कारावास, परिवीक्षा, पैरोल, संस्थात्मक, निदान और उत्तर रक्षा की प्रभाविता का अध्ययन किया जाना

चाहिए।

10. इसमें अपराध और बाल अपराध के रोकथाम में विभिन्न प्रयत्नों और प्रयोगों का अध्ययन होना चाहिए।

1.5 अपराधशास्त्र की विषय वस्तु

विश्व के विभिन्न समुदायों के विकास तथा सभी देशों की प्रगति को ध्यान में रखते हुए वर्तमान समय में सामाजिक हितों की सुरक्षा पर अधिक महत्व दिया जा रहा है। इसे सुनिश्चित करने के प्रयास में प्रायः प्रत्येक देश अपनी न्याय व्यवस्था को, विशेषतः दण्ड प्रणाली को अधिकाधिक प्रकार्यात्मक तथा प्रभावोत्पादक बनाने के लिए प्रयत्नशील है। यही कारण है कि वर्तमान सदी में दण्ड नीतियाँ तथा अपराध विज्ञान में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। अब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व के समस्त देशों के लिए एक दण्ड व्यवस्था लागू करने के प्रयास किये जा रहे हैं। परन्तु देशों की विषमताएँ भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में भिन्नताओं के कारण यह सम्भव नहीं हो सका है। वर्तमान समय में सबसे ज्वलन्त समस्या यह है कि अपराधों को किस प्रकार प्रभावी ढंग से नियंत्रण में रखा जाये। इस हेतु अपराधों से सम्बन्धित विभिन्न संस्थाओं जैसे पुलिस न्यायालय,, कारागृह, बोर्स्टल्स, सुधार गृह, परिवीक्षा, पैरोल आदि के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त करके उन्हें अधिक प्रभावी तथा कार्यकुशल बनाने के लिए प्रायः सभी देश प्रयत्नशील हैं। वास्तव में अपराध और अपराधियों से सम्बन्धित विविध पहुलओं का अध्ययन ही अपराध शास्त्र की विषय वस्तु है। सामाजिक सुरक्षा एवं लोक कल्याण से सम्बन्धित होने के कारण इस विषय का व्यवहारिक महत्व है, जिसने एक विज्ञान का स्वरूप प्राप्त कर लिया है।

अपराध शास्त्र की परिभाषा के विषय में विद्वानों के विचार भिन्न भिन्न रहे हैं। उल्लेखनीय है कि न्यायशास्त्रियों ने अपराधशास्त्र को जो परिभाषा दी है वह समाज शास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों जीव-वैज्ञानिकों तथा मनश्चिकित्सकों द्वारा दी गई परिभाषा से मूलतः भिन्न है। परन्तु इस विषय की समाज से सम्बद्धता को देखते हुए किसी भी परिभाषा में इसके सामाजिक पहलुओं की अनदेखी नहीं की जा सकती है। चूँकि अपराध मानव द्वारा ही किये जाते हैं, जो समाज के अविच्छिन्न अंग हैं, इसलिए अपराध को समाज से अलग नहीं रखा जा सकता है।

वैधानिक दृष्टिकोण से अपराध शास्त्र एक ऐसा अध्ययन है जो मानव दुराचरण के उस स्वरूप से सम्बन्धित हैं जिन्हें अपराध से निर्बन्धित किया जाता है। अपराध शास्त्र के अन्तर्गत मानव की आपराधिक दृष्प्रवृत्तियों के कारण,उनके निवारण तथा अपराधों के विश्लेषण आदि का अध्ययन समाविष्ट है। ज्ञातव्य है कि समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से

अपराधशास्त्र एक विषय है जिसमें ऐसे प्रत्येक कृत्य का समावेश होता है जो सामाजिक हित के प्रतिकूल हो। परन्तु विधिक दृष्टि में मानव द्वारा किये गये केवल वे ही कृत्य अपराध माने जाते हैं जो विधि द्वारा निषिद्ध हो तथा जिनके लिए दण्ड का प्रावधान हो। इसका आशय यह है कि कोई भी मानव आचरण तब तक अपराध नहीं माना जायेगा जब तक वह प्रचलित विधि के विपरीत न हो तथा उसके लिए दण्ड प्रावधानित न हो।

सामान्यतः अपराध शास्त्र के अन्तर्गत अपराधिकता से सम्बन्धित सभी पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। परन्तु सुविधा की दृष्टि से इसका अध्ययन दो शाखाओं में किया जा सकता है, जिन्हें क्रमशः सैद्धान्तिक अपराध शास्त्र तथा व्यावहारिक अपराध शास्त्र कहा जा सकता है।

प्रो0 डब्ल्यू0 ए0 बोंगर ने अपराध शास्त्र को निम्न उपशाखाओं में विभक्त किया है -

1. आपराधिक मानवशास्त्र।
2. आपराधिक समाजशास्त्र।
3. आपराधिक मनोविज्ञान।
4. आपराधिक साइको-न्यूट्रोपेथालॉजी।
5. दण्ड शास्त्र।

व्यावहारिक या प्रायोगिक अपराध शास्त्र के अधीन मानसिक स्वास्थ्य तथा दण्ड नीति का अध्ययन किया जाता है जो कि निगमात्मक पद्धति पर आधारित है।

अपराध शास्त्र तथा दण्ड शास्त्र के अतिरिक्त हाल ही में एक नयी उपशाखा का प्रादुर्भाव भी हुआ है जिसे 'क्रिमिनोलिस्टिक्स' कहा गया है। यह मुख्यतः अपराधों का पता लगाने हेतु पुलिस द्वारा अपनायी जाने वाली तकनीक से सम्बन्धित है। इसी प्रकार विक्टिमोलॉजी को भी अपराधशास्त्र की एक स्वतन्त्र शाखा के रूप में मान्यता प्राप्त हुयी जिसके अन्तर्गत अपराध के कारण पीड़ित या व्यथित व्यक्तियों से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है।

डा0 कैनी के अनुसार "अपराध शास्त्र अपराध विज्ञान की वह शाखा है जो अपराध के कारणों, उनके विश्लेषण तथा अपराध निवारण से सम्बन्धित है।"

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अपराध शास्त्र में ऐसे सभी असामाजिक दृष्कृत्यों का विस्तृत अध्ययन किया जाता है जिसे समाज अनुचित मानता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अपराध शास्त्र की एक निश्चित सर्वसम्मत परिभाषा प्रायः असम्भव ही है क्योंकि जहाँ एक ओर न्यायवादी इसके विधिक पहलू पर

अधिक महत्व देते हैं तो दूसरी ओर समाजशास्त्री इसके सामाजिक पहलू को अधिक गुरूतर मानते हैं। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि अपराध शास्त्र की प्रमुख विषय वस्तु अपराध और अपराधी ही हैं तथा इसके अन्तर्गत ऐसी सभी संस्थाओं का समावेश है जो इन पर नियंत्रण रखने हेतु कार्यरत हैं। इनमें पुलिस, न्यायालय, कारागृह, परिवीक्षा, पैरोल, आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

अनेक विद्वानों का मत है कि ऐसा सोचना गलत है कि अपराध शास्त्र केवल अपराधों के कारणों तथा उन पर नियंत्रण रखने के उपायों तक ही सीमित है। इस अध्ययन में कुछ ऐसे मानव आचरणों का समावेश भी है जिनकी प्रकृति अपराधिक स्वरूप की नहीं है। जैसे बाल अपराध के अन्वेषण से पता चलता है कि बालकों की सृजनशक्ति को उचित दिशा न मिलने के कारण वे अपचारिता की ओर आकृष्ट होते हैं जो आगे चलकर उन्हें अपराधिकता की ओर आकृष्ट कर सकती है। अतः आधुनिक अपराधशास्त्री अपराध और अपराधिकता के प्रति यर्थाथवादी दृष्टिकोण अपना रहे हैं। अब तक यह प्रायः सिद्ध हो चुका है कि अपराध का कोई एकल कारण नहीं होता बल्कि अनेक कारणों का संयोग मिलकर एक स्थिति का निर्माण कर देता है जो अपराधिकता के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने के लिए करणीभूत होती है और व्यक्ति अपराध कर बैठता है।

1.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में अपराध शास्त्र के अर्थ को समझाया गया है तथा अपराध शास्त्र को विभिन्न सम्प्रदायों तथा शास्त्रीय, नवशास्त्रीय, कानूनी, भौगोलिक, समाजशास्त्रीय आदि के माध्यम से विश्लेषित किया गया है। अपराधशास्त्र का विभिन्न सम्प्रदायों के माध्यम से अध्ययन करने के उपरान्त हम कह सकते हैं कि अपराधशास्त्र एक व्यापक शास्त्र है जिसमें समाज की लगभग प्रत्येक घटना का अध्ययन किया जा सकता है। साथ ही इकाई में अपराध शास्त्र के क्षेत्र एवं विषय वस्तु को सामान्य एवं सरल ढग से समझाया गया हैं ।

1.7 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न - 1.

(1) अपराध शास्त्र के 2 सम्प्रदायों के नाम बताइये।

(2) फ्रायड अपराध शास्त्र के किस सम्प्रदाय के विचारक हैं?

(3) "अपराध शास्त्र अपराध का और उसके उपचार का वैज्ञानिक अध्ययन है।" यह किसकी परिभाषा है?

बोध प्रश्न - 2

(1) अपराध शास्त्र के प्रारूपवादी सम्प्रदाय का वर्णन कीजिए।

(2) अपराध शास्त्र की समाज शास्त्रीय परिभाषा दीजिए।

(3) अपराध शास्त्र के विविध सम्प्रदायों के नाम बताइये।

बोध प्रश्न -3

(1) अपराध शास्त्र की परिभाषा दीजिए। अपराध शास्त्र के क्षेत्र का निर्धारण कीजिए।

(2) अपराध शास्त्र क्या है? इसके अध्ययन की विषय वस्तु क्या है?

(3) अपराध शास्त्र के विभिन्न सम्प्रदायों का विश्लेषण कीजिए।

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1.

(1) (क) शास्त्रीय सम्प्रदाय (ख) समाजशास्त्रीय सम्प्रदाय।

(2) मनोविश्लेषणात्मक सम्प्रदाय।

(3) एम0ए0 इलियट ।

इकाई - 2 : अपराध की कानूनी तथा समाजशास्त्रीय व्याख्याएँ

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 अपराध की अवधारणा

2.2.1 अपराध का अर्थ

2.2.2 अपराध की परिभाषाएँ

2.2.3 अपराध के तत्व

2.3 अपराध की कानूनी व्याख्या

2.3.1 अपराध की कानूनी परिभाषा

2.3.2 क्लासिकल विचार

2.3.3 नवीन विचलन वादी विचार

2.3.4 मार्क्सवादी विचार

2.4 अपराध की समाजशास्त्रीय व्याख्या

2.4.1 विभिन्न सम्पर्क का सिद्धान्त

2.4.2 अप्रतिमानता का सिद्धान्त

2.4.3 विभिन्न अवसर का सिद्धान्त

2.4.4 अपराधी उपसंस्कृति का सिद्धान्त

2.4.5 तटस्थीकरण प्रविधियों सम्बन्धी सिद्धान्त

2.4.6 लेबलिंग का सिद्धान्त

2.4.7 थार्सटेन सेलिन का सिद्धान्त

2.4.8 रिचर्ड क्विन्ने का सिद्धान्त

2.4.9 आधुनिक विचलन सिद्धान्त

2.4.10 बहुकारकीय उपागम

2.5 सारांश

2.6 बोध प्रश्न

2.7 बोध प्रश्न के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप -

- अपराध को कानूनी दृष्टि से बता सकेंगे।
- अपराध की सामाजिक व्याख्या कर सकेंगें।
- अपराध के विभिन्न दृष्टिकोणों की चर्चा कर सकेंगें।

2.1 प्रस्तावना

अपराध को उन कार्यों के रूप में परिभाषित किया जाता है जो कानूनी या सामाजिक नियमों का उल्लंघन करते हैं। अपराध के विभिन्न कारण हो सकते हैं। कोई भी सामाजिक व्यक्ति अपराधी बनकर नहीं पैदा होता है, पैदाइशी अपराधी की अवधारणा अब अमान्य है। बच्चा समाज में रहकर विभिन्न तरह की क्रिया प्रतिक्रिया करता है। यही क्रिया जब कानूनी नियमों का उल्लंघन करती है तो कानूनी अपराध है एवं जब व्यक्ति की क्रिया सामाजिक नियिमों की उल्लंघन करती है तो सामाजिक अपराध कहा जाता है।

2.2 अपराध की अवधारणा

अर्थ - "अपराध वे अवैधानिक कार्य हैं जिनके साबित हो जाने पर न्यायालय अपराधियों को दण्ड देता है और ऐसे दण्ड में कमी करने का एक मात्र अधिकार राज्यको होता है।" - ऑस्टिन

किसी भी व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के निजी जीवन सम्पत्ति एवं अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और न ही ऐसा कोई कार्य करना चाहिए जिससे उसको शारीरिक अथवा मानसिक पीड़ा पहुँचे या सम्पत्ति सम्बन्धी कोई हानि हो। साथ ही उसे ऐसा कार्य करने के लिए भी तत्पर रहना चाहिए जो दूसरे व्यक्ति के अधिकारों के न्यायोचित उपयोग-उपभोग के लिए आवश्यक हो। यदि कोई व्यक्ति इसके प्रतिकूल कार्य करता है तो यह कहा जायेगा कि उसने अपने कर्तव्यों का निर्वाह नहीं किया है। अर्थात वह कर्तव्य भंग का दोषी माना जायेगा। विधिक भाषा में इसे ही हम अपराध की संज्ञा दे सकते हैं।

2.2.2 अपराध की परिभाषा

अपराध शब्द जितना प्रचलित है उसकी परिभाषा देना उतना ही कठिन है। इसकी अभी तक कोई सर्वसम्मत परिभाषा नहीं दी जा सकी है। हम यहाँ कतिपय परिभाषाओं का अध्ययन करते हैं।

"अपराध उन अवैधानिक कार्यों को कहते हैं जिनके बदले में दण्ड दिया जाता है और वे क्षम्य नहीं होते। यदि क्षम्य होते भी हैं तो राज्य के अलावा अन्य किसी भी व्यक्ति को क्षमता प्रदान करने का अधिकार नहीं होता।" - कैनी

"ऐसा कोई कार्य करना अथवा करने से विरत रहना, जिससे सामान्य विधि के किसी नियम का अतिक्रमण होता हो, अपराध कहलाता है।" - ब्लैक स्टोन

ब्लैक स्टोन ने ही इसकी एक और परिभाषा देते हुए कहा है कि 'अपराध का अर्थ है ऐसे लोक अधिकारों तथा कर्तव्यों का उल्लंघन करना जो सम्पूर्ण समाज अथवा समुदाय को एक समाज अथवा समुदाय के रूप में प्राप्त हो।"

"अपराध का अभिप्राय ऐसे अधिकारों के अतिक्रमण से है जिसका परिमाप उस अतिक्रमण से सम्बन्धित समाज में फैली हुई दुष्कृतियों से हो।" - स्टीफेन

अपराध की परिभाषा देते हुए मिलर कहते हैं "अपराध वे उल्लंघन कार्य हैं, जिसे विधि समादेशित करती है और उन उल्लंघनों हेतु कार्यवाही करके दण्डित किया जाता है।

उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि 'अपराध' के लिए यह आवश्यक है कि -

1. ऐसा कोई कार्य किया जाये जिसे नहीं करने के लिए कोई व्यक्ति आबद्ध हो।
2. ऐसा कोई कार्य करने से विरत रहना जिसे करने के लिए कोई व्यक्ति आबद्ध हो।
3. ऐसी आबद्धता किसी विधि के अन्तर्गत हो।
4. ऐसी विधि तत्समय प्रवृत्त हो।

इस परिभाषा के अनुसार ऐसा कोई कार्य अपराध नहीं माना जा सकता जो तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अन्तर्गत दण्डनीय न हो अर्थात किसी पूर्व कृत्य को वाद में अपराध घोषित नहीं किया जा सकता। संविधान की भी यही मंशा है।

2.2.3 अपराध के तत्व

कोई भी कार्य अथवा कार्य लोप स्वतः अपने आप में अपराधी नहीं होता, क्योंकि यदि ऐसा होता तो हमारे दैनिक जीवन के अधिकांश कार्य अपराध की कोटि में आ जाते।

कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो मनुष्य जान बूझ कर करता है तो कुछ ऐसे होते हैं जो अज्ञानता वश अथवा अनजाने में हो जाते हैं। कुछ ऐसी बातें हैं जो किसी कार्य को अपराध बना देते हैं अथवा उसे अपराध बनने से रोक देती है। विधिक भाषा में इन्हें ही हम अपराध के तत्व कहते हैं।

हाल ने अपराध के सात तत्व बताये हैं -

1. आशय पूर्वक अथवा असावधानी पूर्वक कोई कार्य किया गया होना चाहिए।
2. ऐसा कार्य दुराशय अथवा आपराधिक आशय से किया जाना चाहिए।
3. दुराशय एवं आचरण का एक साथ अर्थात सहगामी होना चाहिए।
4. ऐसे कार्य से कुछ बाहरी परिणाम अथवा हानि होना चाहिए।
5. ऐसी हानि विधि द्वारा निषेधित होनी चाहिए।
6. स्वैच्छिक आचरण एवं विधि द्वारा निषिद्ध हानि के बीच हेतुक सम्बन्ध होना चाहिए।
7. ऐसे कार्य के लिए विधि द्वारा निर्धारित दण्ड होना चाहिए।

हुड्डा ने अपराध के चार आवश्यक तत्वों का उल्लेख किया है -

1. व्यक्ति पर किसी कार्य विशेष को करने का दायित्व हो तथा उसकी सक्षमता उचित दण्ड के लिए विषम हो।
2. दुराशय अथवा आपराधिक आशय का होना।
3. ऐसे आशय से उत्प्रेरित होकर किसी कार्य का किया जाना।
4. ऐसें कार्य से जन साधारण को अथवा किसी व्यक्ति विशेष को हानि होना।

हम यह कह सकते हैं कि किसी अपराध के लिए निम्नांकित सामान्य शर्तों का पूरा होना आवश्यक है -

1. कोई कार्य अथवा कार्य लोप किया जाना।
2. ऐसे कार्य के लिए उस व्यक्ति का सक्षम होना।
3. ऐसे कार्य को जानबूझ कर अथवा स्वेच्छा से किया जाना।
4. कार्य का ध्येय, आशय अथवा दुराशय से प्रेरित होकर किया जाना।
5. ऐसे कार्य से किसी व्यक्ति अथवा जन साधारण को क्षति होना।
6. ऐसे कार्य का विधि द्वारा दण्डनीय होना।

2.3 अपराध की कानूनी व्याख्या

2.3.1 परिभाषा

अपराध की कानूनी व्याख्या के अनुसार "यह ऐसा व्यवहार या कृत्य है जो विधि संहिता का उल्लंघन करता हो।" पाल टेप्पेन ने अपराध की परिभाषा इस प्रकार की है- "इरादतन किया गया कार्य या अपराधी कानून की उल्लंघन या अवहेलना जो कि बिना किसी औचित्य, बचाव के लिए किया गया हो और राज्य द्वारा गम्भीर अपराध साधारण अपराध के रूप में दण्ड के लिए अनुमन्य हो।" इस परिभाषा में छह तत्व महत्वपूर्ण हैं-

1. कृत्य वास्तव में किया गया हो या यह किसी वैज्ञानिक कर्तव्य की अवहेलना हो (नैतिक कर्तव्य से भिन्न) कोई भी व्यक्ति केवल अपने विचारों के लिए दण्डित नहीं किया जा सकता। कुछ मामलों में शब्द भी कृत्य समझे जाते हैं, जैसे देश द्रोह में या किसी अन्य व्यक्ति को अपराध करने के लिए सहायता करने या उकसाने में। ऐसे मामलों में यह तर्क दिया जाता है कि कुछ कार्यवाही की गई है। कानूनी कर्तव्य की अवहेलना भी अपराध है।

2. कृत्य ऐच्छिक होना चाहिए और तब किया जाना चाहिए जब कर्ता का अपने कृत्यों पर पूरा नियंत्रण हो।

3. कृत्य इरादतन होना चाहिए, भले ही इरादा सामान्य हो या विशिष्ट। हो सकता है कि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को गोली मारने या हत्या का इरादा न रखता हो, लेकिन उसे यह जानकारी होती है कि उसका कृत्य (गोली मारना) किसी को जख्मी कर सकता है या मृत्यु का कारण भी हो सकता है। अतः यदि विशेष इरादे के बिना किसी को गाली मारता है तो वह अपराध करता है क्योंकि वह जानता है कि उसके कृत्य से दूसरा व्यक्ति जख्मी हो सकता है या उसकी मृत्यु हो सकती है।

4. कृत्य अपराधी कानून का उल्लंघन होना चाहिए जो गैर अपराधी कानून दीवानी या प्रशासनिक कानून से भिन्न होना चाहिए। यह आवश्यक है ताकि राज्य दोषियों के विरूद्ध कार्यवाही कर सके। गैर अपराधी कानून वे होते हैं जो व्यक्तियों और संगठनों के बीच अधिकारों को नियमित करते हैं। जैसे तलाक के नियम, संविदा नियम, सम्पत्ति अधिकारों को नियमित करने वाले नियम आदि। आपराधिक गलतियों और गैर आपराधिक अथवा दीवानी दोषों में भी अन्तर किया जा सकता है। जैसे वह व्यक्ति ो किसी पर हमला करता है उस पर राज्य द्वारा तथा उस व्यक्ति द्वारा जिस पर हमला किया गया है, हानि के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है।

5. कृत्य बिना औचित्य और बचाव के किया जाना चाहिए। इस प्रकार यदि कृत्य स्वरक्षा में या पागलपन के दौरे के कारण किया गया सिद्ध हो जाता है तब इसे अपराध नहीं माना जायेगा, भले ही इससे दूसरे को हानि पहुँचती हो। कानून की अज्ञानता अपराधी के लिए सामान्यतः कोई बचाव नहीं मानी जाती।

6. कृत्य राज्य द्वारा गम्भीर अपराध अथवा साधारण अपराध के रूप में संसृत होना चाहिए। इन कृत्यों के लिए व्यक्तियों को केवल तभी दण्डित किया जाता है जब उनके कृत्य सामाजिक रूप से हानिप्रद हों और जिनके लिए समाज में दण्ड की व्यवस्था की गई हो।

हाल जेरोम के अनुसार अपराध कानून द्वारा निषिद्ध और जान बूझ कर किया गया कार्य है जिसके लिए कानून में दण्ड का प्रावधान है। उसके अनुसार किसी भी कार्य को अपराध के रूप में तब तक नहीं देखा जा सकता जब तक उसमें सात निम्नलिखित लक्षण न हों -

वह व्यवहार समाज के हितों पर पड़ने वाले प्रभाव के सन्दर्भ में हानिप्रद होना चाहिए। हानि पहुँचाने का इरादा मात्र ही अपराध नहीं है जब तक वास्तव में यह किया न जाये। (2) पहुँचाई गयी हानि कानून निषिद्ध होनी चाहिए। (3) वह कृत्य जो हानि पहुँचाता हो वह साभिप्राय होना चाहिए। (4) वह हानिप्रद कृत्य जान बूझकर प्रेरित होना चाहिए। एक पागल व्यक्ति हानि पहुॅचाकर अपराध नहीं करता। क्योंकि उसमें वांछित इरादा मौजूद नहीं है। (5) कृत्य में अपराधी इच्छा और व्यवहार का मिश्रण होना चाहिए। एक नौकरानी जो नियमित रूप से घर के बर्तन साफ करने आती है, यदि वह वहाँ चोरी कर ले तो उस पर अनधिकार प्रवेश का मुकदमा नहीं चलाया जा सकता, यद्यपि उसे चोरी के लिए अवश्य दण्डित कर सकते हैं। (6) कृत्य तथा कानूनी रूप से निषिद्ध हानि के बीच कारण का सम्बन्ध होना चाहिए। (7) हानिकारक व्यवहार के लिए दण्ड का प्रावधान कानूनी रूप से होना चाहिए।

2.3.2 क्लासिकलवादी विचार

अपराध को वह व्यवहार मानते हैं जिसमें सामाजिक अनुबन्ध का उल्लंघन हो जो कि राज्य के लिए ही नहीं बल्कि समाज के उन व्यक्तियों की व्यक्तिगत सुरक्षा और सम्पत्ति के लिए हानिकारक हो जिन्होंने अनुबन्ध के आधार पर राज्य के अधिकार को स्थापित किया है। इस प्रकार सामाजिक अनुबन्ध सिद्धान्तवादियों के अनुसार भ्रष्टाचार (करों की वंचना सहित) विस्तृत हो सकता है और सामान्यतया इसे सामान्य मानकर इसकी उपेक्षा भी की जा सकती है लेकिन इसके विरोध में कानून बनाना आवश्यक होगा क्योंकि यह असामाजिक और गैर कानूनी तथा सामाजिक न्याय के विरूद्ध होगा। क्लासिकवादी

विचारक परिस्थितियों और प्रभावों पर नहीं बल्कि अपराधी कृत्य पर बल देते हैं। कानून की परिभाषा में इन कृत्यों को यदि गैर कानूनी पाया जाय तो कृत्य के अनुपात में निष्पक्षता कठोरता और निश्चितता से दण्ड दिया जाना चाहिए। उन्हें (क्लासिकलवादियों को) न तो न्याय को स्वनिर्णय आधार पर लागू करना और न ही आतंक का मनमाना उपयोग स्वीकृत है।

2.3.3 नवीन विचलनवादी विचार

हावर्ड बेकर जो चिन्हित करने के विचार में विश्वास करते हैं, मानते हैं कि अपराध एक व्यवहार है जो शक्तिशाली लोगों के हितों का उल्लंघन करता है। किसी कृत्य को अपराधी कृत्य मानने के दो आधार हैं - व्यक्ति या समूह एक विशिष्ट तरीके से व्यवहार करता हो और दूसरे भिन्न मूल्यों वाला कोई दूसरा समूह या व्यक्ति उस कृत्य को विचलित मानते हों। मनुष्य अपने मूल्यों की व्यवस्था स्वयं बनाता है लेकिन समाज की बहुवादी व्यवस्था में कुछ समूह, जिनके पास दूसरों से अधिक शक्ति होती है तथा जिन्हें अभिजन, शक्तिशाली, नौकर शाह, नैतिक उद्यमकर्ता व जोखिम उठाने वाला व्यक्ति कहा जाता है, कम शक्ति शाली लोगों पर अपने मूल्य थोपते हैं। जो व्यक्ति उनके नियमों को तोड़ते हैं, उनको वे रूढ़िबद्ध चिन्हों से चिन्हित कर देते हैं। इस प्रकार उस व्यक्ति को जो मुक्त विचारों का है या प्रचलित मूल्यों से इतर व्यवहार करता है, उन्हें अधिकारियों द्वारा समलैंगिक, चोर मनोविकृत, नशीले पदार्थों का सेवन करने वाला नशेड़ी या शराबी आदि नामों से लेबिल कर दिया जाता है।

2.3.4 मार्क्सवादी विचार

मार्क्सवादी अपराध की कानूनी परिभाषा स्वीकार करते हैं। जहाँ नवीन विचलन वादी विचारकों के अनुसार अपराध एक क्रिया है जो शक्तिशालियों के हितों के सख्त खिलाफ होती है, वहाँ मार्क्सवादियों की विचारधारा बिल्कुल भिन्न है। उनकी मान्यता है कि कानून समाज में न केवल शासक वर्ग के बल्कि श्रमिक वर्ग के हितों की भी रक्षा करता है। उनके अनुसार प्रत्येक समाज वर्ग समाज होता है। जिसमें शासक व श्रमिक वर्ग के लोग सम्मिलित होते हैं। कानूनी संस्थाएँ यद्यपि शासक वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व करती है तथापि राज्य कुछ न कुछ सार्वभौमिक कानून बनाये रखता है और सम्पूर्ण समाज को सुरक्षा और समानता प्रदान करने की गारण्टी देता है। कानून न केवल शासक वर्ग के प्रभुत्व को वैधानिकता प्रदान करता है बल्कि श्रमिक वर्ग के हितों की भी रक्षा करता है। इस प्रकार मार्क्सवादी समाज द्वारा निर्मित कानून के उल्लंघन को अपराध कहते हैं।

2.4 अपराध की समाजशास्त्रीय व्याख्याएँ

2.4.1 विभिन्न सम्पर्क का सिद्धान्त

सदरलैण्ड ने 1939 में विभिन्न सम्पर्क के सिद्धान्त की रचना की और 1947 में इसका विस्तार किया। प्रारम्भ में उसने अपने सिद्धान्त को केवल व्यवस्थित अपराधी व्यवहार पर लागू किया, किन्तु बाद में उसने सिद्धान्त का विस्तार करते हुए इसको समस्त अपराधी व्यवहार पर लागू किया। अपराधी व्यवहार से सम्बन्धित सदरलैण्ड ने दो व्याख्याएँ प्रस्तुत की : परिस्थितिगत (Situational) और वंशानुगत (Genetic) या ऐतिहासिक। प्रथम व्याख्या अपराध को उस परिस्थिति के आधार पर, जो अपराध करते समय उपलब्ध थी, समझाती है और दूसरी व्याख्या अपराध को अपराधी के जीवन अनुभवों के आधार पर समझाती है।

विभिन्न सम्पर्कों के सिद्धान्त में नौ उपधारणाएँ दी गई हैं (1) अपराधी व्यवहार सीखा जाता है। (2) अपराध संचार के प्रक्रम में दूसरे लोगों से अन्तः क्रिया द्वारा सीखा जाता है। (3) अपराधी व्यवहार सीखने की प्रक्रिया का मुख्य भाग घनिष्ठ , छोटे और प्राथमिक समूहों में होता है। (4) सीखने की प्रक्रिया में अपराध करने के तरीके और मनोवृत्तियाँ, प्रेरणाओं, प्रेरक शक्तियों और तर्क वितर्कों की विशेष दिशा सम्मिलित हैं। (5) प्रेरणाओं एवं प्रेरक शक्तियों की विशेष दिशा विधि संहिताओं की स्वीकृत एवं तिरस्कृत परिभाषाओं द्वारा सीखी जाती हैं। (6) व्यक्ति अपराधी इस कारण बनता है क्योंकि वह कानून के उल्लंघन के अनुकूल परिभाषाओं को कानून के उल्लंघन के प्रतिकूल परिभाषाओं की अपेक्षा अधिक अपनाता है, अर्थात अपराधी व्यवहार उन लोगों के सम्पर्कों में आने की प्रक्रिया द्वारा निर्धारित होता है जो अपराध करते हैं। यही विभिन्न सम्पर्कों का सिद्धान्त है। विभिन्न सम्पर्क इसलिए सम्भव होते हैं क्योंकि समाज में विविध संस्कृतियों वाले समूह पाये जाते हैं। यह सांस्कृतिक संपर्क ही विभिन्न संघर्षों का आधारभूत कारण है। सांस्कृतिक संघर्षों की उत्पत्ति और अस्तित्व सामाजिक विघटन के कारण भी होता है। (7) विभिन्न सम्पर्कों की अवधि, तीव्रता, प्राथमिकता और पुनरावृत्ति भिन्न-भिन्न होती है,अर्थात व्यक्ति की अपराधी व्यवहार में भाग लेने की सम्भावना उसके अपराधी व्यवहार के प्रतिमानों से सम्पर्कों की बारंबारता और स्थिरता द्वारा निर्धारित होती है। (8) अपराधी और अनापराधी प्रतिमानों के सम्पर्क में भाग लेने की सम्भावना उसके अपराधी व्यवहार के प्रतिमानों से सम्पर्कों की बारंबारता और स्थिरता द्वारा निर्धारित होती है। (9) अपराधी और अनापराधी प्रतिमानों के सम्पर्क में अपराधी व्यवहार सीखने की प्रक्रियाएं वही हैं जो किसी कानून द्वारा मानवीय व्यवहार के सीखने में पाई जाती है। व्यक्तिगत लक्षणों और सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में लोगों के अपराधी बनने या

न बनने में वैयक्तिक अन्तर इस कारण मिलता है क्योंकि वे (उनके लक्षण व परिस्थितियाँ) उनके विभिन्न सम्पर्कों को अथवा अपराधियों के साथ सम्पर्कों की आवृत्ति व स्थिरता को प्रभावित करते हैं। (10) यद्यपि अपराधी व्यवहार सामान्य आवश्यकताओं और मूल्यों की अभिव्यक्ति है। फिर भी इसको केवल इन्हीं के आधार पर नहीं समझाया जा सकता क्योंकि अनअपराधी व्यवहार भी इन्हीं आवश्यकताओं और मूल्यों की अभिव्यक्ति है।

सदरलैण्ड के सिद्धान्त की आलोचना अनेक विद्वानों जैसे शैल्डन ग्लूक, मेबिल ईलियट, राबर्ट काल्डवैल, डोनाल्ड क्रेसे, पॉल टैपन, जार्ज वोल्ड, हरबर्ट ब्लाच, जैफरी क्लौरेन्स, डेनियल ग्लेजर आदि ने की है। प्रमुख आलोचनाएँ इस प्रकार हैं : सम्पर्कों, प्राथमिकताओं, तीव्रता, अवधि और सम्बन्धों की आवृत्ति आदि को नापना और आनुभविक के आधार पर परीक्षण करना कठिन है।

यद्यपि सदरलैण्ड के सिद्धान्त में कुछ गम्भीर दोष हैं लेकिन इसमें कुछ अच्छाइयाँ भी हैं। यह निम्न रूप से हमारा ध्यान आकर्षित करता है : (अ) सामाजिक कारकों का महत्व, (ब) अपराधी व्यवहार तथा सामान्य व्यवहार सीखने की प्रक्रिया में समानता और (स) यह तथ्य कि अपराधिता को पूर्ण रूप से व्यक्तित्व के कुसमंजन के सन्दर्भ में नहीं देखा जा सकता।

2.4.2 अप्रतिमानता सिद्धान्त

सन 1893 में दुर्खीम ने यह प्रतिपादन किया कि विचलित व्यवहार समाज में रहने का एक सामान्य अनुकूलन है जो उच्च प्रकार के श्रम विभाजन के ढाँचे से संरचित होता है और स्पर्धात्मक व्यक्तिवाद के मूल्यों पर आधारित होता है। उसनें कहा कि विचलन के बिना समाज असंभव है क्योंकि यह सोचा भी नही जा सकता कि कोई भी व्यक्ति प्रतिमानों या आदर्शों से विचलित नहीं होता। इसके अतिरिक्त विचलन न केवल अपरिहार्य है बल्कि किसी भी समाज की प्रगति के लिए आवश्यक भी है। व्यक्तिगत विचलन का कारण एकीकरण और सामंजस्य के उस स्तर से सम्बन्धित है, जिस स्तर से समाज एक समय विशेष में चलता है लेकिन दुर्खीम ने केवल आत्महत्या पर ही अपना विचार केन्द्रित रखा।

सन 1938 में मर्टन ने अप्रतिमानता की अवधारणा को आत्महत्या से अलग हटकर सभी प्रकार के विचलन में प्रयोग किया जहाँ दुर्खीम यह मानता था कि आकांक्षाएँ असीमित होती है। वहीं मर्टन का तर्क था कि वे समाज के द्वारा उत्पन्न की जाती हैं और इस प्रकार एक सीमा तक नियमित भी रहती है, लेकिन उनमें अवसरों की उपलब्धि के साथ वृद्धि भी हो सकती है। दुर्खीम का मानना था कि अप्रतिमानता, सामाजिक नियंत्रण के फेल हो जाने के कारण तथा व्यक्तिगत व्यवहार के नियमित न होने के कारण ही होती

है, जबकि मर्टन ने प्रतिपादित किया कि अप्रतिमानता सामाजिक संरचना में तनावों के कारण उत्पन्न होती है जो व्यक्ति पर दबाव डालते हैं और अयथार्थ आकांक्षाओं को विकसित करने हेतु प्रोत्साहित करते हैं। इस प्रकार, अप्रतिमानता सांस्कृतिक लक्ष्यों अथवा उद्देश्यों (जो समाज में सफलता और प्रस्थिति को परिभाषित करते हैं) तथा संस्थापक साधनों (जो इस प्रकार के लक्ष्यों को प्राप्त करने के मान्य तरीके होते हैं) के बीच अन्तः क्रिया पर निर्भर होती है।

मर्टन के सिद्धान्त में व्यक्ति (अपराधी) कृत्य (अपराध) पर नहीं, बल्कि 'तनावों पर बल दिया गया है जो कि व्यक्ति के भीतर नहीं होते बल्कि संस्कृति और संरचना के बीच होते हैं। यह तनाव एकाकी व्यक्तियों द्वारा उतने अनुभव नहीं किये जाते हैं जितने कि एक संरचनात्मक प्रस्थिति या पद वाले व्यक्तियों के पूरे समूह के द्वारा। यही तनाव-सिद्धान्त उपसंस्कृति की अवधारणा को जन्म देता है। उपसंस्कृतीय प्रतिक्रियाएं सामूहिक रूप से अनुभव की गई समस्याओं के संयुक्त रूप से विस्तृत समाधान है। लोगों के समूहों के पास सामूहिक लक्ष्य तथा वैधानिक साधन दोनों होते हैं जो समाज द्वारा उनके लिए निर्धारित किये जाते हैं। गृहिणियों, अल्प वयस्कों, प्रशासकों, लिपिकों या मजदूरों के रूप में अपनी प्रस्थिति में वे उप संस्कृति का विकास कर लेते हैं। बहुधा ये अपराधी नहीं होते लेकिन जहाँ आकांक्षाओं और अवसरों के बीच महत्वपूर्ण विषमताएँ होती हैं वहाँ विचलित उपसंस्कृति उत्पन्न होती है।

मर्टन ने समाज में लक्ष्यों और साधनों को प्राप्त करने के लिए उपलब्ध अनुकूलन समायोजन के पांच तरीके सुझाए हैं- अनुवर्तन, नवाचार, कर्मकाण्डवाद, पलायनवादिता और विद्रोह।

अनुवर्तन या अनुरूपता के अनुसार व्यक्ति प्रचलित स्थिति को अर्थात समाज के लक्ष्यों और साधनों दोनों को स्वीकार करता है।

नवाचार लक्ष्यों को स्वीकार करना है किन्तु उल लक्ष्यों को प्राप्त करने के साधनों को अस्वीकार करना और उनके स्थान पर अन्य विकल्पों को स्थापित करना है। उदाहरणार्थ, एक छात्र परीक्षा पास करने और डिग्री प्राप्त करने के लक्ष्य को स्वीकार करता है। लेकिन पास होने के लिए अनुचित साधनों का प्रयोग करता है। मर्टन का कहना है कि कर्मकाण्डवाद लक्ष्यों को अस्वीकार करना, किन्तु साधनों को स्वीकार करना है। उदाहरणार्थ , एक छात्र कालेज जाता है। किन्तु कक्षा में नहीं जाता है और कैन्टीन में समय व्यतीत करता है। मर्टन का कहना है कि जहाँ नवाचार निम्नवर्ग में समायोजन के तरीके की एक विशेषता है, वहीं कर्मकाण्डवाद निम्न माध्यम वर्ग में अधिक मिलता है। मध्यम वर्ग लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए समाज द्वारा मान्य साधनों पर अधिक बल देता

पलायनवादिता में सांस्कृतिक रूप से समर्थित लक्ष्यों एवं संस्थात्मक दोनों की ही अस्वीकृति निहित है। मर्टन का कहना है कि ऐसा तब होता है जब व्यक्ति ने समाज के लक्ष्यों और साधनों दोनों को स्वीकार कर लिया हो लेकिन सही साधनों के प्रयोग करने के बाद भी लक्ष्यों को प्राप्त करने में बार बार असफल रहा हो।

विद्रोह लक्ष्यों और साधनों दोनों की ही अस्वीकृति और उनके स्थान पर नये लक्ष्यों और साधनों की प्रतिस्थापना है, अर्थात एक नवीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना या सामाजिक ढांचे में परिवर्तन की मांग है। व्यक्ति न केवल स्वयं नवीन लक्ष्यों और साधनों को अपनाता है, बल्कि समाज के लिए इन नवीन लक्ष्यों और साधनों को संस्थात्मक बनाने का भी प्रयत्न करता है।

आलोचना

मर्टन के सिद्धान्त की आलोचना एलबर्ट कोहेन, मार्शल क्लिनार्ड, लेमर्ट और कुछ अन्य ने की है। उनके प्रमुख तर्क हैं कि - (1) मर्टन का सिद्धान्त अपूर्ण है क्योंकि उसने यह नही बताया है कि कौन लक्ष्यों को और कौन साधनों को अस्वीकार करेगा। (2) केवल संरचना को ही महत्व दिया गया है तथा व्यक्ति के व्यक्तित्व की उपेक्षा की गई है। (3) तनाव व्यक्ति को आवश्यक रूप से विचलित व्यवहार की ओर नहीं ले जाते। (4) यह सिद्धान्त सामाजिक नियंत्रण की महत्वपूर्ण भूमिका की उपेक्षा करता है। (5) मर्टन की यह मान्यता है कि विचलित व्यवहार दोषपूर्ण अनुपात के रूप में निम्न वर्ग में अधिक सामान्य है, सही नहीं है (6) अप्रतिमानता जीवन के परिवृत्त अवसरों का 'परिणाम' नहीं परन्तु 'कारण' हो सकती है।

2.3.3 विभिन्न अवसर का सिद्धान्त

क्लोवार्ड और ओहलिन ने सदरलैण्ड और मर्टन के सिद्धान्तों को समन्वित किया और 1960में अपराधी व्यवहार एक नवीन सिद्धान्त विकसित किया। जहाँ एक ओर सदरलैण्ड अवैध साधनों की बात करता है और मर्टन वैध साधनों में अन्तर की बात करता है, वहीं क्लोवार्ड और ओहलिन लक्ष्यों की प्राप्ति में सफलता के लिए वैध और अवैध दोनों साधनों में अन्तर की बात करते हैं। इस सिद्धान्त के महत्वपूर्ण तत्व इस प्रकार हैं - (1) व्यक्ति की वैध और अवैध दोनों अवसरों की संरचना में एक स्थिति होती है, (2) अवैध अवसरों की सापेक्ष उपलब्धि व्यक्ति के समायोजन सम्बन्धी समस्याओं को निश्चित करने को प्रभावी करती है। (3) लक्ष्यों की प्राप्ति वैध अवसरों की उपलब्धि में सीमाओं का सामना करते हुए तथा अपनी आकांक्षाओं को कम करने में स्वयं को असमर्थ देखकर

व्यक्ति घोर कुण्ठा का अनुभव करता है। जिसके कारण वह विपरीत विकल्पों की खोज में लग जाता है।

क्लोवार्ड और ओहलिन ने तीन प्रकार के अपराधी उप-संस्कृतियों की चर्चा की है : अपराधी संघर्ष और पलायनवादी। इनमें से किसी एक उप संस्कृति का प्रदत्त सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश में उत्पन्न होना अवैध अवसरों की उपलब्धि पर आधारित होगा। प्रथम उप संस्कृति की विशेषता है अवैध धन कमाने के कार्य करना, दूसरी की विशेषता है हिंसा के कार्य व बन्दूक से लड़ाई करना और तीसरी की विशेषता है मादक पदार्थों का सेवन।

अपराधी उस संस्कृति का उदय निम्न वर्गीय पड़ोस में होता है जहाँ सफल और बड़े अपराधी होते हैं तथा जो बाल अपराधियों के साथ सहयोग के इच्छुक होते हैं। इस सामाजिक वर्ग में किशोरों के सामने उन सफल लोगों के पारम्परिक भूमिका मॉडल उपलब्ध नहीं होते जिन्होंने वैध तरीकों से अपनी सफलता प्राप्त की है, लेकिन उन (किशोरों) की पहुँच अपराधी माडल तक होती है। वहाँ बच्चे को अवैधानिक (अपराधी) भूमिका को वास्तव में करने का अवसर मिलता है। क्योंकि उसके इस कार्य को उसके पड़ोस के परिवेश में समर्थन मिल जाता है। सफलतापूर्वक सीखने और कार्य करने का पुरस्कार तत्काल मिल जाता है। इस उप संस्कृति में अपराधी और पारम्परिक मूल्यों में सामंजस्य भी मिलता है क्योंकि युवक राजनीतिज्ञों, पुलिस अफसरों और कानून लागू करने वाले अधिकारियों को अपनी ओर कर लेते हैं और उनका समर्थन भी लेते हैं, अतः वे इन लोगों से आवश्यक सम्बन्ध भी बनाये रखते हैं। इन एकीकृत सम्बन्धों के फलस्वरूप एक नवीन अवसर-संरचना का उदय होता है जो वैध क्रियाओं की अपेक्षा अवैध क्रियाओं को अनुमति प्रदान करती है।

संघर्ष उप संस्कृति उन क्षेत्रों में मिलती है जहाँ अपराधी और परम्परागत तत्वों के बीच कोई समझौता नहीं होता। उच्च स्थिति प्राप्त करने के लिए यह उप संस्कृति हिंसा और/या धमकी का प्रयोग करने में विश्वास करती है। ऐसे (उप संस्कृति वाले) पड़ोस में युवक गिरोह के रूप में संगठित हो जाते हैं और हिंसा या सख्ती का सहारा लेते हैं। इन क्षेत्रों में वे लोग रहते हैं जो या तो परम्परागत समाज में या अपराधी जगत में असफल हो गये हैं। इन क्षेत्रों में सामाजिक नियन्त्रण भी कम होता है, अपनी कुण्ठाओं के समाधान के संगठित उपायों के अभाव में, इन क्षेत्रों में युवक हिंसा पर उतारू हो जाते हैं। हिंसा के जगत में साहस और कष्ट सहने की क्षमता की आवश्यकता होती है।

पलायनवादी उपसंस्कृति में मादक पदार्थों के सेवन की अधिकता होती है। यह संस्कृति उन क्षेत्रों में मिलती है जहां या तो दमनात्मक पुलिस उपाय गलियों के झगड़ों को अधिक खतरनाक बना देते हैं या जहाँ हिंसा के प्रयोग के विरूद्ध नैतिक स्वीकृति नहीं

मिलती। जो व्यक्ति 'अपराधी' या 'संघर्ष' (उपसंस्कृति) के अवसरों से वंचित रह जाते हैं वे मादक पदार्थों की दुनिया में स्थान पाते हैं। अवैध और अपराधी साधनों की उपलब्धता के सन्दर्भ में क्लोवार्ड और ओहलिन ने कहा है कि यदि मादक पदार्थों तक व्यक्ति की पहुँच कम या बिल्कुल नहीं हो पाती है तो यह जरूरी नही कि पलायनवादी उपसंस्कृति का विकास होगा। इस प्रकार जहाँ बालकों को हिंसा के साधन उपलब्ध नहीं होते वहाँ हिंसा -परक उप संस्कृति के विकास की अधिक संभावना नहीं होती।

2.4.4 अपराधी उपसंस्कृति सिद्धान्त

एलबर्ट कोहेने (1955) के मूल्य अभिस्थापन सिद्धान्त में मुख्य रूप से श्रमिक वर्गीय लड़कों की स्थिति समायोजन से सम्बन्धित समस्याओं का वर्णन किया गया है। कोहेन का मानना है कि छोटे बच्चों की अपने बारे में भावनाएं इस तथ्य पर निर्भर करती है कि दूसरों के द्वारा उन्हें क्या समझा जाता है। वे स्थितियाँ जिनमें उनका मूल्यांकन किया जाता है - जिनमें स्कूल की स्थितियां उल्लेखनीय हैं - अधिकतर मध्यवर्गीय मूल्यों और स्तर द्वारा प्रभावित होती हैं। यह मध्यवर्गीय मूल्य और स्तर वास्तव में प्रमुख मूल्य व्यवस्था भी है। इन स्तरों में सफाई व स्वच्छता, सुसंस्कृत विनम्रता, शैक्षित बुद्धिमता, मौखिक धारा-प्रवाह, उच्च स्तरीय आकांक्षाएं उपलब्धियों के लिए प्रेरणा आदि मानदण्ड सम्मिलित हैं। विभिन्न पृष्ठभूमियों के किशोरों का मूल्यांकन समाज में एक जैसे स्तरों से किया जाता है जिस कारण निम्नवर्ग के युवकों को भी इन्हीं नियमों के अन्तर्गत स्थिति बनाने के लिए प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। परन्तु सफलता प्राप्ति के प्रयास के लिए उनके पास पर्याप्त साधन नहीं होते हैं। इस तथा अन्य कारणों से निम्न वर्गीय बच्चों की असफलता और अपमान का अनुभव करने की सम्भावना अधिक होती है। इस स्थिति से निपटने का एक तरीका वे यह अपना सकते हैं कि इस प्रतिस्पर्धा से हट जायें और उन (मध्यवर्गीय) नियमों को अपने ऊपर लागू समझने से इन्कार कर दें। किन्तु यह इतना सरल नहीं है क्योंकि प्रभावी मूल्य व्यवस्था एक सीमा तक उनकी भी मूल्य व्यवस्था है। उनके सामने तीन विकल्प होते हैं (1) उत्तरोत्तर गतिशीलता के लिए कालेज के लड़के जैसी प्रतिक्रिया अपना लें - कठिन परिश्रम, अपने को साथियों से अलग करना और कम खर्चीला होना। (2) 'स्थिर कोने के लड़के जैसी प्रतिक्रिया' अपनाना (उत्तरोत्तर गतिशीलता के विचार को अस्वीकार नहीं करना, परन्तु न तो वैसी किफायत करना, न ही अपने साथियों से अलग रहना, और न ही मध्यवर्गीय लोगों या अपराधी बालकों के शत्रुता का निशाना बनाना) (3) 'अपराधी प्रतिक्रिया' अपनाना (मध्यवर्गीय मानकों को पूर्णरूप से अस्वीकार करते हैं और ऐसी उप संस्कृति का विकास करते हैं जिसके भीतर उनके मूल्य एवं क्रियाकलाप अनुपयोगी (क्योंकि उनका आर्थिक लाभ नहीं मिलता), दुर्भावपूर्ण (क्योंकि वे दूसरों की कीमत व कष्टों पर आनन्द करते हैं) और नकारात्मक (क्योंकि वे

वृहद समाज के स्वीकार्य मूल्यों के विरोधी होते हैं) होते हैं)

अपराधी संस्कृति की एक और विशेषता होती है 'क्षणिक सुखवाद'। लड़के क्षणिक सुख में रूचि लेते है। और क्रियाकलापों के नियोजन तथा भविष्य के लिए समय तथा धन को प्रस्तावित करने की आवश्यकता पर विचार नहीं करते। गिरोह की विशेषता यह भी होती है कि यह समूह स्वायत्त होता है, अर्थात गिरोह अपने भीतर के अनौपचारिक दबावों के अतिरिक्त किसी भी प्रकार के नियंत्रण अथवा अवरोध को सहन नहीं करता। गिरोह के सदस्यों के आपसी सम्बन्ध ठोस, निकट व अटूट होते हैं जब कि दूसरे समूहों के साथ उनके सम्बन्ध उदासीन, आक्रामक और विद्रोही होते हैं। अपराधी उपसंस्कृति के सदस्य उनके जीवन को नियमित करने के सामाजिक संस्थाओं के प्रयत्नों का प्रतिरोध करने लगते हैं। कोहेन इस बात को समझाने का प्रयत्न नहीं करता कि लड़के अपराधी कैसे बन जाते हैं, वह केवल उपसंस्कृति के विकास को समझाने का प्रयास करता हैं।

2.4.5 अपराध प्रवाह और तटस्थीकरण प्रविधियों सम्बन्धी सिद्धान्त

डेविड मात्जा और साइक्स (1964) के दृष्टिकोण क्लासिकलवादियों के स्वतंत्र इच्छा तथा प्रत्यक्षवादियों के निर्धारणवाद के मध्य की स्थिति दर्शाते हैं (अर्थात अपराध को अपराधी के नियंत्रण से बाहर की शक्तियों का प्रतिफल मानते हैं) मात्जा का 'मृदु निर्धारणवाद' या 'प्रवाह' सम्बन्धी विचार बताता है कि अपराधी परम्परागत एवं अपराधी व्यवहार के बीच झूलता रहता है। वह अपराधी क्रियाओं के लिए न तो बाध्य किया जाता है न प्रतिबद्ध होता है और न ही वह उन्हें स्वतंत्रता से चुनता है बल्कि वह तो हरेक की (अर्थात परम्परागत और अपराधी व्यवहार की) मांग को पूरा करता है, तथा कभी एक के साथ तो कभी दूसरे के साथ बंध जाता है लेकिन प्रतिबद्धता को सदैव स्थगित करता रहता है और निर्णय को टालता रहता है।

बाद में मात्जा ने साइक्स के साथ मिलकर 1970 में 'तटस्थीकरण प्रविधि' सिद्धान्त का विकास किया। वास्तव में, उनका सिद्धान्त कोहेन के सिद्धान्त पर प्रहार था। उनका सिद्धान्त यह था कि अपराधी अपने विचलित क्रियाओं को उचित या तर्कसंगत ठहराता है। यह औचित्य अपराधी के लिए ठीक हो सकते हैं लेकिन न्यायिक व्यवस्था और समाज के लिए नहीं। इसलिए मात्जा और साइक्स उन्हें 'तटस्थीकरण की प्रविधियाँ कहते हैं और उनके (तटस्थीकरण)पांच प्रकार बताते हैं - उत्तरदायित्व को नकारना, आघात को नकारना, शिकार को नकारना, निन्दकों की निन्दा तथा उच्च निष्ठा के लिए आवेदन। तटस्थीकरण की ये विधियाँ अपराधी के ऊपर सामाजिक नियंत्रण की शक्तियों का प्रभाव कम करती हैं, भले ही अपराधी का बचाव न करती हों। बाद में एलबर्ट कोहेन

ने मात्जा और साइक्स से सहमति प्रकट की और अपनी 'प्रतिक्रिया निर्माण' की धारणा को वास्तव में 'तटस्थीकरण की प्राविधि' स्वीकार किया तथा यह कहा कि उप-संस्कृति स्वयं एक तटस्थीकरण कारक है।

2.4.6 'लेबलिंग का सिद्धान्त'

हावर्ड बेकर ने 1963 में 'चिन्हीकरण' अथवा 'लेबेलिंग' सम्बन्धी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उसके पूर्व फ्रैंक टेनेनबाम, (1938) एडविन लेमर्ट, (1955) जॉन किट्स्यूज, (1962) और ऐरिकसन, (1962) ने भी 'सामाजिक प्रतिक्रिया उपागम' अथवा 'सामाजिक अन्त क्रिया उपागम' का प्रयोग किया था जो मर्टन की संरचना उपागम' तथा कोहेन और क्लोवार्ड और ओहलिन द्वारा प्रयुक्त 'सांस्कृतिक उपागम' से भिन्न था। बेकर का सिद्धान्त (1961) इस प्रश्न पर विचार नहीं करता कि व्यक्ति अपराधी क्यों बनता है, बल्कि यह बताता है कि समाज कुछ व्यक्तियों पर अपराधी या विचलित होने का लेबिल क्यों लगा देता है? कुछ लोग जो अधिक शराब पीते हैं उन्हें शराबी कह दिया जाता है जबकि दूसरों को नहीं; कुछ लोग जो भद्दा व्यवहार करते हैं उन्हें अस्पताल भेज दिया जाता है, दूसरों को नहीं। अतः इस सिद्धान्त के अनुसार विचलन के अध्ययन में व्यक्ति इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि सामाजिक दर्शकगण। अपराध में व्यक्ति की क्रिया इतनी महत्वपूर्ण नहीं है जितनी कि नियमों और मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक प्रतिक्रिया। काई एरिकसन (1962) ने भी कहा है कि अपराधी को अपराधी से भिन्न करने वाले तत्व उसमें पाई जाने वाली विशेषता नहीं है, बल्कि उसकी दूसरों के द्वारा प्रदत्त विशेषताएं हैं। बेकर (1963) के अनुसार विचलन व्यक्ति की क्रिया का गुण या विशेषता न होकर दूसरों के द्वारा 'अपराधी' पर नियमों और मान्यताओं को लागू करने का नतीजा है। 'विचलित व्यक्ति वह है जिसको समाज चिन्हित कर देतो है। अमेरिका में एक प्रयोग किया गया जिसमें विभिन्न पृष्ठभूमि वाले स्वस्थ व्यक्तियों ने स्वयं को देश के विधि अस्पतालों में बनावटी मानसिक बीमारी दिखाकर मनोचिकित्सा वार्डों में भर्ती करवाया। सभी ने अपनी जीवन स्थितियों का एक समान विवरण दिया। एक को छोड़कर सभी को मनोविदलित (Schizophroenic) घोषित कर दिया गया। एक बार पागल होने का लेबिल लग जाने के बाद स्टाफ के जो लोग उनके सम्पर्क में रोजाना आते थे उनके द्वारा भी वे पागल समझे जाने लगे। यह दर्शाता है कि दूसरों की प्रतिक्रिया व्यक्ति को विशेष रूप से चिन्हित करती है। अपराधियों के मामले में भी समाज ही कुछ लोगों पर अपराधी होने का लेबिल लगाता है जबकि दूसरों पर नहीं। यदि एक निम्न वर्गीय लड़का कार चुराता है तो उसे चोर के रूप में चिन्हित किया जाता है, लेकिन यदि उच्च वर्ग का कोई लड़का यही कार्य करता है तो उसे मात्र 'मस्तमौजी शरारती' कहा जाता हैं ।

जिस व्यक्ति को लेबिल किया जाता है उस पर क्या प्रभाव पड़ता है? प्रश्नसूचक (अथवा सन्देही) व्यवहार के प्रति अधिकाधिक प्रतिक्रिया उन प्रतिक्रियाओं को आरम्भ कर सकती है जो 'अपराधी' को अधिक अपराधी व्यवहार की ओर धकेलती है अथवा कम से कम पारम्परिक जगत में उनका पुनः प्रवेश कठिन तो अवश्य कर देती है। दूसरी ओर यदि व्यक्ति अपने 'अपराधी कृत्य' के प्रति कोई भी अधिकारिक प्रतिक्रिया प्राप्त नहीं करता तो वह अपने कृत्य को जारी रखेगा क्योंकि उसे अपने व्यवहार के बदलने में कोई सहायता नहीं मिलेगी।

लेबलिंग सिद्धान्त के विरूद्ध आलोचना यह है कि यह अच्छे तर्क का तो प्रयोग करता है किन्तु यह अपराध के कारणों की व्याख्या नहीं करता। इसमें कारण के प्रश्न की पूर्ण उपेक्षा है। जैक गिब्स (1982) ने चार प्रश्न रखे हैं - इस योजना में कौन से तत्व सारपूर्ण सिद्धान्त की अपेक्षा परिभाषित किए हुए माने गये हैं? क्या इसका अन्तिम उद्देश्य विचलित व्यवहार को समझना है या विचलन के प्रति प्रतिक्रिया की व्याख्या करना है? क्या विचलित व्यवहार को इसके (विचलित व्यवहार) के प्रति प्रतिक्रियाओं के परिप्रेक्ष्य में पहचाना जाता है। ? किस प्रकार की यथार्थ प्रतिक्रिया व्यवहार को विचलित मानती है?

2.4.7 थोर्सटेन सेलिन का सिद्धान्त

थोर्सटन सेलिन ने अपने एक लेख (Culture Conflict and Crime) में अपराध के कारण के रूप में संस्कृति संघर्ष की भूमिका का विश्लेषण प्रस्तुत किया। सेलिन का कहना है कि अपराध, प्रतिमानों के बीच संघर्ष के कारण होते हैं। उसका सुझाव है कि अपराधशास्त्रियों को 'कानून के उल्लंघन' के रूप में अपराध का अध्ययन नहीं करना चाहिए बल्कि उन व्यवहार प्रतिमानों के उल्लंघन के रूप में करना चाहिए जो व्यक्ति को कुछ परिस्थितियों में एक विशेष प्रकार से व्यवहार करने से रोकते हैं । इस प्रकार के प्रतिमान अपराधी कानून में नहीं लिखे होते और यदि ऐसा नहीं है तब उनका उल्लंघन अपराध नहीं कहा जाना चाहिए। सेलिन का कहना है कि अपराध शब्द के अर्थ का यह विस्तार वांछनीय नहीं है। 'अपराध' शब्द को अपराधी कानून के द्वारा दण्डनीय व्यवहार मानकर जारी रखना और प्रतिमान उल्लंघन को भले ही वैध हो या नहीं, 'असामान्य व्यवहार' के रूप में प्रयोग करते रहना बुद्धिमत्ता है।

सेलिन ने आगे कहा कि व्यवहार के अध्ययन में 'संस्कृति संघर्ष' को 'व्यवहार प्रतिमानों के संघर्ष' के रूप में देखना आवश्यक है। इस प्रकार का संघर्ष एक सांस्कृतिक व्यवस्था या क्षेत्र में अन्तर होने की प्रक्रिया के फलस्वरूप उदय हो सकता है या विविध सांस्कृतिक व्यवस्थाओं या क्षेत्रों से पैदा हुए प्रतिमानों के बीच सम्पर्क के फलस्वरूप उत्पन्न हो सकता है। इन संघर्षों का अध्ययन हम या तो उस व्यक्ति से पूछताछ के द्वारा

कर सकते हैं जिसके भीतर यह संघर्ष समाहित हो गया है या फिर उन समूहों अथवा क्षेत्रों का अध्ययन कर सकते हैं जिनमें ऐसे संघर्ष पाये जाते हैं।

सेलिन ने प्राथमिक संघर्ष और 'द्वैतीयक संघर्ष' में भेद किया है। प्राथमिक संघर्ष सांस्कृतिक प्रतिमानों का वह संघर्ष है जो दो विभिन्न संस्कृतियों के टकराने के कारण उत्पन्न होता है जब कि द्वैतीयक संघर्ष तब होता है जब संस्कृति का उदय हो रहा हो। प्रथम (संघर्ष) का उदाहरण एक व्यक्ति का लिया जा सकता है जो इटली में पैदा हुआ था और अमेरिका में रहता था। उसने एक व्यक्ति की हत्या की जिसने उसकी किशोर बेटी का चरित्र भ्रष्ट किया। पकड़े जाने पर पिता को आश्चर्य हुआ क्योंकि उसके देश में तो परिवार के सम्मान की रक्षा के लिए पिता से इस प्रकार का व्यवहार अपेक्षित था। लेकिन अमेरिका में यही कार्य अपराध माना जाता था। यह मामला दो भिन्न संस्कृतियों के प्रतिमानों के बीच संघर्ष का है। दूसरे प्रकार का संघर्ष संस्कृतियों के समजातीय से विषमजातीय सामान्य विकास के मध्य होता है।

2.4.8 रिचर्ड क्विन्ने का आधुनिक संघर्ष सिद्धान्त

अधिकतर अपराध शास्त्रीय सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि समाजों में लक्ष्यों, मूल्यों और व्यवहार को नियमित करने वाले प्रतिमानों के विषय में मतैक्य होता है और यह मतैक्य कानून में परिलक्षित होता है। अतः यह धारणा मतैक्य की है। दूसरी ओर संघर्ष-सिद्धान्त कानून को हितों (संरक्षण) का परिणाम मानता है तथा वह साधन नहीं मानता जो हितों के बीच संघर्ष समाप्त करने के लिए हितों के बाहर कार्य करता है। कानून तो सत्ताधारी वर्ग का साधन होता है। अपराधी कानून शासक वर्ग द्वारा मौजूदा व्यवस्था को सुरक्षित रखने का साधन है। इस प्रकार आधुनिक संघर्षवादी कानून व्यवस्था को चुनौती देते हैं तथा 'कानून के समाजशास्त्र' की बात करते हैं।

इस सन्दर्भ में रिचर्ड क्विन्ने का संघर्ष सिद्धान्त महत्वपूर्ण है। उसने परम्परात्मक अपराधशास्त्रीय विचारधाराओं को निम्नवत वर्गीकृत किया है - (1) उत्तर प्रत्यक्षवादी (2) समाज निर्माणवादी और (3) घटनाक्रियावादी। प्रथम उपागम अपराध को आनुभाविक और निरपेक्षता के आधार पर अध्ययन करने का प्रयास करता है। द्वितीय उपागम अपराध कार्य में लिप्त व्यक्तियों को सामाजिक यथार्थ के आत्मपरक अर्थ को ढूंढता है और प्रश्न करता है कि क्या निरपेक्ष यथार्थ अपराधियों द्वारा उस प्रक्रिया का विश्लेषण करता है जिसके द्वारा व्यक्ति जगत को समझता है। (उपरोक्त दोनों उपागमों के विपरीत जो सामाजिक जीवन की व्याख्या से सम्बन्धित है)। घटना क्रियावादी यथार्थ को चेतना में खोजते हैं। इन उपागमों के अतिरिक्त क्विन्ने ने 'आलोचनात्मक दर्शन' का एक और विचार दिया है। यह वर्तमान व्यवस्था पर प्रश्न करता है और एक नये प्रकार के जीवन के

विकास की बात करता है - ऐसा गतिशील जीवन जिसमें हम स्थापित अस्तित्व से ऊपर उठ जाते हैं। इस परिवर्तन को लाने के लिए हम नकारात्मक सोच नहीं अपनाते; हम केवल अस्वीकार किये जाने वाली विचार/व्यवस्था/तथ्य के स्थान पर कुछ दूसरा लाने का प्रयत्न करते हैं। क्विन्ने एक समाजवादी समाज का प्रस्ताव रखता है। जिसका लक्ष्य एक ऐसा विश्व है जो पूंजीवाद द्वारा उत्पन्न यातनाओं से मुक्त हो। पूंजीवादी समाज में अपराध शक्तिशालियों द्वारा शक्तिहीनों के शोषण का प्रतिफल है। समाजवादी समाज में सब बराबर होंग और सब मिलकर समाज के भौतिक लाभों को भोंगेंगे। एक नये प्रकार के मानव स्वभाव का उदय होगा और अपराध नहीं होंगे।

संघर्ष सिद्धान्तवादी अपराध के कारण को किस प्रकार समझते हैं? चैमबिलिस का कहना है कि अपराधी कृत्य उन सामाजिक सम्बन्धों के फलस्वरूप होते हैं जो समाज में उत्पादन के तरीकों से विकसित होते हैं।

इन नवीन संघर्ष सिद्धान्त की आलोचना इस आधार पर की गई है कि यह अपने दृष्टिकोण के समर्थन में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं करता (कि अपराध उत्पादन के तरीकों के कारण होता है) । दूसरे, इस बात का क्या प्रमाण है कि समाजवादी समाजों में अपराध नहीं होता है? यह तर्क कितना सत्य है कि अपराधी कानून सत्ताधारी वर्ग के आर्थिक हितों को साधने के लिए पारित किये जाते हैं।

2.4.9 नवीन विचलन सिद्धान्त

नवीन विचलन सिद्धान्त का उदय 1960के दशक और 1970 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में हुआ। यह मुख्यतः अपराधशास्त्र में प्रत्यक्षवादी प्रभुत्व के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया है। नवीन विचलन सिद्धान्तवादी 'स्वतंत्र इच्छा' तथा सृजनशीलता में विश्वास रखते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार अपराध वह व्यवहार है 'जो शक्तिशाली लोगों के हितों का उल्लंघन करता है। अपराध की परिभाषा दो क्रियाओं पर निर्भर करती है। (क) व्यक्ति या समूह की क्रिया; (ख) व्यक्ति या समूह, जो भिन्न मूल्यों के समर्थक हों व प्रारम्भिक क्रिया को विचलन मानते हों की क्रिया। मानव लगातार मूल्यों की व्यवस्था का निर्माण करता है। बहुवादी समाज में कुछ समूह जिन्हें 'शक्तिशाली', 'अफसरशाह', 'नैतिक साहसी(कहा जाता हैं और जिन्हें दूसरों से अधिक शक्ति होती है, अपने मूल्यों की कमजोरों पर थोपते हैं और जो उनके नियमों का उल्लंघन करते हैं उन पर 'अपराधियों' या 'विचलित' का लेबिल अंकित कर देते हैं।

इस प्रकार जो लोग विविध मूल्यों को विकसित करते हैं या विविध प्रकार के व्यवहारों पर प्रयोग करते हैं उनको अधिकरियों द्वारा 'शराबी', 'समलैंगिक', 'मादक पदार्थों का सेवन करने वाला', 'चोर' या 'मनोविकृत' कहकर आरोपित किया जाता है।

उदाहरणार्थ, कालेज की एक छात्रा जो अध्ययन में अच्छी हो और जिसे विश्वविद्यालय की परीक्षा में उच्च स्थान पाने की उम्मीद हो, बिना विवाह के गर्भ धारण कर लेती है। उसको 'क्वॉरी माँ' या 'विचलित लड़की' कहा जायेगा। एक अधिकारी बड़ा कुशल, परिश्रमी और दक्ष हो सकता है, लेकिन यदि वह नित्य शराब पिए तो उसे 'शराबी' कहा जाता है।

अपराध के कारणों की आख्या करते हुए लोग बहुधा प्रेरणा की बात करते हैं, अर्थात यह पूछते हैं कि एक व्यक्ति विचलित कृत्य में लिप्त क्यों हो जाता है? वे मानते हैं कि एक व्यक्ति जो व्यक्ति विचलित होता है और दूसरा जो नियमों के अनुरूप चलता है इन दोनों में मूलभूत अन्तर उनकी प्रेरणाओं के स्वभाव में निहित हैं। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त विचलित प्रेरणाओं या कृत्यों का कारण व्यक्ति के प्रारम्भिक अनुभवों में खोजते हैं। समाजशास्त्रीय सिद्धान्त समाज में 'तनाव' के समाज द्वारा संरचित स्रोतों की या उन सामाजिक पदों की खोज करते हैं जो व्यक्ति को संघर्षपूर्ण स्थिति में डाल देती हैं तथा जिसके परिणामस्वरूप वह अपनी स्थिति जन्य समस्याओं के समाधान के लिए अवैध तरीके अपनाता है। इस प्रकार कुछ सिद्धान्त तो व्यक्ति की विशेषताओं पर बल देते हैं (प्रत्यक्षवादी) कुछ अपराधी कृत्य के संरचनात्मक पूर्वगामी घटनाओं पर (समाजशास्त्रीय), और कुछ 'कृत्य' पर (क्लासिकलवादी) लेकिन नव विचलन सिद्धान्त 'प्रतिक्रिया' पर केन्द्रित है। इसकी मान्यता है कि अपराधी घटना को समझने के लिए उसकी उत्पत्ति नहीं, बल्कि 'अपराध सम्बन्धी प्रशासन' को समझना महत्वपूर्ण है।

2.4.10 बहुकारकवादी उपागम

अपराधी व्यवहार के प्रारम्भिक सिद्धान्तों की आलोचना की गई है क्योंकि उनमें अपराध के कारण के रूप में केवल एक कारक पर ही बल दिया गया है। आनुवांशिक शारीरिक गुण, जैविकीय हीनता, दुर्बल मानसिकता, संवेगात्मक व्याकुलता या गरीबी जैसे एक कारण के रूप में अपराध की विवेचना की गयी थी। अपराधशास्त्र में बहु कारक उपागम का उदय एक कारक विचारधारा में कमियों के परिप्रेक्ष्य में समझा जाना चाहिए। मान्यता यह थी कि अपराध अनेक कारकों की उपज है - जैविकीय, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक और सामाजिक- और यह भी कि विविध अपराध कारकों के विभिन्न संयोजन का प्रतिफल होंगे। अतः अपराधशास्त्र में 'उचित विचारधारा संकलनवादी है जो बहुकारकों के विश्लेषण व पहचान पर बल देती है। इस विचारधारा में विश्वास रखने वाले विद्वान हैं विलियम हीले, सिरिल बर्ट और शैल्डन और ग्ल्यक। विलियम हीले ने 1915 में 1000 बाल अपराधियों के अध्ययन के आधार पर 138 कारकों को बाल अपराध के कारणों के रूप में पहचाना और उनका वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक, जैविकीय और सामाजिक पर्यावरणीय कारकों के रूप में किया। अमेरिका में हीले के कार्य से प्रभावित होकर सिरिल

बर्ट ने 1925 में इंग्लैण्ड में इसी प्रकार की जांच की। उसने कम से कम 170 कारक खोजे और उनको 9 प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया। शैल्डन ग्लूक ने 1956 में 500 बाल अपराधियों और 500 अनपराधियों के अध्ययन में उत्तरदाताओं के संवेगों और स्वभाव, सामाजिक पृष्ठभूमि, घर का जीवन, शारीरिक विशेषताओं, बौद्धिक योग्यता और मनोस्थिति का विशद विश्लेषण किया गया और अपराध में सामाजिक, सांस्कृतिक, जैविकीय और मनोवैज्ञानिक कारकों को जिम्मेदार पाया। उसने निष्कर्ष निकाला कि अनेक कारक अपराध से सम्बन्धित हैं। इसमें से प्रमुख हैं : परिवार की समस्या (माँ-बाप का अलग रहना, माँ-बाप का शराबी होना), शारीरिक और मानसिक विकार, खराब गृह प्रबन्ध, बच्चों की देखभाल में कमी, कम प्यार दर्शाना आदि)।

बहु कारक विचारधारा की भी एल्बर्ट कोहेन व अन्य विद्वानों द्वारा आलोचना की गई है। कोहेन (1955) ने यह मानते हुए कि बहु कारक विचार ने अपराध से जुड़े कारकों के संयोजन द्वारा, अपराधशास्त्र में लाभकारी योगदान किया है, इसके विरूद्ध तीन तर्क दिए : (1) बहु कारक उपागम के प्रतिपादक एक सिद्धान्त और एकल कारक व्यवस्था के बीच भ्रमित हो गये हैं। एकल सिद्धान्त अपराध को एक कारक के आधार पर नहीं समझाता। सिद्धान्त तो परिवत्यों और कारक से सम्बद्ध हैं, और एक सिद्धान्त आम तौर पर अनेक चरों को समाहित किए रहता है। अपराध की व्याख्या करने के लिए हमें ऐसे सिद्धान्तों की आवश्यकता है जो अनेक परिवत्यों के बीच विशेष सम्बन्धों को मानता हुआ तर्कपूर्ण प्रस्थापनाओं को लिए हों। (2) कोहेन ने बहुकारक विचारधारा की एक प्रमुख मान्यता पर ऐतराज किया है कि कारकों में अपराध उत्पन्न करने का गुण निहित होता है। अपराध से सांख्यिकीय अपराध पर जुड़े पाए गए कारकों को अपराध को जन्म देने वाले कारक अथवा विभिन्न कारणों में से एक कारण माना जाता है। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि प्रत्येक कारक में कुछ मात्रा में अपराधजनक शक्तियाँ होती हैं। लेकिन कोहेन का तर्क है कि 'कारकों' में न केवल अपराधजनक गुण होते हैं, बल्कि उन्हें कारणों के साथ जोड़कर भ्रमित भी नहीं होना चाहिए। 'कारण' शक्ति को इस खोज के आधार पर नहीं माना जा सकता कि एक कारक या अनेक कारकों के संयोग का अपराध के साथ सांख्यिकीय सम्बन्ध है। (3) अनेक, यदि अधिकतर नहीं, बहु कारकवादी अध्ययनों में 'बुरे कारणों' की बात कही गई है। त्रुटिपूर्ण धारणा यह है कि बुरे नतीजों (अपराध) की पूर्व दृष्टांत (जैविकीय विकृतियाँ, निम्न बुद्धि लब्धि, विकृत मनः स्थितियाँ, रहन-सहन की खराब दशाएँ) भी खराब ही होनी चाहिए। सदरलैण्ड ने भी अपराध या अन्य सामाजिक समस्याओं को समझने के विरूद्ध इस तर्क का सन्दर्भ दिया है। उसका कहना है : "जब हम अपराध की व्याख्या करते हैं, तब हम खराब परिस्थितियों को श्रृंखलाबद्ध करना शुरू कर देते हैं जिसकी निंदा कोई भी 'अच्छा नागरिक' करेगा और उन परिस्थितियों को कारण की संज्ञा देते हैं। अपराधशास्त्र में यह

त्रुटिपूर्ण प्रक्रिया अपराध को, अन्य मौजूदा स्थितियों को, जिनको हम अच्छा मानते हैं व अनुकूल समझते हैं, बदले बिना समाप्त कर देने की इच्छा से पैदा हो सकती है, अर्थात अपराधशास्त्री अपने को मौजूदा सामाजिक व्यवस्था के साथ जोड़ने का प्रयास करते हैं और अपराध के कारणों को उन 'कारकों' में खोजते हैं जिनको उन सामाजिक दशाओं को बदले बिना कम किया जा सकता है जिन (दिशाओं) को वे अच्छा मानते हैं या जिनको किसी भी भावनाओं को आहत किए बिना आसानी से कलंकित किया जा सकता है।

2.5 सारांश

वे कार्य जो समाज द्वारा बनाए गये नियमों या कानून द्वारा पारित अधिनियमों का उल्लंघन करते हैं अपराध है। अपराध के लिए राज्य एवं समाज द्वारा अलग-अलग मानक तय किये गये हैं। कानूनी दृष्टिकोण में अपराध के क्लासिकल, नवविचलन एवं मार्क्सवादी विचार शामिल हैं जबकि समाज शास्त्री दृष्टिकोण से अपराध के विभिन्न सिद्धान्त हैं जिसमें सम्पर्क, उपसंस्कृति, लेबलिंग, अप्रतिमानता, अवसर का सिद्धान्त आदि प्रमुख हैं।

2.6 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न - 1

1) लेबलिंग के सिद्धान्त का प्रतिपादक कौन है?

2) मार्क्सवादी सिद्धान्त कानूनी है या समाजशास्त्रीय?

3) सदरलैण्ड के सिद्धान्त का नाम बताइए?

बोध प्रश्न - 2

1) अपराधी उपसंस्कृति सिद्धान्त क्या है? वर्णन कीजिए।

2) सदरलैण्ड के अपराध सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।

3) अप्रतिमानता क्या है? व्याख्यायित कीजिए।

बोध प्रश्न - 3

1) अपराध की कानूनी व्याख्या क्या है? अपराध के विभिन्न दृष्टिकोणों की व्याख्या कीजिए।

2) अपराध के समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों में किन्हीं 3 का वर्णन कीजिए।

3) अपराध के कानूनी एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) हावर्ड बेकर 2) कानूनी सिद्धान्त

3) विभिन्न सम्पर्क का सिद्धान्त

इकाई -3 अपराध के सामान्य कारण

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 अपराध के कारण

3.2.1 वैयक्तिक कारण अथवा शारीरिक कारण

3.2.1.1 आयु

3.2.1.2 लिंग

3.2.1.3 शरीर रचना

3.2.1.4 मानसिक दशा

3.2.2 पारिवारिक कारण .

3.2.3 सामाजिक कारण

3.2.4 आर्थिक कारण

3.2.5 राजनैतिक कारण

3.2.6 अन्य कारण

3.2.6.1 भौगोलिक कारण

3.2.6.2 समाचार पत्र

3.2.6.3 चित्रपट, दूरदर्शन आदि

3.2.6.4 सहशिक्षा

3.3 महिलाओं पर बढ़ते अत्याचार के कारण

3.4 सारांश

3.5 बोध प्रश्न

3.6 बोध प्रश्न के उत्तर ।

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप

- अपराध में परिवार की भूमिका पर चर्चा कर सकेंगें।
- अपराध के विभिन्न कारकों का विश्लेषण कर सकेंगें।
- महिलाओं पर हो रहे अत्याचार के कारणों की चर्चा कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

मनुष्य जन्म से अपराधी नहीं होता। वह खाली हाथ जन्म लेता है जो उसके निःस्वार्थी होने का प्रमाण है। यह तो समय और काल की वे परस्थितियाँ है जो उसे अपराधी बना देती हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि मनुष्य के कर्म-अकर्म उसे पतन के गर्त में ढकेल देते हैं। बुरे कर्म उसे अपराध की ओर प्रवृत्त कर देते हैं तो सत्कर्मों से वह इस जीवन रूपी श्वेत चादर को यथावत (निष्कलंक) रखकर अपना मनुष्य जीवन सफल कर लेता है।

लेकिन प्रश्न यह है कि मनुष्य अपराधी क्यों बनता है? वे कौन से परिस्थितियाँ हैं जो उसे अपराधी बना देती हैं? इस अध्याय में यही हमारे अध्ययन का विषय है।

3.2 अपराध के कारण

मोटे तौर पर हम अपराध के सामान्य कारणों को निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत रख सकते हैं -

(1) वैयक्तिक अथवा शारीरिक कारण

(2) पारिवारिक कारण

(3) सामाजिक कारण

(4) आर्थिक कारण

(5) राजनैतिक कारण एवं

(6) अन्य कारण।

3.2.1 (1) वैयक्तिक अथवा शारीरिक कारण

यह विचित्र किन्तु सत्य है कि व्यक्ति की शारीरिक विशेषताओं अथवा उसके लक्षणों का अपराध से सम्बन्ध होता है। आयु, लिंग, शरीर-रचना, भौतिक वातावरण, आनुवंशिकता आदि का अपराधों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यहाँ हम सबका पृथक-पृथक अध्ययन करेंगे -

3.2.1.1 (1) आयु

अपराध को प्रभावित करने वाला पहला शारीरिक लक्षण 'आयु' है। इस सम्बन्ध में अपराधशास्त्रियों द्वारा समय-समय पर शोध किया गया और यह निष्कर्ष निकाला गया कि -

(क) अपराध की प्रकृति आयु पर निर्भर करती है।

(ख) समय-समय पर अपराध की आयु में परिवर्तन होता रहता है।

(ग) 15-16 वर्ष की आयु में साधारण एवं 25-26 वर्ष की आयु में गम्भीर प्रकृति के अपराध किये जाते हैं।

(घ) वृद्धावस्था में यौन अपराध अधिक किये जाते हैं।

(ङ) अपराध की आयु सभी स्थानों पर एक सी नहीं होती। यह एक स्थान से दूसरे स्थान पर भिन्न-भिन्न होती है।

(च) महिलायें किसी भी आयु में पुरुषों की अपेक्षा कम अपराध करती हैं।

3.2.1.2 (2) लिंग

अब तक यह धारणा रही है कि महिलाओं की अपेक्षा पुरुष अधिक अपराध करते हैं। इस सम्बन्ध में एकत्रित आंकड़े इस बात की पुष्टि करते हैं। पुरुषों द्वारा अधिक अपराध कारित किये जाने के पीछे मुख्य कारण उनकी शरीर रचना मानी जाती है। महिलाओं द्वारा कम अपराध कारित किये जाने के पीछे भी यही तथ्य काम करता है। महिलायें कम अपराध इसलिए करती हैं, क्योंकि -

(क) उन पर पारिवारिक एवं सामाजिक नियंत्रण पुरुषों की अपेक्षा कड़ा होता है।

(ख) वे पुरुषों की अपेक्षा कम शक्तिशाली एवं कम साधन सम्पन्न होती हैं।

(ग) महिलाओं में अनैतिक अपराधों के परिणामों का भय बना रहता है।

(घ) सामाजिक आदर्श एवं मूल्यों के कारण भी महिलाओं के अपराध कम प्रकाश में आते हैं।

(ङ) महिलायें पुरुषों की अपेक्षा अधिक करुण, दयालु एवं क्षमाशील प्रवृत्ति की होती हैं।

लेकिन आज साथ ही यह भी कहा जाने लगा है कि महिलायें अपनी सामाजिक मर्यादाओं को लांघकर अपराध जगत में निरन्तर आगे बढ़ती जा रही हैं। कहा तो यहाँ

तक जाता है कि कुछ क्षेत्रों में तो नारी ने पुरुषों को भी पीछे छोड़ दिया है। अपकर्षण, ठगी, भ्रूण-हत्या, गर्भपात, उठाईगीरी, गबन, वेश्यावृत्ति आदि अपराध आज पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं द्वारा अधिक कारित किये जाते हैं।

गाड़ी यान आदि वाहनों में यात्रियों को मोह-जाल में फंसाकर लूट लेना, किसी गैर पुरुष के साथ चित्र आदि लेकर उसे भयभीत कर धन वसूल करना, तस्करी करना, महिलाओं के लिए आम बात है।

राजनैतिक क्षेत्र में तो जासूसी के लिए महिलायें सुविख्यात रही हैं।

3.2.1.3 (3) शरीर रचना

मनुष्य की शारीरिक रचना, आकार, आकृति आदि भी अपराध के कारक माने गये हैं। व्यवहार में हम यह देखते हैं कि एक अच्छे व्यक्तित्व वाला व्यक्ति कम अपराध करता है, जबकि कुरूप, नाटे कद वाले व्यक्ति अधिक अपराध करते हैं। कारण स्पष्ट है। अच्छे व्यक्तित्व वाला व्यक्ति समाज में न केवल प्रतिष्ठा पाता है, अपितु वह आर्थिक दृष्टि से भी सम्पन्न होता है, जबकि कुरूप एवं नाटे कद आदि वाले व्यक्ति -

(क) समाज में हँसी एवं उपेक्षा के पात्र समझे जाते हैं।

(ख) उन्हें नौकरियाँ आदि नहीं मिलती हैं।

(ग) खेल-कूद एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में इनका चयन नहीं हो पाता है।

(घ) वे अपने-आप से भी घृणा करने लगते हैं।

परिणाम यह होता है कि ऐसे व्यक्ति अपराध की ओर प्रेरित होते हैं। ऐसे लोग स्वभाव से चिड़चिड़े एवं उत्तेजित होते हैं। वे बदले की भावना भी रखते हैं। निजी घृणा से आत्महत्या के अधिकांश मामले इन्हीं लोगों के मिलते हैं।

3.2.1.4 मानसिक दशा

शारीरिक लक्षणों के साथ-साथ मानसिक विकास अथवा मनोविकृति भी अपराध के प्रमुख कारण माने जाते हैं।

"अपराधी व्यक्ति की शरीर रचना उन व्यक्तियों से भिन्न होती है जो अपराधी नहीं हैं। अपराधी मनोरोग के कारण भी अन्य व्यक्तियों से भिन्न होता है।" - लोम्ब्रोसो

सामान्यतः निम्नांकित व्यक्ति मनोरोगी की श्रेणी में रखे जाते हैं -

(1) मंद बुद्धि वाले व्यक्ति,

(2) मनोविक्षिप्त व्यक्ति,

(3) विकृत-चित्त व्यक्ति,

(4) भावात्मक अस्थिरता वाले व्यक्ति,

(5) हीनता की भावना रखने वाले व्यक्ति, एव

(6) मानसिक अस्थिरता वाले व्यक्ति आदि।

MASY no 49

मंद बुद्धि को हम मानसिक दुर्बलता भी कह सकते हैं। अब तक यह माना जाता रहा है कि मंद बुद्धि वाले व्यक्ति अधिक अपराध करते हैं। इस कारण उनमें यह जानने की क्षमता का अभाव होता है कि -

(क) वे क्या कर रहे हैं, तथा

(ख) उसके क्या परिणाम होंगे।

लेकिन आगे चलकर सदरलैण्ड ने यह मत व्यक्त किया कि अपराध व्यक्ति करने में मंद बुद्धि की अपेक्षा तीव्र बुद्धि का अधिक योगदान रहता है। कूटरचना, ठगी आदि अपराध तीव्र अथवा कुशाग्र बुद्धि वाले व्यक्तियों द्वारा ही कारित किये जाते हैं।

हीनता की भावना भी मनुष्य में अपराधी स्वभाव को जन्म देती है। हीनता से मनुष्य में क्रोध, घृणा, भय आदि का उदभव होता है और ये मनुष्य को अपराध की ओर प्रवृत्त करते हैं। ठीक यही बात मानसिक अस्थिरता पर लागू होती है। मानसिक रूप से अस्थिर व्यक्ति चिड़चिड़े, क्रोधी, निराश, भ्रमित एवं आक्रोशी स्वभाव के होते हैं और ये सभी अपराध की जड़ हैं। भावात्मक अस्थिरता की दशा में भी व्यक्ति निर्णय लेने की क्षमता खो बैठता है। वह सत्य-असत्य का विवेचन नहीं कर पाता है और गलत निर्णय से कोई न कोई अपराध कर बैठता है।

इन सब के साथ साथ मद्यपान, स्वापक द्रव्य, मनःप्रभावी पदार्थ आदि के सेवन से भी मनुष्य अपराध की ओर उन्मुख होता है। शराब, अफीम, मार्फीन, कोकीन आदि का सेवन करने वाले व्यक्ति अधिकतर बलात्कार, अप्राकृतिक मैथुन, चोरी, आवारागर्दी आदि अपराध कारित करते देखे जाते हैं इनके सेवन से -

(क) उत्तेजना आती है,

(ख) शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों का ह्रास होता है,

(ग) सोचने एवं समझने की क्षमता नष्ट हो जाती है,

(घ) आय कम हो जाने से आर्थिक संकट उत्पन्न हो जाता है,

(ङ) असामान्य व्यवहार करने की आदत पड़ जाती है। वे सभी अपराध के लक्षण हैं।

3.2.2 पारिवारिक कारण

यह एक जाना-माना तथ्य है कि - "परिवार अथवा घर बालक की प्रथम पाठशाला है।" स्वावलम्बी होने तक बालक घर में ही रहता है, अपने परिजनों से ही सब कुछ सीखता है और उन्हीं का अनुसरण करता है। घर में जैसा वातावरण मिलता है, बालक वैसा ही हो जाता है। बालक की स्थिति एक ऐसी कच्ची मिट्टी के समान होती है, जिसे कैसा भी रूप दिया जा सकता है। उसे मानव भी बनाया जा सकता है और दानव भी।

यही कारण है कि टैफ्ट ने इसे - "न केवल प्रथम अपितु सबसे अधिक सजातीय, अंतरंग एवं सम्मिलित सामाजिक पाठशाला माना है।"

जिन घरों अथवा परिवारों के बालक अपराधी, पाये जाते हैं, उनके बारे में सदरलैण्ड का विचार है कि -

1. ऐसे परिवार के अन्य सदस्य अपराधी, अनैतिक आचरण वाले एवं मद्यपान करने वाले होते हैं।
2. मृत्यु, विवाह-विच्छेद अथवा परित्याग के कारण परिवार में या तो पिता नहीं होता है या माता या दोनों ही नहीं होते हैं।
3. माता-पिता के नियंत्रण में कमी, चाहे उसका कारण अज्ञानता, अन्धापन, अन्धविश्वास अथवा संवेदनशीलता में कमी आदि कुछ भी रहा हो।
4. घर अथवा परिवार में पक्षपात, अति-व्याकुलता, अपेक्षा, ईर्ष्या, अत्यधिक सख्ती अथवा कठोरता, हस्तक्षेप, पारिवारिक विषमता, भीड़-भाड़ आदि का वातावरण हो।
5. जाति व धर्मगत गृह, धात्री गृह, संस्थानित गृह अथवा परम्परा एवं मान्यताओं में विभिन्नता वाले गृह, धात्री गृह, संस्थानित गृह अथवा परम्परा एवं मान्यताओं में विभिन्नता वाले गृह।
6. ऐसा परिवार, जिसकी आय अपर्याप्त हो, बेकारी अथवा बेरोजगारी हो तथा माता बाहर काम करती हो।

इस प्रकार स्पष्ट है कि -

"अनुशासन का महत्व निर्धनता की अपेक्षा चार गुना अधिक है। घर का अनुशासन उपेक्षा के कारण बिगड़ता है। बहुत से घरों में बालकों के प्रशिक्षण व नियंत्रण पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। अप्रवासियों के बच्चे व धात्री-गृहों से पलने वाले

बच्चे अधिकतर अनुशासनहीनता एवं अप्रशिक्षित माने जाते है।'' - ग्लुयेक

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि निम्नांकित पारिवारिक परिस्थितियां बालक को अपराधी बनाने के लिए उत्तरदायी होती है -

(1) बालक पर माता-पिता का पर्याप्त नियंत्रण नहीं होता है। बालक जो कुछ भी करते हैं, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, माता-पिता उसे सहन कर लेते हैं।

(2) परिवार में माता अथवा पिता अथवा दोनों ही नहीं होते हैं। जिस परिवार में माता-पिता नहीं होते हैं, उसमें बालकों पर नियंत्रण नहीं रह पाता है जिससे वे अनुशासनहीन हो जाते हैं। माता-पिता के नहीं होने का कुप्रभाव खास तौर से बालकों एवं नवयुवतियों पर पड़ता है। इसका एक कारण और भी है। परिवार में किसी बड़े व्यक्ति के नहीं होने से बाहर के अपराधी व्यक्ति ऐसे परिवार के सदस्यों को अपने चंगुल में फँसा लेते हैं।

पारिवारिक विघटन के निम्नांकित कारण हो सकते हैं -

(क) मृत्यु

(ख) परित्याग,

(ग) विभाजन,

(घ) तलाक,

(ङ) माता अथवा पिता का जेल, सुधारगृह, पागलखाने आदि में चले जाना।

3. परिवार के अन्य सदस्य अपराधी प्रवृत्ति के होते हैं तो बालक भी उनके साथ-साथ अपराधी हो जाते हैं। यह सही भी हैं, क्योंकि बालक प्राथमिक स्तर पर जो कुछ सीखता है, वह अपने माता-पिता आदि से सीखता है। माता-पिता अथवा अन्य परिवारों का असर बच्चों में आना स्वाभाविक है। कई परिवार तो ऐसे देखे गये हैं जिनमें माता-पिता अपने बच्चों को अपराध करने के लिए प्रेरित करते हैं।

4. जिस परिदार में बालकों को स्वच्छ वातावरण नहीं मिलता है। या तो बालकों को अधिक सताया जाता है या उनकी सामान्य इच्छाओं की पूर्ति नहीं की जाती है। ऐसे बालक घर से विमुख होकर अपराध जगत में सम्मिलित हो जाते हैं । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जिस घर में बालकों की पर्याप्त देखभाल अथवा परवरिश नहीं होती है, उसमें अक्सर बालक बिगड़ जाते हैं और वे अपराधी बन जाते हैं। अपराधों का एक मुख्य कारण अभाव होता है।

बम्बई उच्च न्यायालय ने तो आत्महत्या के प्रयत्न का कारण जीविकोपार्जन के साधनों का अभाव होने पर इसे अपराध मानने से ही इन्कार कर दिया है। उच्चतम न्यायालय ने अपने एक महत्वपूर्ण निर्णय में यह कहा है कि - "भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 309 असंवैधानिक है, अतः उसे संहिता से अलग कर दिया जाना चाहिए। किसी भी व्यक्ति को उसके अहित, अपाय, नुकसान अथवा इच्छा के विपरीत जीने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी मृत्यु को अपना मित्र मानते थे। मृत्यु पीड़ाओं से मुक्त करती है। मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है। वही अपनी आत्मा का स्वामी है।"

विधि आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति डी0ए0 देसाई ने बम्बई उच्च न्यायालय के फैसने का समर्थन करते हुए आत्महत्या के लिए प्रेरित करने वाले घटक तत्वों को हत्या के लिए जिम्मेदार माना है।

5. इनके अतिरिक्त निम्नांकित पारिवारिक परिस्थितियाँ भी बालक को अपराधी बनाने के लिए जिम्मेदार कहीं जा सकती हैं '

(क) परिवार में बालक की उपेक्षा,

(ख) सौतेला व्यवहार,

(ग) अत्यधिक कठोर अनुशासन,

(घ) असुरक्षा,

(ङ) परिजनों का चिड़चिड़ापन, रूखापन, क्रोधी स्वभाव आदि,

(च) साहचर्य का अभाव,

(छ) कुसंस्कार,

(ज) आज्ञाकारिता का अभाव,

(झ) माता-पिता के आपसी झगड़े आदि।

3.2.3 सामाजिक कारण

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में ही जन्म लेता है, पलता है एवं मर जाता है। समाज में अलग उसका अस्तित्व नहीं हो सकता। जैसा समाज होता है वैसा ही व्यक्ति होता है अथवा जैसा व्यक्ति होता है वैसा ही समाज बन जाता है। दोनों में एक दूसरे का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। समाज एवं सामाजिक परिस्थितियाँ ही व्यक्ति का निर्माण करती हैं तो यही व्यक्ति के पतनका कारण भी होता है।

आज व्यक्ति पर सामाजिक मान्यताओं, रीति-रिवाजों एवं अनुशासन का काफी प्रभाव पड़ती है। स्वस्थ सामाजिक मान्यताओं से व्यक्ति ईमानदार, सुसंस्कृत एवं स्वाभिमानी बनता है। यदि समाज में मानव मूल्यों की कदर होती है तो व्यक्ति अच्छा नागरिक होता है और यदि समाज में मानव मूल्यों की उपेक्षा होती है तो व्यक्ति अपराध की ओर उन्मुख होता है। समाज चाहे तो व्यक्ति बन सकता है और समाज चाहे तो व्यक्ति बिगड़ सकता है। जिस समाज में व्यक्ति के व्यक्तित्व की कदर नहीं होकर उसकी आर्थिक स्थिति, सम्पन्नता, पद अथवा शक्ति की पूछ होती है, वहाँ व्यक्ति में निराशा एवं हीन भावना का प्रादुर्भाव होता है और यही निराशा एवं हीन भावना आगे चलकर अपराध का कारण बनती है।

इसी प्रकार बाल-विवाह, अस्पृश्यता अर्थात छुआछूत भी ऐसा ही एक सामाजिक अपराध है। सवर्ण द्वारा आज भी निम्न वर्ग के लोगों पर कहर ढाये जाते हैं। उन्हें नाना प्रकार की यातनाएं दी जाती हैं। अत्याचार, अनाचार एवं शोषण से पीड़ित व्यक्ति अपराध की ही शरण लेता है। इस प्रकार सामाजिक परिस्थितियाँ एवं वातावरण भी अपराध का मुख्य कारण कहा जा सकता है। साहित्य समाज का दर्पण होता है तो व्यक्ति भी समाज का एवं समाज व्यक्ति का दर्पण होता है।

3.2.4 आर्थिक कारण

अर्थ समस्त झगड़ों की जड़ है। स्वार्थ, लोभ, लालच, प्रलोभन आदि सभी अर्थ के कारक हैं। यही अपराधों के जनक हैं। आज मानव येन-केन प्रकारेण अधिकाधिक धन अर्जित करना चाहते हैं। उसके लिए वह कुछ भी करने को तैयार है। जिसके पास धनाभाव है, वह जीविकोपार्जन के लिए पर्याप्त धन चाहता है। तो जिसके पास थोड़ा बहुत धन है, वह अधिक धनी बनना चाहता है। जब तक मनुष्य में संतोष की भावना नहीं आती, वह यह दौड़ दौड़ता रहता है। ऐसे मनुष्य कभी सुखी नहीं रहते।

जिनके पास अर्थ का बिल्कुल अभाव है, वे सामान्यतया निम्नांकित अपराध करते हैं -

1. चोरी,
2. लूट,
3. डकैती,
4. रिष्टि,
5. छल,
6. वेश्यावृत्ति

7. जुआ आदि।

वे व्यक्ति जिनके पास धन तो होता है लेकिन वे और धनी होना चाहते हैं, सामान्तया बड़े अपराध करते हैं और ऐसे अपराध करते हैं जो प्रकट नहीं होते। समाज में भी ऐसे अपराधों को प्रायः घृणित नहीं समझा जाता। कभी कभी तो ऐसे अपराधी समाज में प्रतिष्ठा पाते हैं। ये 'सफेदपोश' अपराध कहलाते हैं। सामान्यतया निम्नांकित अपराध इस कोटि में आते हैं -

1. तस्करी,

2. काला बाजारी,

3. अपमिश्रण,

4. रिश्वत आदि।

इस प्रकार कुल मिलाकर सभी व्यक्ति अपराधों में लिप्त रहते हैं। लेकिन जहाँ तक तुलनात्मक संख्या का प्रश्न है, अभावग्रस्त वर्ग के लोग अधिक अपराध करते हैं। इसका मुख्य कारण अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है।

अपराधों के आर्थिक कारण की अनेक अपराधशास्त्रियों एवं दार्शनिकों ने पुष्टि की है।

अरस्तू के अनुसार - "स्वर्ण या धन की लालसा ही अपराधों का मूल कारण होता है। अधिकांश अपराध आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही न होकर, अतिरिक्त धन या वस्तुयें प्राप्त करने के लिए किये जाते हैं।"

प्लेटो की मान्यता है कि - "प्रलोभन ही अपराध का मुख्य कारण है।"

बकारिया का कहना है कि -"निर्धनता, भुखमरी आदि के कारण मनुष्य के व्यक्तित्व पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और वह निराशा तथा हतोत्साह के कारण अपराध करने को विवश हो जाता है।"

टेफ्ट का भी यही मानना है कि - "मनुष्य में अपने सामाजिक स्तर के अनुसार भौतिक वस्तयें जुटाने में असमर्थ रहने पर आर्थिक हीनता का भाव निर्मित होता है। यदि वह वैधानिक साधनों से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ रहता है तो वह अवसर पाकर अपराध द्वारा इनकी पूर्ति करने में लग जाता है।"

वोंजर ने पूँजीवादी व्यवस्था को अपराधों का कारण मानते हुए कहा है -

1. पूँजीवादी व्यवस्था स्वार्थ की भावना को प्रोत्साहित करती है।

2. पूँजीवादी व्यवस्था में स्त्रियों एवं बालकों से कम मजदूरी पर काम लिया जाता है।

3. पूँजीवादी व्यवस्था में अधिक समय तक काम लिया जाता है जिससे मानसिक थकान एवं तनाव पैदा होता है।

4. पूंजीवादी व्यवस्था में निर्धन मजदूरों एवं कर्मकारों का शोषण किया जाता है।

5. पूंजीवादी व्यवस्था में निर्धन लोग अक्सर अशिक्षित होते हैं।

3.2.5 राजनैतिक कारण

अपराधों के राजनैतिक कारणों से अभिप्राय यहाँ सत्ता एवं सरकारी तंत्र से है। आज देश की बागडोर नौकरशाही के हाथ में है। जिस देश के अधिकारी एवं कर्मचारी ईमानदार, परिश्रमी, एवं कर्तव्यपरायण होंगे वहाँ की शासन व्यवस्था स्वच्छ एवं लोक-कल्याणकारी होगी। लेकिन जहाँ अधिकारी एवं कर्मचारी भ्रष्ट, अनैतिक एवं आलसी होंगे वहाँ देश की स्थिति भिन्न होगी। राजनेता भी इन दोनों स्थितियों के लिए जिम्मेदार होते हैं। राजनेता अपने स्वार्थों के पीछे नौकरशाही को गलत श्रेय देते हैं जिससे विधि-व्यवस्था का सख्ती से प्रवर्तन नहीं हो पाता है और समाज में अपराध बढ़ते हैं।

राजनेता एवं नौकरशाही से अपराधों को बढ़ावा मिलने के मुख्यतया निम्नांकित कारण माने जाते हैं-

1. राजनेता अपने स्वार्थों (मद्यपान, वेश्यावृत्ति, जुआ आदि) के कारण विधि का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान करते हैं।

2. राजनेता अपने एवं अपने चहेतों के हितों के लिए क्षतिकारी (लोक अहितकारी) विधियों का निर्माण करते हैं।

3. राजनेता अक्सर अपने गुट के अपराधियों को प्रश्रय प्रदान करते हैं।

4. राजनेता राज्य के हित में की गई संविदाओं से निजी लाभ प्राप्त करते हैं।

3.2.6 अन्य कारण

अब हम अपराध के अन्य कारणों पर विचार करते हैं।

3.2.6.1 भौगोलिक वातावरण

देश का भौगोलिक वातावरण भी अपराध को प्रभावित करता है। इसके पीछे तर्क यह दिया जाता है कि भौगोलिक परिस्थितियाँ एवं वातावरण मनुष्य में आदत एवं स्वभाव का निर्माण करते हैं। साथ ही इनसे अपराध में सहायक एवं बाधक वातावरण तैयार होता

है। इस सम्बन्ध में समय-समय पर शोध किये गये और जो निष्कर्ष सामने आये, वे इस प्रकार हैं -

(क) भूमध्य रेखा से दूर होने पर सम्पत्ति सम्बन्धी अपराध बढ़ते हैं व शरीर सम्बन्धी अपराध कम होते हैं।

(ख) पर्वतीय क्षेत्रों में अपराध अधिक होते हैं जबकि मैदानी क्षेत्रों में कम।

(ग) समुद्री किनारों पर अपराध अधिक होते हैं।

(घ) शीत ऋतु में सम्पत्ति सम्बन्धी एवं ग्रीष्म ऋतु में शरीर सम्बन्धी अपराध अधिक होते हैं।

(ङ) भारत के भौगोलिक वातावरण में जुलाई के मध्य में हत्या व दंगे, सितम्बर से जनवरी माह में डकैती एवं बलात्कार के अपराध अधिक होते हैं। विवाहित महिलायें अधिकांशतः शीत ऋतु में आत्महत्या करती हैं जबकि अविवाहित पुरुष बसन्त या वर्षा ऋतु में तथा विद्यार्थी व बेरोजगार व्यक्ति अप्रैल से जुलाई के बीच अधिक आत्महत्या करते हैं।

वैज्ञानिकों का मत है कि व्यापक खगोलीय परिवर्तन के फलस्वरूप आबादी का पांचवाँ भाग असन्तोष, उत्तेजना एवं मानसिक असन्तुलन के कारण आत्महत्या का शिकार हो सकता है।

3.2.6.2 समाचार पत्र

यह निर्विवाद सत्य है कि साहित्य मनुष्य की मानसिक खुराक होती है। व्यक्ति जैसा साहित्य पढ़ता है वैसा ही उसका आचरण हो जाता है। अच्छा साहित्य मनुष्य को सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाता है तो घटिया अथवा साहित्य मनुष्य को अपराध की ओर प्रवृत्त करता है। यह बिल्कुल सही है। आज ऐसे अनेक समाचारपत्र एवं पत्रिकाएँ हैं जो आपराधिक घटनायें एवं कहानियां प्रकाशित करती हैं। इन्हें पढ़कर व्यक्ति वैसे ही अपराध करने की तकनीक सीखता है और अपराध करता है। समाचार पत्रों एवं पत्र-पत्रिकाओं की जो सामग्री अपराध की ओर प्रवृत्त करती है, वह मुख्य रूप से इस प्रकार है -

(क) पुरुष एवं स्त्रियों के नग्न-चित्र,

(ख) वासनात्मक चित्र,

(ग) आपराधिक घटनाओं का चित्रण,

(घ) आपराधिक कार्यों एवं अपराधियों की प्रशंसा

(ङ) आतंकपूर्ण समाचार

(च) अपराधों की तकनीक,

(छ) अपराधों के सामान्य असर का वर्ण

(ज) अपराधों का लाभ-चित्रण,

(झ) न्यायिक व्यवस्था का आलोचना,

(ञ) अपराधियों के प्रति सहानुभूति,

(ट) अपराधों को अतीत की सभ्यता से जोड़ना,

(ठ) अपराधी स्वभाव की पाश्चात्य संस्कृति की प्रशंसा, आदि।

आज वस्तुतः आवश्यकता इस बात की है कि - "अपराधों की रोकथाम एवं आपराधिक प्रवृत्ति को हतोत्साहित करने के लिए आदर्श पत्रकारिता को प्रोत्साहन दिया जाये।"

3.2.6.3 चित्रपट, दूरदर्शन आदि

चित्रपट (सिनेमा) एवं दूरदर्शन (टेलीविजन) आदि को भी यदि हम अपराध का सहायक कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आज अधिकांश अपराध चलचित्र देखकर कारित किये जाते हैं। चलचित्रों से अपराध कारित करने की तकनीक सीखी जाती है। चलचित्रों में कई ऐसी बातें प्रदर्शित की जाती है। जो मानव को सहज ही अपराध की ओर ले जाती हैं, जैसे -

(क) नग्न चित्र,

(ख) वासनात्मक चित्र

(ग) उत्तेजित गाने एवं संगति,

(घ) अर्द्ध नग्न वेशभूषा,

(ङ) शरीर का भोंडा प्रदर्शन,

(च) यौन-भावनाओं का खुला चित्रण,

(छ) अपराधों की तकनीक का प्रदर्शन,

(ज) धन प्राप्ति की इच्छा जागृत करनेवाले दृश्य, आदि।

3.2.6.4 सह-शिक्षा

यह सत्य है कि आज सह-शिक्षा के पक्षधर अधिक हैं। यह भी सही है कि सह-

शिक्षा पुरूष एवं स्त्रियों में बन्धुत्व, एकता, सहयोग एवं परस्पर सम्मान की भावना को जन्म देती है, लेकिन साथ ही साथ इस वरदान के साथ यह अभिशाप भी सिद्ध हुई है।

3.3 महिलाओं पर बढ़ते अत्याचार के कारण

आज एक तरफ जहाँ महिला सशक्तीकरण की बड़ी-बड़ी बातें की जाती है। वहीं दूसरी तरफ महिलाओं पर दिन-प्रतिदिन बढ़ते अत्याचार चिन्ता एवं चिन्तन का विषय है। अधिकांश महिलायें बलात्कार, हत्या एवं यौन उत्पीड़न जैसे अपराधों की शिकार हैं। अपराध जगत में मुम्बई, चेन्नई एवं कोलकाता जैसे महानगरों के आंकड़े चौकाने वाले हैं।

राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो की वर्ष 2002 की रिपोर्ट के अनुसार दिल्ली अन्य महानगरों की अपेक्षा महिलाओं के लिए अधिक असुरक्षित है। वर्ष 2002 में जहाँ दिल्ली में बलात्कार के 422 मामले दर्ज हुए, वहाँ मुम्बई में यह आंकड़ा 150, कोलकाता में 70 और चेन्नई में 40 तक पार कर गया। देश की राजधानी दिल्ली में वर्ष 2002 में 910 लोगों को महिलाओं के साथ छेड़खानी के आरोप में गिरफ्तार किया गया तो वर्ष 2003 में यह आंकड़ा 13 प्रतिशत बढ़कर 1559 तक पहुँच गया। वर्ष 2004 में कमोबेश स्थिति ऐसी ही रहीं। यदि पारिवारिक स्तर पर महिलाओं के प्रति कारित अपराधों पर नजर डालें तो वर्ष 2000 में इनकी संख्या 982 थी जो बढ़ते-बढ़ते 1000 का आंकड़ा पार कर गई। अकेले दिल्ली के महिला आयोग में महिला उत्पीड़न के लगभग 8000 मामले दर्ज हुए हैं।

आश्चर्य की बात तो यह है कि महिलाओं के खिलाफ अपराध के नये नये मामले खतरनाक रूप में सामने आ रहे हैं। वर्ष 2004 में दिल्ली में बलात्कार की घटनाओं का आंकड़ा 510 तक पार कर गया। वहाँ औसतन प्रतिदिन एक महिला बलात्कार का शिकार होती है। कभी कभी यह संख्या दो, और चार तक पहुँच जाती है। बलात्कार के मामले में अधिकांश आरोपी पीड़ित महिलाओं के परिचित होते हैं जो मौका पाकर हैवानियत पर उतर जाते हैं। बदलते वक्त के साथ अपराध करने का तरीका भी है अब महिलाओं के साथ छेड़खानी राह चलते नहीं, अपितु इन्टरनेट के जरिये होने लगी है।

आज सोच एवं चिन्तन का विषय इन घटनाओं के कारण तलाशने का है। राष्ट्रीय महिला आयोग के अध्यक्षा पूर्णिमा आडवाणी का कहना है - "लोगों में कानून का भय कम होने से महिलाओं के खिलाफ अपराध बढ़ रहे हैं। न्याय प्रक्रिया में यदि तेजी आती है तो अपराधियों में सजा मिलने का भय बढ़ेगा। एक विशिष्ट मनोचिकित्सक डॉ0 प्रदीप अग्रवाल इन घटनाओं का कारण केवल सामाजिक एवं आर्थिक पहलू ही नहीं मानकर यौन सम्बन्धों मं खुलेपन को मानते हैं। दिल्ली पुलिस के उपायुक्त उनका

मूल कारण सामाजिक मूल्यों में आ रही गिरावट को बताते हैं। हत्या के मामलों में सेक्स और त्रिकोणीय प्रेम प्रसंग प्रमुख कारक बनकर उभरे हैं।

कुल मिलाकर स्थिति बड़ी विस्फोटक है। महिलाओं के यौन उत्पीड़न के खिलाफ जंग छेड़ने वाली संस्था "जागो री" की संयोजक कल्याणी मेनन का यह कहना है कि महिलाओं के खिलाफ अत्याचार के अधिक मामले देश की राजधानी दिल्ली में दर्ज हो रहे हैं। वहाँ की लगभग 86 प्रतिशत महिलायें अपने आपको असुरक्षित महसूस करती हैं। विडम्बना तो यह है कि महिलाओं के संरक्षण के लिए पर्याप्त कानूनों एवं संसाधनों के होते अपराधों में दिन-प्रतिदिन अभिवृद्धि होती जा रही है। दिल्ली में राष्ट्रीय महिला आयोग के साथ दिल्ली महिला आयोग काम कर रहा है। अनेक स्वयंसेवी महिलायें एवं लगभग आधा दर्जन हेल्पलाइन सेवायें महिला अधिकारों के संरक्षण के कार्य में जुटी हैं। इन सबके बावजूद महिला अत्याचारों में निरन्तर बढ़ोत्तरी आज की एक सबसे बड़ी चुनौती है।

3.4 सारांश

मनुष्य जन्म से अपराधी नहीं होता है परिवार में जन्म के समय वह केवल एक प्राणी मात्र होता है किन्तु समाज में विभिन्न प्रकार के लोगों से सम्पर्क एवं वातावरण से सामंजस्य, समय और परिस्थितियों के कारण मनुष्य अपराधी बन जाता है। समाज में अपराध के विभिन्न कारण, जिसमें पारिवारिक कारण, राजनीतिक कारण सामाजिक, आर्थिक या विभिन्न अन्य कारण हो सकते हैं, दूरदर्शन, चलचित्र भी कभी कभी अपराध जनित दृश्य दिखाकर अपराध करने के लिए उकसाते हैं।

3.5 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न - 1

(1) "प्रलोभन ही अपराध का मुख्य कारण है।" किसने कहा?

(2) अपराध के दो कारण बताइये।

(3) चित्रपट एवं दूरदर्शन अपराध को किस तरह बढ़ाते है? 2 कारण बताएं।

बोध प्रश्न - 2

(1) अपराध के शारीरिक कारण बताइये।

(2) परिवार से व्यक्ति अपराधी बन सकता है? विश्लेषित कीजिए।

(3) सहशिक्षा किस तरह व्यक्ति को अपराधी बना सकती है?

बोध प्रश्न - 3

(1) महिलाओं पर बढ़ते अत्याचार की विवेचना कीजिए।

(2) अपराध के विभिन्न कारणों का वर्णन कीजिए।

(3) अपराध के प्रमुख कारण कौन से हैं? आपके दृष्टि से कौन सा कारक सर्वाधिक प्रासंगिक है और क्यों? विश्लेषण कीजिए।

3.6 बोध प्रश्न के उत्तर

(1) प्लेटो

(2) आर्थिक कारण, आसामाजिक कारण।

(3) वासनात्मक चित्र दिखाकर, उत्तेजित गानों एवं संगीत द्वारा ।

इकाई -4 भारत में अपराध

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 अपराध के प्रकार

4.2.1 सदरलैण्ड का वर्गीकरण

4.2.2 बोंगर का वर्गीकरण

4.2.3 क्लिनार्ड एवं क्विन्ने का वर्गीकरण

4.2.4 हेज का वर्गीकरण

4.3 प्रक्रिया के अनुसार भारत में अपराध

4.4 प्रकृति के आधार पर भारत में अपराध

4.4.1 राज्य के विरूद्ध अपराध

4.4.2 मानव शरीर के विरूद्ध अपराध

4.4.3 सम्पत्ति के विरूद्ध अपराध

4.5 साइबर अपराध

4.6 भारत में अपराध का तथ्यात्मक विश्लेषण

4.7 सारांश

4.8 बोध प्रश्न

4.9 बोध प्रश्न के उत्तर

4.0 उद्देश्य

- साइबर अपराध पर चर्चा कर सकेंगे।
- मानव शरीर के विरूद्ध किन-किन क्रियाओं को अपराध में शामिल किया जाता है का विश्लेषण कर सकेंगे।
- भारत में विभिन्न प्रकार के अपराधों की प्रकृति, विशेषताओं आदि पर चर्चा कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

अपराध समाज और राज्य दोनों अथवा इनमें से किसी एक के विरूद्ध किया गया कार्य है। अपराध के विभिन्न सिद्धान्तों से स्पष्ट है कि अपराध किसी एक कारण तथा एक तरह का नहीं है बल्कि यह विभिन्न कारणों से विभिन्न प्रकार का होता है भारत में भी कई प्रकार के अपराध होते हैं।

4.2 अपराध के प्रकार

अपराधों का वर्गीकरण कई आधार पर किया गया है।

4.2.1 सदरलैण्ड का वर्गीकरण

सदरलैण्ड ने अपराधों का वर्गीकरण गम्भीरता (Seniousness) और नृशंसता (atrocity) के आधार पर जघन्य अपराध (felony) और साधारण अपराध (Misdemeanour) में किया है। इन दोनों के बीच अन्तर इनके लिए दिए जाने वाले दण्ड के आधार पर किया गया है। जघन्य अपराध वे अपराध होते हैं जिनके लिए व्यक्ति को लम्बी अवधि का कारावास या मृत्यु दण्ड भी दिया जा सकता है ।यह वर्गीकरण अधिक लाभदायक नहीं है क्योंकि कुछ साधारण अपराध जघन्य अपराधों से भी अधिक खतरनाक हो सकते हैं। चोरी करने वाले व्यक्ति को दो या तीन वर्ष का कारावास भी हो सकता है (यदि वह बार-बार चोरी करता है) तो केवल दो तीनमाह का भी (यदि यह इसका प्रथम अपराध है) इसी प्रकार किसी धनी व्यक्ति की तिजोरी से एक-दो लाख की चोरी करने की अपेक्षा किसी ऐसे घर में हजारों रूपये के आभूषणों व धन की चोरी करना जहाँ लड़की का विवाह होना है, अधिक गम्भीर अपराध है।सदरलैण्ड के वर्गीकरण में एक और एतराज यह है कि यह अपराधियों को दो समूहों में जघन्य अपराधी (अधिक खतरनाक) और साधारण अपराधी (कम खतरनाक) - वर्गीकृत करने में प्रयोग किया जाता है। साधारण अपराधी सुधार के लिए अधिक संवेदनशील होते हैं। लेकिन एक कृत्य के आधार पर अपराधी को समूह/समाज के लिए खतरा मानना या सुधार या पुनर्सामाजीकरण की सम्भावना के लिए उपयुक्त समझना भ्रामक है। मान लें कि एक व्यक्ति चोरी करता है (साधारण अपराध) और उसके बाद एक ही माह के भीतर एक हत्या करता है। यह दो अपराध उसके चरित्र में परिवर्तन नहीं दर्शाते। इस वर्गीकरण के विरूद्ध एक और तर्क यह है कि एक समाज में जो अपराध जघन्य अपराध समझा जाता है वही दूसरे में साधारण समझा जा सकता है, या साधारण समझा जाने वाला अपराध उसी समाज में एक समय के बाद जघन्य अपराध समझा जा सकता है। इस आधार पर इस वर्गीकरण को अस्वीकार करने के पर्याप्त कारण हैं।

4.2.2 बोंगर का वर्गीकरण

बोंगर (Criminality and Economic Conditions, Boston, 1916) ने अपराधों को उनके उद्देश्यों के आधार पर चार श्रेणियों में बाँटा है : आर्थिक, यौन सम्बन्धी, राजनैतिक और विविध (जिनमें मुख्य उद्देश्य बदला लेना होता है।लेकिन यह नहीं माना जा सकता कि सभी अपराध केवल एक उद्देश्य से ही किए जाते हैं। एक राजनीतिज्ञ जो अपने राजनीतिज्ञ श्वसुर की हत्या करवा देता है उसका उद्देश्य राजनीतिक बदला लेना और साथ ही अपनी पत्नी के माध्यम से आर्थिक लाभ प्राप्त करना हो सकता है। क्योंकि उसकी पत्नी मृत राजनीतिज्ञ की इकलौती पुत्री हो सकती है। अतः यह वर्गीकरण स्पष्ट रूप से अपर्याप्त है।

सांख्यिकी उद्देश्यों से भी अपराध चार श्रेणियों में बाँटे गये हैं : व्यक्ति के विरूद्ध (हमला, हत्या), सम्पत्ति के विरूद्ध (चोरी, डकैती), सार्वजनिक नैतिकता के विरूद्ध (शराब पीना, अनुचित व्यवहार) और सार्वजनिक न्याय के विरूद्ध (गबन, विश्वासघात)। यह वर्गीकरण कानूनी दृष्टिकोण से लाभदायक हो सकता है लेकिन सैद्धान्तिक विश्लेषण के लिए नहीं।

लेमर्ट (1958) ने अपराधों का वर्गीकरण स्थितिजन्य (Sitvational) और सुव्यवस्थित (Systematic) श्रेणियों में किया है। स्थितिजन्य वे अपराध हैं जो स्थिति के दबाव में किए जाते हैं जब कि व्यवस्थित अपराध वे हैं जो नियोजित व सुव्यवस्थित रूप में किए जाते हैं। यह वर्गीकरण अपराधियों के सुधार के लिए महत्वपूर्ण है।

4.2.3 क्लिनार्ड और क्विन्ने का वर्गीकरण

क्लिनार्ड और क्विन्ने ने छः प्रकार के अपराध बताए हैं -

1. **हिंसात्मक व्यक्तिगत अपराध** - यह अपराध हिंसा के प्रयोग पर आधारित है ओर उन व्यक्तियों द्वारा किया जाता है जिनके विरूद्ध किसी अपराध का पूर्व अभिलेख नहीं मिलता। हत्या, बलात्कार, आक्रमण इस अपराध के कुछ उदाहरण हैं। इनके प्रति समाज की प्रतिक्रिया अत्यन्त कठोर व प्रबल होती है।

2. **सम्पत्ति सम्बन्धी आकस्मिक अपराध** - यह अपराध व्यक्तिगत सम्पत्ति के नियमों का उल्लंघन होता है। दूकानों से चोरी एक उदाहरण है।

3. **व्यावसायिक अपराध** - यह वह अपराध है जो आर्थिक उद्देश्य से व्यक्ति अपनी व्यावसायिक क्रियाओं का अंग बनाकर करता हैं इस प्रकार के अपराधी ईमानदारी के अतिरिक्त समाज के अन्य परम्परागत मूल्यों को स्वीकार करते हैं। गबन, कालाबाजारी,

झूठा विज्ञापन इस प्रकार के अपराधों के कुछ उदाहरण हैं।

4. **राजनीतिक अपराध** - यह अपराध व्यक्ति के द्वारा अपने राजनैतिक व आर्थिक हितों के लिए किया जाता है। देशद्रोह, जासूसी, शत्रु देश को स्वदेश के रहस्य देना, आदि इस प्रकार के अपराधों के कुछ उदाहरण हैं।

5. **सार्वजनिक व्यवस्था सम्बन्धी अपराध** - यह वह अपराध है जिसमें व्यक्ति समाज में व्यवहार संबंधी नियमों का उल्लंघन करता है। मदिरापान, आवारागर्दी, वेश्यावृत्ति, समलैंगिकता तथा यातायात के नियमों का उल्लंघन इसके कुछ उदाहरण हैं।

6. **परम्परागत अपराध** - यह वह अपराध है जिसमें एक व्यक्ति निजी सम्पत्ति की पवित्रता के मानदण्डों का उल्लंघन करता है। चोरी, लूटमार, डकैती, अपहरण के रूप में करते हैं, अर्थात यह अपराध उनकी आजीविका का प्रमुख साधन नहीं होते हैं। यह अपराधी उस-संस्कृति के प्रति अधिक प्रतिबद्ध होते हैं।

उपरोक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त अपराधों को निम्न श्रेणियों में भी बांटा जा सकता हैः श्वेतवसन (सफेदपोश) अपराध (उच्च स्थिति के लोगो द्वारा आर्थिक उद्देश्यों से किए गये अपराध), पेशेवर अपराध (पेशे के रूप में तथा आजीविका के मुख्य साधन के रूप में किए गये अपराध जिसके कारण अपराध जीवन का एक तरीका बन जाता है जो अपराधियों को अपराधी समूह में एक दर्जा दिलाता है) और संगठित अपराध (अपराधियों के समूह द्वारा पूर्व नियोजित तरीके से किया गया अपराध)।

4.2.4 हेज का वर्गीकरण

हेज के अनुसार अपराधों की तीन श्रेणियाँ हैं -

1. व्यक्ति के विरूद्ध अपराध
2. सम्पत्ति के विरूद्ध अपराध, एवं
3. व्यवस्था के विरूद्ध अपराध

आंग्ल विधि के अन्तर्गत अपराधों को पहले दो भागों में वर्गीकृत किया जाता था-

1. कॉमन लॉ के अपराध, एवं
2. सांविधिक विधि के अपराध ।

लेकिन कालान्तर में यह निम्नांकित तीन भागों में वर्गीकृत हो गया -

1. अभ्रिदोह

2. महापराध

3. उपापराध ।

भारतीय विधि में अपराधों का ऐसा कोई वर्गीकरण नहीं किया गया है। प्रक्रिया एवं प्रकृति के अनुसार हमारे यहाँ अपराधों का उल्लेख मोटे रूप में भी भारतीय दण्ड संहिता एवं दण्ड प्रक्रिया संहिता में कर दिया गया -

4.3 प्रक्रिया के अनुसार भारत में अपराधों का वर्गीकरण

प्रक्रिया के अनुसार अपराधों का वर्गीकरण निम्नानुसार किया जा सकता है।

1. असंज्ञेय अपराध ,
2. सम्मन मामलों से सम्बन्धित अपराध,
3. जमानतीय अपराध,
4. संज्ञेय अपराध,
5. वारण्ट मामलों से सम्बन्धित अपराध,
6. गैर जमानतीय अपराध।

4.4 प्रकृति के आधार पर भारत में अपराधों का वर्गीकरण

प्रकृति के अनुसार अपराधों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है -

1. राज्य के विरूद्ध अपराध
2. मानव शरीर के विरूद्ध अपराध,
3. सम्पत्ति के विरूद्ध अपराध।

4.4.1 राज्य के विरूद्ध अपराध

राज्य के विरूद्ध अपराधों में मुख्य हैं -

1. भारत सरकार के विरूद्ध युद्ध करना, युद्ध करने का प्रयास करना या उसके विरूद्ध षडयंत्र करना,
2. राष्ट्रपति या राज्यपाल को कोई कार्य करने के लिए बाध्य करना, उनकी शक्तियों में अवरोध पैदा करना,आदि,
3. राजद्रोह,

4. भारत सरकार के साथ शान्तिपूर्ण व्यवहार रखने वाली किसी शक्ति के विरूद्ध युद्ध करना या ऐसी शक्ति के क्षेत्राधिकार में लूटमार करना आदि,

5. किसी राजबन्दी को निकल भागने में जानबूझकर सहायता देना, उत्प्रेरित करना, बचाना या शरण देना।

4.4.2 मानव शरीर के विरूद्ध अपराध

मानव शरीर के विरूद्ध अपराधों में प्रमुख हैं -

1. आपराधिक मानव का वध एवं हत्या,

2. आत्महत्या का प्रयास,

3. ठगी,

4. उपहति,

5. सदोष अवरोध एवं सदोष परिरोध,

6. व्यपहरण एवं अपहरण,

7. आपराधिक बल प्रयोग एवं हमला,

8. बलात्कार एवं अप्राकृतिक अपराध,

9. जारता,

10. वेश्यावृत्ति,

11. दहेज- मृत्यु आदि।

दजेज -मृत्यु का अपराध कालान्तर में संशोधन कर धारा 304-ख द्वारा जोड़ा गया है। इसका मुख्य कारण दहेज-मृत्यु की बढ़ती हुई घटनायें रहा है।

दहेज-मृत्यु के अपराध के गठन के लिए मुख्यतया दो बातें आवश्यक हैं -

(क) दहेज की मांग, तथा

(ख) मृत्यु से ठीक पूर्व यातना दिया जाना।

4.4.3 सम्पत्ति के विरूद्ध अपराध

सम्पत्ति के विरूद्ध प्रमुख अपराध निम्नांकित हैं -

1. चोरी, अपकर्षण, लूट एवं डकैती,

2. आपराधिक दुर्विनियोग एवं आपराधिक न्यास-भंग,

3. छल

4. रिष्टि

5. आपराधिक अतिचार आदि।

छल के मामलों में आपराधिक आशय को साबित किया जाना आवश्यक है। आपराधिक आशय के बिना छल का अपराध गठित नहीं हो सकता।

बस में यात्रा कर रहे यात्री की अटैची को चुराना तथा उसका अभियुक्त के कब्जे में पाया जाना चोरी का अपराध है।

प्रक्रिया के आधार पर वर्गीकृत अपराधों का संक्षेप में अध्ययन करना भी यहाँ उचित प्रतीत होता है -

1. **संज्ञेय अपराध** - संज्ञेय अपराध से अभिप्राय ऐसे अपराध से है जिसमें पुलिस अधिकारी अभियुक्त को वारण्ट के बिना गिरफ्तार कर सकता है।

2. **असंज्ञेय अपराध** - असंज्ञेय अपराध से अभिप्राय ऐसे अपराध से है जिसमें पुलिस अधिकारी अभियुक्त को वारण्ट के बिना गिरफ्तार नहीं कर सकता है।

3. **जमानतीय अपराध -** जमानतीय अपराध साधारणतया सामान्य प्रकृति के अपराध होते हैं ऐसे अपराधों में अभियुक्त को जमानत पर छूटने का अधिकार होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जामनतीय अपराधों में "जमानत अभियुक्त का अधिकार होता है।"

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 2(क) में जमानतीय अपराध की परिभाषा दी गई है। इसके अनुसार जमानतीय अपराध से अभिप्राय ऐसे अपराध से है-

(क) जो प्रथम अनुसूची में जमानतीय अपराध के रूप मं दिखाया गया हो, या

(ख) जो तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा जमानतीय बनाया गया हो, और

(ग) जो अजमानतीय अपराध से भिन्न कोई अपराध हो।

4. **गैरजमानतीय अपराध** - दण्ड प्रक्रिया संहिता में अजमानतीय अपराध की परिभाषा नहीं दी गई है। अतः ऐसे अपराध जो जमानतीय न हों, अजामनतीय मान लिये जाते हैं। ऐसे अपराधों में "जमानत अभियुक्त का अधिकार नहीं होता है।" यह न्यायालय की विवेकाधीन शक्तियों पर निर्भर करता है । अजमानतीय अपराध साधारणतया गम्भीर एवं संगीन प्रकृति के अपराध होते हैं।

5. **सम्मन मामलों से सम्बन्धित अपराध** - सम्मन मामलों से सम्बन्धित अपराध से अभिप्राय ऐसे अपराध से है जिसमें अभियुक्त को दो वर्ष तक की अवधि का कारावास या जुर्माना या दोनों का दण्डादेश दिया जा सकता है।

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(ब) के अनुसार-"सम्मन मामले से अभिप्राय ऐसे मामले से है जो किसी ऐसे अपराध से सम्बन्धित होता है जो कि वारण्ट मामला नहीं है।"

6. **वारन्ट मामलों से सम्बन्धित अपराध** - वारन्ट मामलों से सम्बन्धित अपराध से अभिप्राय ऐसे अपराध से है जिसमें अभियुक्त को दो वर्ष तक की अवधि का कारावास या आजीवन कारावास या मृत्यु दण्ड दिया जा सकता है।

4.5 साइबर अपराध

21वीं सदी की दहलीज पर सूचना प्रौद्योगिकी की दस्तक एक विलक्षण संयोग है। इसे इन्टरनेट, कम्प्यूटर अथवा इलेक्ट्रानिक युग की संज्ञा भी दी जा सकती है। ज्यों ज्यों दैनिक जीवनचर्या में कम्प्यूटर, इन्टरनेट एवं इलेक्ट्रानिक संसाधनों का प्रयोग बढ़ा है, त्यों-त्यों इसके कुछ दुष्परिणाम भी सामने आने लगे हैं। इनसे एक नये अपराध की व्युत्पत्ति हुई है, जिसे साइबर अपराध कहा जाता है।

इन अपराधों से निपटने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 में आवश्यक प्रावधान किये गये हैं। अधिनियम में साइबर अपराधों की सुनवाई के लिए न्याय-निर्णयन अधिकारी एवं साइबर अपीलीय न्यायाधिकरण की व्यवस्था की गई है।

4.6 भारत में अपराध

भारत में भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत लगभग 194 संज्ञेय अपराध और स्थानीय विशेष कानून के अन्तर्गत लगभग 490 अपराध एक घन्टे में होते हैं। एक दिन में पुलिस 806 चोरियां, 262 दंगे, 380 लूटमारी और सेंधमारी के मामले और 3,700 अन्य अपराध पकड़ती है। अपराध का बढ़ता ग्राफ जनता को चौकाने वाला हो सकता है, लेकिन हमारी पुलिस और हमारे राजनीति कानून और व्यवस्था की गिरती हुई स्थिति से बेखबर बने रहे रहते हैं। गैर शासकीय राजनीतिक दल इन आंकड़ों से केवल एक प्रकार से चिन्तित रहते है। वे शासक दल की नीतियों की आलोचना करने में इनका प्रयोग करते हैं ताकि उसकी बदनामी की जा सके और सत्ता से बाहर कर के नये प्रबुद्ध शासक दल को स्थान मिल सकें।

सरकारी आंकड़ों की सीमाओं के रहते भारतीय समाज में अपराधों के विषय में महत्वपूर्ण आंकड़ों को जमा करना बुद्धिमानी न होगी। यह विचारणीय है कि पर्याप्त और

ठोस विधियों के होते हुए अनेक तथ्य अत्यधिक बदल जायेंगें। फिर भी हमारे देश में अपराध के विषय में निम्नलिखित वर्णन महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है -

1. भारत में प्रतिवर्ष होने वाले कुल अपराधों में लगभग 16.95 लाख भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत संज्ञेय (Cognizable)अपराध आते हैं (चोरी, सेंधमारी, लूटमारी, डकैती, हत्या, दंगे, अपहरण, ठगी, विश्वासघात सहित) और लगभग 39 लाख अपराध स्थानीय व विशेष कानूनों के अन्तर्गत आते हैं। (दहेज निरोधी अधिनियम, मद्य निषेध अधिनियम, आबकारी अधिनियम, शस्त्र अधिनियम, रेलवे अधिनियम, विस्फोटक पदार्थ अधिनियम) । इस प्रकार हमारे देश में अपराध की दर बहुत ऊँची नहीं है। जबकि 1993 में भारत में अपराध दर एक लाख की जनसंख्या पर 614.79 था, कनाडा में 10.954 ब्रिटेन में 10.403 जापान में 1509 और चीन में 124 था।

2. पुलिस द्वारा जाँच पड़ताल के किये गये प्रतिवर्ष अपराध के लगभग 68 लाख मामलों में से लगभग 30 प्रतिशत भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत आते हैं और लगभग 70 प्रतिशत अपराध स्थानीय और विशेष कानूनों के अन्तर्गत आते हैं।

3. भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत अपराधों की प्रवृत्ति दर्शाती है कि कुल अपराधों 16.9 लाख में से 14.5 लाख हिंसात्मक अपराध है - हत्या, बलात्कार, दंगे, अपहरण आदि) 24.2 प्रतिशत सम्बन्धी अपराध है (चोरी, सेंधमारी), 2.9 प्रतिशत श्वेतवसन अपराध है (ठगी, विश्वासघात) और 58.4 प्रतिशत अन्य (अ-वर्गीकृत) अपराध है।

4. भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत आने वाले कुल अपराधों में से लगभग एक चौथाई (26.0 प्रतिशत) आर्थिक (सम्पत्ति) अपराध चोरी(17.35 प्रतिशत), सेंधमारी (6.87 प्रतिशत), लूटमार (1.32 प्रतिशत), डकैती (0.49 प्रतिशत) से संबंधित हैं। (Ibid : 9) सम्पत्ति अपराधों की संख्या व्यक्ति के विरूद्ध किए गये अपराधों की संख्या से कहीं अधिक है। अमरीका के विषय में भी ऐसे ही तथ्य सत्य हैं जहां तीन चौथाई (77.9 प्रतिशत) अपराध सम्पत्ति सम्बन्धी हैं और लगभग एक चौथाई (23.0 प्रतिशत) व्यक्ति के विरूद्ध है।

5. स्थानीय और विशेष कानूनों के अन्तर्गत पकड़े गए व्यक्तियों की कुल संख्या में से लगभग एक चौथाई (23.1 प्रतिशत) पांच अधिनियमों के अन्तर्गत पकड़े जाते हैं : मद्य निषेध अधिनियम (Prohibition Act)15 प्रतिशत, जुआ अधिनियम (Gambling Act) 3.2 प्रतिशत आबकारी अधिनियम 2.7 प्रतिशत, भारतीय रेल अधिनियम, 0.7 प्रतिशत, और शस्त्र अधिनियम 1.5 प्रतिशत शेष तीन चौथाई (76.9 प्रतिशत) अनैतिक अधिनियम, नशीले पदार्थ अधिनियम,

विस्फोटक सामग्री अधिनियम, दहेज विरोधी अधिनियम, आवश्यक वस्तु अधिनियम, टाडा और इसी प्रकार के अन्य अधिनियम के अन्तर्गत पकड़े जाते हैं।

6. भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत सभी अपराधों में से लगभग आधे (4.9 प्रतिशत) अपराध पांच प्रान्तों उत्तर प्रदेश (10.5 प्रतिशत), महाराष्ट्र (11.5 प्रतिशत), मध्य प्रदेश (11.6 प्रतिशत), बिहार (6.8 प्रतिशत) और राजस्थान (8.7 प्रतिशत) में होते हैं। लगभग एक चौथाई (25.9 प्रतिशत), अपराध चार दक्षिणी प्रान्तों - तमिलनाडु (7.5 प्रतिशत), कर्नाटक (7.1 प्रतिशत), आन्ध्र प्रदेश (6.2 प्रतिशत) और केरल (5.1 प्रतिशत) में होते हैं।

7. भारतीय दण्ड संहिता संबंधी प्रतिवर्ष 17 लाख अपराधों के लिए लगभग 25.9 लाख लोग पकड़े जाते हैं। अर्थात प्रत्येक 10 अपराधों के लिए लगभग 15 प्रतिशत व्यक्ति पकड़े जाते हैं। दूसरी ओर स्थानीय और विशेष कानूनों के अन्तर्गत 9 अपराधों के लिए 10 व्यक्ति पकड़े जाते हैं।

8. भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत लगभग 80 प्रतिशत व्यक्ति ऐसे अपराध करते हैं जिसके लियेवे 6 माह से कम कारावास दण्ड प्राप्त करते हैं, अर्थात उनके अपराध साधारण श्रेणी के होते हैं।

9. महिलाओं की अपेक्षा पुरूषों की अपराध दर कहीं अधिक है। प्रत्येक 100 अपराधियों में से 94 पुरूष और 6 महिलाएँ होती हैं।

10. शहरी अपराधियों का प्रतिशत ग्रामीण अपराधियों के प्रतिशत की तुलना में काफी कम होता है। 1995 में सम्पूर्ण नगरीय जनसंख्या में से 35.06 प्रतिशत (अथवा 825.5 लाख) 23 महानगरों (10 लाख से अधिक जनसंख्या) में रह रहे थे। 1995 में पूरे देश में किये गये 16.95 लाख अपराधों में से 1.5 प्रतिशत (अथवा 2.5 लाख) अपराध इन महानगरों में हुए थे।

11. अपराध की दर सबसे अधिक दरिद्र वर्ग (500/- रू. की मासिक आय तक), निम्न वर्ग (500 रू. से 100 रू. तक) और निम्न मध्यम वर्ग (100 रू. से 2000 रू. तक) में होती है।

12. 18-30 वर्ष आयु समूह में अपराध दर सर्वाधिक होती है (44.9 प्रतिशत) 16 वर्ष से कम आयु समूह में 0.24 प्रतिशत, 16-18 वर्ष आयु समूह में 1.0 प्रतिशत, 30 से 50 वर्ष आयु समूह में 42.4 प्रतिशत, और 50 से ऊपर आयु समूह में 11.4 प्रतिशत है।

13. भारतीय अपराध परिदृश्य की एक विशेषता यह है कि संगठित अपराधों की संख्या में वृद्धि हो रही है तथा विशाल पैमाने पर संगठित अपराधों का उदय हो रहा है। इसके अन्तर्गत गैर कानूनी सेवाओं और वस्तुओं का वितरण और नियंत्रण बड़े व्यवस्थित ढंग से संगठित किया जा रहा है - नशीले पदार्थ, वेश्यावृत्ति के लिए लड़कियां (भारत से अरब देशों में), सोने की तस्करी, आदि। इसके साथ ही विविध वैधानिक कार्यों, जैसे कोयले की खानों, उद्योगों में मजदूर संघों आदि को नियंत्रित करने के लिए माफिया समूहों के संगठित प्रयत्न भी पाये जाते हैं। यद्यपि संगठित अपराधों के अन्तर्गत आने वाले प्रमुख अपराधों की कुल संख्या सम्भवतः कम है। फिर भी नगरों में इसका मूल्य और प्रतिमान महत्वपूर्ण तथ्य प्रदान करता है।

इन तथ्यों एवं विशेषताओं को प्रस्तुत करने का उद्देश्य है सामाजिक प्रतिमानों के अनुरूप उद्देश्यों का हवास और सामाजिक सम्बन्धों एवं सामाजिक सम्बन्धों एवं सामाजिक बन्धों के बिखराव को उजागर करना। हमारे समाज के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में असन्तोष बढ़ रहा है। युवकों, किसानों, औद्योगिक श्रमिकों, छात्रों, सरकारी कर्मचारियों और अल्पसंख्यकों में असन्तोष व्याप्त है। सामाजिक असन्तोष कुण्ठा को बढ़ाता है जो कि वैधानिक और सामाजिक प्रतिमानों का उल्लंघन को प्रोत्साहित करते हैं। यह कहना गलत न होगा कि हमारे समाज में मौजूद संगठन और संरचनाएँ तथा उप-व्यवस्थाएं अपराधों की वृद्धि के लिए उत्तरदायी ।

4.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में अपराध के विभिन्न कारणों का वर्णन किया गया है। शारीरिक कारणों में आयु, लिंग, शरीर रचना तथा मानसिक दशा आदि अपराध के लिए उत्तरदायी होते हैं। साथ ही पारिवारिक कारण, सामाजिक कारण आर्थिक एवं राजनैतिक कारक भी अपराध के लिए उत्तरदायी हैं। अन्य कारणों में भौगोलिक कारण, सहशिक्षा, दूरदर्शन आदि को अपराध के उत्तरदायी बताया गया है। साइबर अपराध के साथ ही भारत में अपराध की प्रकृति एवं विशेषताओं पर गहन चर्चा तथा भारत में अपराधों का तथ्यात्मक वर्णन भी किया गया है।

4.8 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न - 1

(1) मानव शरीर के विरूद्ध दो अपराध क्या है?

(2) बोंगर ने अपराध को कितनी श्रेणियों में बाँटा है?

(3) उच्च वर्ग का पेशे के आधार पर किया गया अपराध कौन सा अपराध कहलाता है?

बोध प्रश्न - 2

(1) अपराध में दूरदर्शन, चलचित्र की क्या भूमिका है?

(2) प्रक्रिया के अनुसार अपराधों का वर्णन कीजिए।

(3) मानव शरीर के विरूद्ध क्या-क्या अपराध में शामिल किया जाता है?

(4) साइबर अपराध क्या है?

बोध प्रश्न - 3

(1) प्रकृतिक के आधार पर अपराधों का वर्णन कीजिए।

(2) अपराध के विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण कीजिए।

(3) साइबर अपराध से आप क्या समझते हैं? भारत में साइबर अपराध का वर्णन कीजिए।

4.9 बोध प्रश्न के उत्तर

(1) हत्या, वेश्यावृत्ति।

(2) 4

(3) श्वेतवसन अपराध ।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

खण्ड

2

अपराध शास्त्र : सम्प्रदाय एवं सिद्धान्त

इकाई - 1 5
अपराध की शास्त्रीय एवं नव शास्त्रीय विचारधारा

इकाई - 2 18
अपराध की वैज्ञानिक विचारधारा

इकाई - 3 32
अपराध के जैविकीय एवं भौगोलिक एवं मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

इकाई - 4 65
अपराध के आर्थिक सिद्धान्त

इकाई - 5 87
अपराध का समाजशास्त्रीय तथा सांस्कृतिक सिद्धान्त

परामर्श-समिति

: कुलपति - प्रो० ए० के० बख्शी
: निदेशक - डॉ० एम०एन०सिंह
: कुलसचिव - डॉ० ए०के० सिंह

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

1. डॉ० एम० एन० सिंह	निदेशक सामाजिक विज्ञान विद्याशाखा, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विशवविद्यालय, फाफामऊ, इलाहाबाद
2. डा० इति तिवारी -	एसोसिऐट प्रोफेसर, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विशवविद्यालय, फाफामऊ, इलाहाबाद
3. श्री रमेश चन्द्र यादव	(परामर्शदाता) समाजशास्त्र, उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विशवविद्यालय, फाफामऊ, इलाहाबाद

लेखक

डॉ० मणीन्द्र कुमार तिवारी	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, डी०ए०वी०कालेज, कानपुर
डा० इति तिवारी	एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, उ०प्र०रा०टण्डन मुक्त विशवविद्यालय, फाफामऊ, इलाहाबाद
श्री रमेश चन्द्र यादव	शैक्षणिक परामर्शदाता -समाजशास्त्र उ०प्र०रा०टण्डन मुक्त विशवविद्यालय, फाफामऊ, इलाहाबाद

सम्पादक

प्रो० जयकान्त तिवारी	अध्यक्ष,समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

परिमापक

प्रो० आभा अवस्थी	अवकाश प्राप्त प्रो० लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
प्रो० जयकान्त तिवारी	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

अनुवाद की स्थिति में

मूल लेखक	**अनुवादक**
मूल सम्पादक	**भाषा सम्पादक**
मूल परिमापक	**परिमापक**

सहयोगी टीम

प्रूफ रीडर

प्रभारी पाठ्य सामग्री लेखन	डॉ० हरीशचन्द्र जायसवाल

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं उपलब्ध कराई गई हैं। वि.वि. इस सामग्री के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खण्ड-2 : अपराधशास्त्र : सम्प्रदाय एवं सिद्धान्त

इस पाठ्यक्रम में हमने अपराधशास्त्र : सम्प्रदाय एवं सिद्धान्त पर विचार किया गया है। इस खण्ड के अन्तर्गत इकाई 1 से लेकर इकाई 5 तक में अपराधशास्त्र : सम्प्रदाय एवं सिद्धान्त का वर्णन किया गया है।

इकाई 1 के अन्तर्गत अपराध की शास्त्रीय एवं नवशास्त्रीय विचारधारा, शास्त्रीय विचारधारा आदि का विस्तृत उल्लेख किया गया है। प्रत्येक विचारधारा अपराध एवं अपराधिक आचरण के कारणों को विवेचना अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार करती है।

इकाई 2 और 3 में अपराध की वैज्ञानिक विचारधारा एवं अपराध के जैवकीय, भौगोलिक एवं मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का विस्तारपूर्वक व्याख्या की गई है। वैज्ञानिक विचारधारा की विवेचना एवं शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक विचारधारा की तुलना, वर्तमान चिंतन का वर्णन किया गया है। अपराध के जैविकीय सिद्धान्त, भौगोलिक एवं मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त की व्याख्या की गई है।

इकाई 4 एवं 5 में अपराध के आर्थिक सिद्धान्त और अपराध का समाजशास्त्रीय तथा सांस्कृतिक सिद्धान्त पर विचार किया गया है। अपराध तथा आर्थिक स्थिति के संदर्भ में अरस्तु तथा प्लेटो के विचार, अपराध की मार्क्सवादी विचारधारा, बोंगर का अपराध का आर्थिक सिद्धान्त, अपराध तथा आर्थिक स्थिति के संदर्भ में न्यायिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया गया है। इकाई 5 के अन्तर्गत अपराध की व्याख्या का सामाजिक संरचना का सिद्धान्त : दुर्खीम एवं मर्टन, सदरलैण्ड का विभेदक सहचर्य का सिद्धान्त, अपराध का सांस्कृतिक सिद्धान्त, अपराधी उपसांस्कृतिक का सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या की गई है।

इकाई - 1 : अपराध की शास्त्रीय एवं नव-शास्त्रीय विचारधारा

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 पूर्व-शास्त्रीय विचारधारा

1.3 शास्त्रीय विचारधारा

1.4 नव-शास्त्रीय विचारधारा

1.5 प्रश्न

1.6 सन्दर्भ ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त

- अपराध के शुरूआती सिद्धान्तों से आपका परिचय हो जायेगा।
- अपराध की पूर्व शास्त्रीय, शास्त्रीय तथा नव-शास्त्रीय विचारधारा से आप परिचित होगें।

1.1 प्रस्तावना

अपराध तथा आपराधिकता के बारे में विभिन्न विचारधाराओं से आशय ऐसे एकमत विचारकों के समूह से है जो अपराध के कारणों, उनके विश्लेषण तथा निवारण के विषय में समान विचार रखते हैं। प्रत्येक विचारधारा अपराध एवं आपराधिक आचरण के कारणों की विवेचना अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार करती है। अपराधशास्त्र के उद्‌भव तथा विकास के क्रमबद्ध अध्ययन द्वारा अपराध और अपराधी के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में वांछित जानकारी मिलती है और यही अपराधशास्त्र की विभिन्न विचारधाराओं की उपादेयता है। अपराधशास्त्र की विभिन्न विचारधाराओं का विस्तृत वर्णन निम्नानुसार है–सबसे पहले हम पूर्व शास्त्रीय विचारधारा की चर्चा करेंगे।

1.2 पूर्व शास्त्रीय विचारधारा (Pre-classical School)

अपराधशास्त्र का प्रारम्भ क्लासिकल विचारधारा के प्रादुर्भाव से माना जाता है जिसके प्रणेता बकारिया थे। परन्तु क्लासिकल विचारधारा के सिद्धान्तों को भलीभाँति समझने के लिए इसके पूर्ववर्ती स्थिति पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। मध्य यूरोप में सत्रहवीं तथा अठारहवीं सदी का कालखंड थॉमस एक्विनास (St. Thomas Acquinas) जैसे दार्शनिकों द्वारा प्रसारित अध्यात्मवादी चिन्तन का युग था। इस युग की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि राज्य के कार्यों में धर्म का प्रभुत्व था। इसी समय हॉब्स (Hobbes) तथा लॉक (Locke) जैसे राजनीतिक विचारक इस बात पर जोर दे रहे थे कि समाज का उद्भव सामाजिक संविदा (Social contract) पर आधारित है। शासक की दैवी शक्ति को सर्वोपरि माना जाता था। मानव के विषय में सामान्य धारण यह थी कि वह स्वभावतः सरल है तथा उसके सभी कृत्य किसी अज्ञात दैवी शक्ति (Super power) द्वारा नियन्त्रित होते हैं। अपराधी के विषय में यह मान्यता थी कि वह किसी अज्ञात वाह्य शक्ति या पैशाचिक शक्ति (evil spirit) के प्रभाव में आने के कारण ही अपराध कर बैठता है अतः व्यक्ति अपनी स्वेच्छा से अपराध नहीं करता बल्कि किसी बाहरी पैशाचिक शक्ति के प्रभाव के कारण ऐसा करता है। तथापि ये सभी धारणाएँ अज्ञान और अन्धविश्वास पर आधारित थीं तथा अपराध के वास्तविक कारणों के बारे में जानकारी प्राप्त करने का कोई प्रयास नहीं किया गया था। इस प्रकार पैशाचिक वाह्य शक्ति को आपराधिकता का कारण निरूपित करने वाली प्री-क्लासिकल विचारधारा ने लोगों को इतना अधिक प्रभावित किया कि वे इस वाह्य शक्ति को ही सर्वशक्तिमान (Omnipotent) समझने लगे तथा अपराधी को इस शक्ति के प्रभाव से मुक्त करने के लिए उपाय के रूप में बलिदान अग्नि परीक्षा (ordeals), तंत्र-मंत्र जैसे कर्मकांड आदि का सहारा लेने लगे। स्पष्ट है कि उस समय अपराधी के दण्डित किये जाने के कोई निश्चित मापदण्ड नहीं थे क्योंकि यह माना जाता था कि ईश्वरीय प्रकोप ही उसे दण्ड दिला रही है अतः इसमें मनुष्य को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं था। फलतः दण्ड मनमाने, कठोर तथा तर्क-रहित हुआ करते थे। उस समय में धर्म की प्रधानता के कारण अपराध और पापकर्म में कोई भेद नहीं माना जाता था। हॉब्स ने शासक के दांडिक अधिकारों का समर्थन करते हुए यह विचार व्यक्त किया कि दण्ड के भय से ही लोग पापकर्म (अपराधों) से दूर रहते हैं। सारांश यह कि प्री-क्लासिकल विचारधारा के अन्तर्गत आपराधिक विधि का उद्भव अपने प्रारम्भिक चरण में था तथा इसके विषय में युक्तियुक्त सिद्धान्त अभी प्रतिपादित नहीं हुए थे। कालान्तर में मार्टिन लूथर, जीन बॉडिन तथा मैकियावेली (Machiavelli) जैसे विचारकों ने अपने राजनीतिक चिन्तन द्वारा अपराधशास्त्र की क्लासिकल विचारधारा की आधारशिला रखी जिसने कालान्तर में

1.3 शास्त्रीय विचारधारा (Classical School)

अठारहवीं सदी के मध्य में Viliyam Blackston, Jarmi Bentham, Semuial Romile, Robert Peel, Feurbach (Feurbach-1775-1833, आदि विधि सुधारकों ने अपराधशास्त्र की क्लासिकल विचारधारा का सूत्रपात किया। परन्तु जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, इसके मुख्य प्रणेता सिसेर बेकारिया ही थे जिन्होंने अपराधशास्त्र सम्बन्धी प्राकृतिवादी सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

अपराधों सम्बन्धी पैशाचिक 'सार्वभौमिकता' (omnipotence of evil spirit) की धारणा का खण्डन करते हुए बकारिया ने कहा कि आपराधिकता का मूल कारण मनुष्य की स्वयं की इच्छा ही है। डोनाल्ड टेफ्ट ने बकारिया के आपराधिकता सम्बन्धी स्वतंत्र इच्छा सिद्धान्त (free will theory) की व्याख्या करते हुए कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति की सुख और दुःख की कल्पना अलग-अलग होती है तथा मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह सुखों का अधिकाधिक उपभोग करना चाहता है और दुःख को टालना चाहता है। सुख की प्राप्ति की चाह में ही वह यदाकदा अपराध कर बैठता है। इस प्रकार बकारिया द्वारा प्रतिपादित अपराधों सम्बन्धी स्वतंत्र इच्छा का सिद्धान्त मूलतः बेन्थम के उपयोगितावाद पर आधारित था जिसमें सुख की चाह तथा दुःख की अनिच्छा पर बल दिया गया था। मानव-इच्छा को आपराधिकता का मूल कारण निरूपित करते हुए बकारिया ने क्लासिकल विचारधारा का सूत्रपात किया जिसके मुख्य सिद्धान्त इस प्रकार हैं–

1. राज्य के कठिन निर्बन्धनों से छुटकारा पाने में व्यक्ति की तर्कबुद्धि का सक्रिय योगदान रहा है।

2. व्यक्ति की आपराधिकता के निर्धारण के लिए उसके आपराधिक कृत्य को न कि उसके आशय को महत्व दिया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में अपराधशास्त्रियों का केन्द्र बिन्दु अपराधी का कृत्य होना चाहिए न कि उस कृत्य को करने के पीछे उसका आशय। इसके अतिरिक्त उस समय अपराध के अन्य कारणों के विषय में सोचने का प्रश्न ही नहीं उठता था।

3. अपराधी के मन में दुःख, अपमान या लांछन का भय उसे अपराध करने से रोकने में सहायक होता है। ऐसे व्यक्तियों को मेन्डेल्सन ने पीड़ित अवक्षेपन (Victim Precipitation) की संज्ञा दी है।

4. क्लासिकल विचारधारा के समर्थकों ने अपराधी को दंडित किये जाने के बजाय अपराधों की रोकथाम पर अधिक महत्व दिया। इसीलिए उन्होंने विभिन्न यूरोपीय

देशों के लिए अपनी-अपनी दण्ड संहिता की आवश्यकता प्रतिपादित की ताकि सभी जगह एक सुव्यवस्थित आपराधिक न्याय पद्धति लागू की जा सके। इसके परिणामस्वरूप आगे चलकर सन् 1971 में फ्रांस की दण्ड संहिता तैयार की गई तथा जर्मनी और इटली ने भी अपनी दण्ड संहिता को लागू किया।

5. मानव स्वभाव से ही स्वार्थ परायण होने के कारण उस पर किसी अन्य वाह्य संस्था का नियंत्रण होना अत्यन्त आवश्यक है। यही कारण है कि इस विचारधारा के समर्थकों ने अपराधियों को दण्डित करने के राज्य के अधिकार को जनहित में उचित माना। उन्होंने यह सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया कि दण्ड की मात्रा, अपराध की गंभीरता और स्वरूप के अनुसार निर्धारित की जानी चाहिए। अपराधों की गंभीरता की दृष्टि से बकारिया ने अपराधों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया–

   (क) राज्य के विरुद्ध अपराध, जैसे राजद्रोह, देशद्रोह, सैन्य विद्रोह आदि।

   (ख) शारीरिक सुरक्षा या सम्पत्ति की सुरक्षा के विरूद्ध अपराध जैसे हमला, चोट, चोरी, डकैती, अपहरण, बलात्कार, रिष्टि आदि।

   (ग) सामाजिक शान्ति भंग करने सम्बन्धी अपराध जैसे-दंगा, बलवा, मारपीट, अफावाहें फैलाना आदि।

6. क्लासिकल विचारधारा के प्रवर्तकों का मानना था कि आपराधिक विधि का प्राथमिक आधार दण्ड का भय है। इसीलिए वे न्याय-निर्णय में दण्डाधिकारी को न्यायिक विवेक (Judicial discretion) दिये जाने के पक्षधर नहीं थे। उनके विचार से दण्ड निर्धारित करते समय न्यायाधीशों को दण्ड विधि की सीमाओं में रहना चाहिए तथा उससे हटकर दण्ड नहीं देना चाहिए। उनके अनुसार यातनात्मक दण्ड भी भर्त्सना किये जाने योग्य था।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि क्लासिकल विचारधारा के अपराधशास्त्रियों ने सर्वप्रथम आपराधिक न्याय-प्रशासन के लिए कुछ आदर्शात्मक सिद्धान्त सुझाए। निश्चित ही यह अपराधशास्त्र के क्रमबद्ध तथा तर्कसंगत अध्ययन का सराहनीय प्रयास था जिसने आगे चलकर इसे वैज्ञानिक आधार प्रदान किया और एक स्वतंत्र ज्ञान की शाखा के रूप में विकसित किया। तथापि इस दिशा में यह प्रथम प्रयास होने के कारण इसमें कुछ कमियाँ रह जाना स्वाभाविक ही था। क्लासिकल शाखा का सबसे गंभीर दोष यह था कि इसमें अपराधी की स्वतंत्र इच्छा और उसके अपराध कृत्य को अनावश्यक महत्व दिया गया था तथा उसकी मानसिक स्थिति पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था। इस विचारधारा का दूसरा प्रमुख दोष यह था कि इसके समर्थकों ने दण्ड की दृष्टि से प्रथमतः अपराध करने वाले व्यक्ति तथा घोर-अपराधियों में कोई विभेद नहीं किया था

MASY 09 6A

तथा समान अपराध करने वाले सभी अपराधियों को समान दण्ड दिये जाने का समर्थन किया। वस्तुतः यह उनकी महान भूल थी क्योंकि दण्ड निर्धारित करते समय अपराधी की मानसिक स्थिति तथा उसकी वैयक्तिक परिस्थितियों पर ध्यान दिया जाना अत्यन्त आवश्यक है। इन दोषों के होते हुए भी क्लासिकल विचारधारा का सबसे बड़ा योगदान यह रहा कि उसने एक ऐसी सरल और सुगम आपराधिक नीति की आवश्यकता प्रतिपादित की जिसका क्रियान्वयन निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर किया जा सके और मनमाने दण्ड निर्धारण पर रोक लगाई जा सके। इसके समर्थकों ने धार्मिक मान्यताओं पर आधारित अपराध और आपराधिकता सम्बन्धी धारणाओं को निराधार साबित करते हुए अपराधी के व्यक्तिव को महत्व दिये जाने पर बल दिया।

शास्त्रीय सम्प्रदाय के प्रमुख सिद्धान्तकार सीजर बैकेरिया (1735-1795) तथा जेरेमी बेन्थम (1748-1832) महोदय हैं। बैकेरिया इटली देश के रहने वाले थे जबकि बेन्थम इंग्लैण्ड देश के। बैकेरिया ने इस सिद्धान्त का प्रयोग सन् 1764 ई. में दण्डशास्त्र के क्षेत्र में किया। उनका उद्देश्य दण्ड को कम से कम स्वेच्छाचारी तथा कठोर बनाना था। उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया कि वे सभी व्यक्ति जो किसी विशिष्ट कानून का उल्लंघन करते हैं, उन्हें उनकी आयु, समझदारी, सम्पत्ति, सामाजिक स्थिति अथवा परिस्थिति को ध्यान में न रखते हुए बिना कोई भेदभाव किये हुए एक समान दण्ड देना चाहिए। उनके विचार का आधार यह था कि व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा तभी की जा सकती है जबकि समस्त व्यक्तियों के साथ एक समान बर्ताव किया जाये तथा दण्ड की मात्रा को इस प्रकार से निर्धारित किया जाना चाहिए कि अवैध कार्य के करने से प्राप्त सुख-दुःख के साथ सामंजस्य स्थापित हो सके। उनकी मान्यता थी कि दण्ड इतना कठोर होना चाहिए जिससे कि दण्ड से प्राप्त दुःख उस अवैधानिक व्यवहार से प्राप्त सुख से अधिक हो सके। परन्तु शीघ्र ही दण्ड की इस चरम समानता के विचार में उन्होंने दो परिवर्तन किए–

(क) बच्चों तथा मानसिक रोगियों को इस आधार पर दण्ड नहीं देना चाहिए, क्योंकि वे बुद्धिमत्तापूर्वक सुख-दुःख की गणना करने में अयोग्य होते हैं तथा

(ख) दण्ड के पूर्ण स्वामित्व की प्रकृति को सीमित किया जाना चाहिए ताकि एक सीमा तक की न्यायिक विवेक की सम्भावना बनी रहे।

इन परिवर्तनों के साथ शास्त्रीय सिद्धान्त अपराधी कानून के निकाय का मेरूदण्ड बन गया तथा वर्तमान समय तक सामान्य चिन्तन तथा न्यायिक निर्णयों में दृढ़ रूप से विद्यमान है।

बैकेरिया के दण्ड का उद्देश्य अपराधी को कष्ट पहुँचाना न होकर उसे समाज को और हानि पहुँचाने से रोकना तथा सम्भाव्य अपराधियों को कानून उल्लंघन करने से रोकना है। अतः उनका विचार था कि दण्ड खुले रूप से, शीघ्रता से अपराध के अनुपात

में तथा पूर्व निश्चित आधार पर देना चाहिए। कानून निर्माण का आधार केवल विधान-मण्डल को है न कि न्यायाधीश को। न्यायाधीश केवल कानून की व्यवस्था करता है तथा टिप्पणी द्वारा स्पष्ट रूप से अर्थ निरूपण करता है। दण्ड देने का अधिकार भी इसी प्रकार केवल राज्य को है जो अपराधी को यंत्रणा दिये बिना अपराध के अनुपात में दण्ड देगा।

वस्तुत बैकेरिया के अपराध एवं दण्ड सम्बन्धी विचारों के मूलतत्व निम्नलिखित हैं–

1. बैकेरिया ने प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता हेतु राज्य के अस्तित्व को आवश्यक रूप से स्वीकार किया है तथा जनहित विरोधी कार्यों के लिए राज्य को दण्ड देने के अधिकार के विचार को भी अंगीकार किया है।
2. दण्ड देने के लिए वे न्यायाधीश की सत्ता को सर्वोपरि नहीं मानते अपितु संसद द्वारा बनाये गये विधानों के आधार पर अपराधियों को दण्डित करने की बात करते हैं।
3. न्यायाधीश का कार्य केवल इस तथ्य को स्थापित करना है कि व्यक्ति अपराधी है अथवा नहीं? दण्ड केवल विधानों के अधीनस्थ होता है। अन्य शब्दों में, न्यायाधीशों को दण्ड संहिता की विवेचना का अधिकार नहीं है।
4. दण्ड देने का अधिकार केवल राज्य को ही है।
5. अपराध तथा दण्ड के संदर्भ में एक मानक का प्रयोग आवश्यक है। अपराध एवं दण्ड के बीच तार्किक संगतता का होना भी वांछनीय है।
6. पीड़ा व आनन्द मानव अभिप्रेरणा के दो मूल आधार हैं।
7. किसी कार्य में अन्तर्निहित उद्देश्य ही अपराध द्वारा की गई हानि व क्षति का प्रत्यक्ष माप है।
8. आपराधिक विधानों की मूल भावना सकारात्मक स्वीकृतियों पर आधारित होना चाहिए। अन्य शब्दों में दण्ड देने की अपेक्षा अपराधों को नियंत्रित करना अधिक महत्वपूर्ण है।

बैकेरिया के उपर्युक्त आठ सूत्रों के आधार पर सन् 1791 में फ्रांसीसी दण्ड संहिता की रचना हुई।

यद्यपि बैकेरिया की भाँति बेन्थम ने भी सुखवादी मनोविज्ञान को आचार एवं विधि-निर्माण का प्रमुख आधार माना तथापि बैकेरिया की तुलना में उन्होंने कानूनी सुधार के स्थान पर अपराधी व्यवहार के नियंत्रण में अधिक रुचि ली। यही कारण है कि उन्हें

MASY 09 68

उपयोगितावादी सुखवादी चिंतक माना गया है। उन्होंने अपराधी व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए उपयोगिता के सिद्धान्त तथा सुखवादी गणना-विधि का सुझाव दिया जिसका मुख्य लक्षण यह था कि कानून को उतना ही कठोर दण्ड निर्धारित करना चाहिए जितना वह व्यक्ति को अपनी आपराधिक क्रिया से प्राप्त सुख से दूर रख सके। इससे अधिक कठोर दण्ड देना अनावश्यक रूप से पाशविक या क्रूर व अन्यायपूर्ण है।

बैकेरिया एवं बेन्थम के प्रयोगों के बाद भी न्यायिक प्रक्रिया बहुत अधिक सार्थक एवं व्यावहारिक सिद्ध नहीं हुई, क्योंकि शास्त्रीय सिद्धान्त में अपराध के अनुरूप दण्ड देने पर विशेष बल था। अन्य शब्दों में, जैसे को तैसा (tit for tat) शास्त्रीय न्यायिक विवेचना का मूल आधार था। इसमें अपराधिक कृत्य किन विशेष परिस्थितियों में किया गया है, इस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। परिणामतः 1791 की फ्रांसीसी दण्ड संहिता के व्यावहारिक उपयोग में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई। अतः नवीन परिमार्जनों पर विचार किया जाने लगा। संक्षेप में 1791 के संहिता के सन्दर्भ में कुछ व्यावहारिक प्रश्न इस प्रकार के थेः

1. वैयक्तिक भेदों तथा परिस्थिति की विशिष्टता की अवहेलना।
2. प्रथम व बार-बार अपराध करने वालों में विभेद न करना।
3. मूर्ख, मानसिक रूप से विक्षिप्त तथा अल्पायु लोगों के लिए समान मानदण्ड।

किसी भी समाज में असहाय, अपंग तथा अल्पायु लोगों को व्यावसायिक अपराधियों की भाँति न्याय की तुला पर तौलना सम्भवतः संगत स्वीकार नहीं किया जायेगा। परिणामतः 1791 की संहिता सन् 1810 में सुधार के प्रयास किये गये और एक नवीन फ्रांसीसी दण्ड संहिता सन् 1819 में निर्मित हुई जिसमें न्यायाधीश को अपराध की परिस्थितियों, अपराध की दशा इत्यादि पर विचार करने की छूट दी गयी, लेकिन फिर भी आपराधिक उद्देश्य का प्रश्न अछूता ही रहा।

समीक्षा

आधुनिक अपराधशास्त्रियों ने आपराधिक कारणत्व के इस सिद्धान्त की व्याख्या को मात्र एक कारक पक्षीय मानकर अस्वीकार कर दिया है। इस सिद्धान्त की पृष्ठभूमि में अन्तर्निहित सुखवादी मनोविज्ञान के प्रति अब सामान्यतः प्रश्न-चिह्न लग गया है। आधुनिक अपराधशास्त्रियों का मत है कि आपराधिक व्यवहार की व्याख्या केवल सुखवादी मनोविज्ञान के आधार पर नहीं की जा सकती है, क्योंकि सुखवादी मनोविज्ञान का सैद्धान्तिक पक्ष अत्यन्त व्यक्तिपरक, बुद्धिवादी तथा ऐच्छिक है।

सुखवादी चिन्तकों के अनुसार व्यक्ति का व्यवहार सुख-दुख की भावनाओं पर निर्भर है। व्यक्ति सुखदायी कार्यों को तो सम्पादित करता है जबकि दुखदायी कार्यों से

बचता है। परन्तु व्यक्ति सदैव अपन सुख-दुख की भावनाओं से अभिप्रेरित होकर ही कोई कार्य सम्पादित नहीं करता प्रत्युत उसके कार्य के पीछे विविध प्रकार की अभिप्रेरणाएँ हो सकती हैं जो व्यक्ति की विभिन्न आवश्यकताओं से सम्बन्ध रखती हैं टालकट पारसंस, इ.ए.शिल्स, मैक्सवेबर, सी.आई. बनार्ड, रोपलिस बर्गर, जूनियर व्हाइट, एच.ए. साइमन आदि प्रसिद्ध समाजशास्त्रियों ने अपने अध्ययन में भलीभाँति इस विषय का समावेश किया है जो विशिष्ट समाज-व्यवस्था की संगठनात्मक इकाइयों द्वारा प्रभावित होता है। टालकट पारसंस के प्रतिमान (मॉडल) के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि कर्ता का कार्य संस्कृति एवं मूल्यों से प्रभावित होता है। पुनः कर्त्ता कोई कार्य इसलिए करता है क्योंकि उसकी कुछ आवश्यकताएँ होती हैं, कुछ लक्ष्य होते हैं जिनकी पूर्ति करने के लिए उसे प्रयत्न करना पड़ता है। कर्ता की लक्षित वस्तुएँ सदैव किसी परिवेश में होती हैं जिन्हें प्राप्त करने के लिए कर्ता अपने मूल्य-प्रतिमान के अनुरूप प्रयत्न करता है। पारसंस के अनुसार हम किसी कार्य को इसलिए करते हैं कि हम आवश्यकता से प्रेरित होते हैं, जिन्हें निम्न सूत्र से प्रकट किया जा सकता है–

कर्ता → आवश्यकता → लक्ष्य

पारसंस का मत है कि जब व्यक्ति आवश्यकता की पूर्ति हेतु लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है तो किसी अवस्था में उसके सामने कई विकल्प आते हैं। इन विकल्पों को उभय संकट के श्रृंग (हार्न्स ऑफ डाइलेमाज) कहते हैं। जब कर्ता कई विकल्पों में से एक को चुना लेता है तब सामाजिक क्रिया सम्पन्न हो जाती है। इस प्रतिमान के आधार पर देखने से सुखवादी चिंतकों की विचारधारा बुद्धिसंगत प्रतीत नहीं होती है। पुनः शास्त्रीय सम्प्रदायवादी चिंतक सुख-दुख के मापन के आधार पर दण्ड निर्धारित करने का समर्थन करते हैं। परन्तु इनके पास अब तक कोई ऐसा ठोस मापन उपकरण नहीं है, जिसके आधार पर यह माना जा सके कि एक ही प्रकार के अपराधकर्ताओं को एक ही समान सुख प्राप्त होता है तथा एक ही प्रकार का दण्ड देने से एक ही समान दुख प्राप्त होता है। वास्तव में सुख एवं दुख आत्मनिष्ठ तत्व है जिनका वस्तुनिष्ठ मापन सम्भव नहीं है।

इसके अतिरिक्त, अपराधशास्त्रीय साहित्य एवं कानूनी पुस्तकों में अपराधियों के विभिन्न प्रकार बताये गये हैं, जैसे प्रथम बार कानून उल्लंघन करने वाला, आकस्मिक, अभ्यस्त, पेशेवर, मनोविकृत, सामान्य जघन्य, बाल-अपराधी एवं वयस्क अपराधी, मत वसन अपराधी आदि। परन्तु शास्त्रीय सिद्धान्तवादियों की दृष्टि से उपर्युक्त सभी प्रकार के अपराधियों को समपदस्थ मानकर सभी अपराधियों को समान रूप से दण्ड देने का विधान है, जो कि युक्तियुक्त नहीं है।

पुनः इस सिद्धान्त में स्वतंत्र इच्छा की परिकल्पना ऐसे रूप में की गयी है कि

अपराध के कारणों का पुनः अन्वेषण करने अथवा अपराध की रोकथाम के लिए किसी भी प्रयत्न की सम्भावना नहीं रह जाती है। वे सभी सम्प्रदाय जो इस सम्प्रदाय के बाद में विकसित हुए हैं प्राकृतिक कारणत्व की प्राक्कल्पना को स्वीकार करते हैं और इसी कारण उन्हें कभी-कभी प्रत्यक्षवादी कहा गया है।

इसके अतिरिक्त स्वतंत्र विचार के सिद्धान्त को पूर्णतया दार्शनिक माना गया है, क्योंकि इसकी व्याख्या वैज्ञानिक प्रणाली के आधार पर नहीं की जा सकती। प्रोफेसर राबर्ट जी. काल्डवेल ने उचित ही लिखा है "स्वतंत्र विचार का विज्ञान न तो प्रमाणित ही कर सकता है और न अप्रमाणित ही कर सकता है.....नियतिवादी" यह स्वीकार करते हैं कि इस अर्थ में अपराधी उत्तरदायी है कि उसमें वे कारण विद्यमान हैं जो अपराधिकता उत्पन्न करते हैं।

इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त में आपराधिक कृत्यों को सम्पादित करने के सन्दर्भ में अपराधकर्ता के हेतुकी (Etiology) से सम्बन्धित कारकों को समझने का प्रयास बिल्कुल ही नहीं किया गया है। इस सन्दर्भ में आपराधिक कृत्यों के करने के प्रति आकर्षित करने वाले कारकों (पुल फैक्टर्स) तथा प्रेरक कारकों (पुश फैक्टर्स) के प्रति शास्त्रीय सिद्धान्तवादियों द्वारा ध्यान आकर्षित करने का प्रयास नहीं किया गया है।

शास्त्रीय सिद्धान्तकारों ने केवल भय उत्पन्न करने वाली दण्ड विधियों को ही अपराध निरोध की दिशा में प्रभावपूर्ण युक्ति के रूप में स्वीकार किया है। परन्तु आधुनिक अपराधशास्त्रियों ने इसके औचित्य को स्वीकार नहीं किया है। चूँकि दण्ड का भयात्मक पक्ष ऐसे दण्ड का प्रस्ताव रखता है जिसमें हिंसा तथा प्रतिशोध की भावना निहित है। अतः इसका महत्व आज के सुधारवादी युग में नगण्य है इस प्रकार का मत रखने वाले सभी विचारक दण्ड के भयात्मक सिद्धान्त की सम्पूर्ण अवधारणा को हेय समझते हैं और यह मानते हैं कि दण्ड का यह सिद्धान्त उन न्यायाधीशों तथा वकीलों की दिखावटी तर्क-माया का फल है जो अपने स्वार्थ या अज्ञानवश अपनी रूढ़िवादिता से चिपके हुए हैं। इलिंग्स्टन का मत है कि आज जो हमारे पास मानव व्यवहार का ज्ञान उपलब्ध है उससे यह कहीं साबित नहीं होता है कि मनुष्य को डरा-धमकाकर एक अच्छा शान्तिप्रिय तथा कानून का पालन करने वाला व्यक्ति बनाया जा सकता है।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि आधुनिक अपराधशास्त्रियों ने अपराधशास्त्र के इस कारणत्व के सिद्धान्त को अपराध की एक कारकीय व्याख्या मानकर अस्वीकार कर दिया है।

1.4 नव-शास्त्रीय विचारधारा (Neo-Classical School)

क्लासिकल विचारधारा द्वारा प्रतिपादित स्वतंत्र इच्छा का सिद्धान्त अधिक दिनों

तक नहीं टिक सका क्योंकि इसके आलोचकों ने इस ओर ध्यान आकृष्ट किया कि इस विचारधारा के प्रवर्तकों ने अपराधियों की वैयक्तिक विषमताओं की अनदेखी की थी तथा दण्ड की दृष्टि से नव-अपराधी और आदतन अपराधी में कोई भेद नहीं माना था। दूसरे शब्दों में, परिस्थिति तथा अपराध की गम्भीरता के अनुसार दण्ड दिये जाने की ओर क्लासिकल शाखा ने कोई ध्यान नहीं दिया था। क्लासिकल विचारधारा की आलोचना करने वाले विचारकों के दृष्टिकोण को ही नियो-क्लासिकल स्कूल कहा गया है जिन्होंने जोर देकर कहा कि अवयस्क, मूढ़, पागल तथा अक्षम आदि की श्रेणी में आने वाले अपराधियों को सामान्य अपराधी के समान दण्ड दिया जाना सरासर भूल होगी। इनके प्रति दण्ड की उदार नीति अपनाया जाना आवश्यक था। बालक, मूढ़ और पागल व्यक्ति सही और गलत कृत्य में विभेद करने में असमर्थ होने के कारण उन्हें दण्डित करते समय सामान्य अपराधी जैसा दण्ड देने से कोई अच्छा परिणाम नहीं निकलेगा। अतः इनमें और सामान्य अपराधियों में भेद किया जाना नितान्त आवश्यक था। निःसन्देह ही अपराधशास्त्र के विकास में नियो-क्लासिकल विचारधारा का यह उल्लेखनीय योगदान था जिसने कालान्तर में उपचारात्मक दण्ड पद्धति का सूत्रपात किया। इस विचारधारा की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित थीं–

1. नियो-क्लासिकल विचारधारा के समर्थकों ने अपराधशास्त्र का अध्ययन शास्त्रीय पद्धति से किये जाने पर बल देते हुए यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि अपराधी के दण्ड का निर्धारण करते समय उसकी मानसिक दशा तथा अपराध की गुरूता को कम करने वाली परिस्थितियों को विचार में लिया जाना आवश्यक है अतः मनोविकार से पीड़ित या अल्प वयस्क अपराधियों को अन्य अपराधियों की तुलना में कम दण्ड दिया जाना उचित होगा। इस सन्दर्भ में प्रो. गिलिन ने कहा कि नियो-क्लासिकल शाखा का उद्भव वस्तुतः क्लासिकल विचारधारा के समान दण्ड के सिद्धान्त के विरोधस्वरूप ही हुआ था जिसने सभी अपराधियों को समान अपराध के लिए एक सा दण्ड दिये जाने की व्यर्थता सिद्ध कर दिखाई।

2. समय की दृष्टि से नियो-क्लासिकल विचारक प्रथम प्रवर्तक थे जिन्होंने प्रथम अपराधी तथा आदतन अपराधी में विभेद किया तथा अपराधियों के प्रति वैयक्तिक उपचार पद्धति की आवश्यकता पर जोर दिया। इस शाखा ने परोक्षतः अपराधी की मानसिक स्थिति पर विचार किये जाने की आवश्यकता प्रतिपादित की।

3. नियो-क्लासिकल विचारधारा के समर्थकों का यह मानना था कि मनुष्य स्वाभावतः विवेकशील व आत्मसंयमी प्राणी है, अतः वह अपने आचरण के लिए स्वयं जिम्मेदार होता है। तथापि इनमें कुछ ऐसे निर्बुद्धि अथवा मानसिक

विकृति के व्यक्ति भी होते हैं जो अपने कृत्य के अच्छे-बुरे परिणामों के बारे में सोचने की क्षमता नहीं रखते हैं। अतः ऐसे अक्षम व्यक्तियों को अपराध के लिए दण्डित करते समय सामान्य अपराधी से भिन्न दण्ड दिया जाना उचित होगा।

4. यद्यपि इस शाखा के प्रवर्तकों ने दण्ड की दृष्टि से मानसिक विकृति या अक्षम अपराधियों तथा सामान्यतः उत्तरदायी अपराधी में विभेद को आवश्यक माना लेकिन वे इस बात पर एकमत थे कि इन सभी श्रेणियों के अपराधियों को समाज से पृथक् (अलग) रखा जाना नितान्त आवश्यक है।

5. नियो-क्लासिकल विचारधारा के कारण ही आगे चलकर सुधारात्मक तथा उपचारात्मक दण्ड पद्धति को समर्थन मिल सका जिसके परिणामस्वरूप आपराधिक न्याय प्रशासन के लिए परिवीक्षा (Probation), पेरोल, अनियत दण्डादेश, बोर्स्टल संस्थाएँ आदि उपचारात्मक पद्धतियाँ अस्तित्व में आयीं। यह प्रथम अवसर था जब अपराधशास्त्रियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ कि प्रत्येक अपराध का कोई कारण अवश्य होता है। यद्यपि नियो-क्लासिकल शाखा ने इन कारणों को मानसिक विकृति तक ही सीमित रखा लेकिन आगे चलकर पॉजिटिव विचारधारा के समर्थकों ने अपराध के विभिन्न कारणों का विश्लेषण कर अपराधी की वास्तविक परिस्थितियों को ही आपराधिक कृत्य का प्रमुख कारण माना।

6. इस विचारधारा के समर्थकों ने अपराधों के प्रति व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण (Subective approach) अपनाते हुए अपना ध्यान उन परिस्थितियों पर केन्द्रित करने का प्रयास किया जिनके कारण व्यक्ति अपराध करने की ओर प्रवृत्त होता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अपराधशास्त्र में नियो-क्लासिकल विचारधारा का प्रमुख योगदान यह था कि इसने क्लासिकल शाखा के स्वतंत्र-इच्छा के सिद्धान्त में सुधार की आवश्यकता प्रतिपादित की। इसके समर्थकों ने अपराधी की विशेष परिस्थितियों को देखते हुए दण्ड की मात्रा का निर्धारण किये जाने की आवश्यकता पर भी जोर दिया। इस प्रकार अपराधी को दण्डित करते समय आपराधिकृत्य के अलावा उसके व्यक्तित्व, अपराध करने का आशय, हेतु परिस्थिति आदि को भी विचार में लिया जाना चाहिए। उल्लेखनीय है कि आपराधिक न्याय प्रशासन में जूरी पद्धति (Jury System) का समावेश नियो-क्लासिकल विचार की ही देन है ताकि अपराधी के विचारण में जनता के साधारण प्रतिनिधियों की राय की जा सके।

अपराध का यह सिद्धान्त यद्यपि शास्त्रीय सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में ही था कि मनुष्य आपराधिक अथवा गैर-आपराधिक व्यवहार करने में स्वतंत्र होता है, विकसित हुआ, तथापि इस सिद्धान्त में शास्त्रीय सिद्धान्त की परम्परागत विचारधारा में कुछ सैद्धान्तिक परिमार्जन किया गया। नवशास्त्रीय सिद्धान्त ने यह स्थापित किया था कि 7

वर्ष से कम आयु के बालक अपराध करने में अक्षम होते हैं, क्योंकि उन्हें भले-बुरे की पहचान नहीं होती। साथ ही इस सिद्धान्त में उन मानसिक रोगों को भी स्वीकार किया गया जिनसे ऐसी पहचांन करने की शक्ति जाती रहती है। पुनः इस सिद्धान्त ने यह भी स्वीकार किया कि कुछ ऐसी भी परिस्थितियाँ होती हैं जिनमें पड़कर मनुष्य अपना विवेक खो देता है। इस प्रकार नवशास्त्रीय सिद्धान्त में शास्त्रीय सिद्धान्त के विपरीत निम्नलिखित तीन तत्वों पर विशेष रूप से बल दिया गया–

1. व्यक्ति की स्वतन्त्र इच्छा उसकी आयु, बुद्धि, शरीरिक एवं मानसिक अवस्था तथा पर्यावरण आदि द्वारा प्रभावित हो सकती है।
2. दण्ड देने से पूर्व न्यायालय को अपराधी की मानसिक अवस्था (कि क्या अपराधी अपनी क्रियाओं के परिणामों एवं सही और गलत के मध्य अन्तर मालूम कर सकता है) को जानना अत्यावश्यक है।
3. सही एवं गलत के मध्य अन्तर न कर सकने वाले अपराधियों से उदार रूप से व्यवहार करना चाहिए।

उपर्युक्त तत्वों पर विशेष बल देकर नवशास्त्रीय सिद्धान्तवादियों ने शास्त्रीय सिद्धान्त की भ्रान्तियों एवं गलतियों को दूर करने का प्रयास किया तथापि इस नव सिद्धान्त में भी निम्नलिखित त्रुटियाँ विद्यमान हैं–

1. नवशास्त्रीय सिद्धान्त में भी मानव व्यवहार के संचालन में तर्कवाद को अत्यधिक महत्व प्रदान किया गया तथा मानसिक आवेगों, संवेगों एवं सामाजिक तत्वों का न्यून प्राक्कलन किया गया।
2. शास्त्रीय सिद्धान्त की भाँति आपराधिक व्यवहार के विश्लेषण में अपराधी के व्यक्तित्व को महत्त्व न देकर आपराधिक कार्य को महत्त्व दिया गया।

यद्यपि इस सिद्धान्त ने वैज्ञानिक अपराधशास्त्र को जन्म तो नहीं दिया, तथापि इसने तत्कालीन अपराध सिद्धान्त को मात्र ऐच्छिक घटनाओं या अराजकताओं के शिविर से निकालकर अपराध करना विज्ञान के धरातल पर प्रतिष्ठित किया और दूसरे इसने आधुनिक आपराधिक विधि तथा नीति का भी निर्धारण किया।

1.5 प्रश्न

वस्तुनिष्ठ

1. बेन्थम तथा बकारिया शास्त्रीय सिद्धान्त के प्रवर्तक हैं? सत्य/असत्य
2. परिवीक्षा, पेरोल इत्यादि संस्थायें नव-शास्त्रीय सिद्धान्त की देन है।

सत्य/असत्य

लघु उत्तरीय

1. अपराध के पूर्व शास्त्रीय सिद्धान्त पर एक टिप्पणी लिखें?
2. नवशास्त्रीय सिद्धान्त पर एक टिप्पणी लिखें?

दीर्घ उत्तरीय

1. अपराधी के शास्त्रीय तथा पूर्व शास्त्रीय सिद्धान्तों को विस्तार से समझायें?
2. अपराध की नवशास्त्रीय सिद्धान्त पूर्व के सिद्धान्तों से किस प्रकार भिन्न हैं। विस्तार से बतायें

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Edwin H. Sutherland and Donald R. Cressey (1968), Principles of Criminology, the times of India press. Bombay.
2. Talcott Parsons (1979), The Social System, Amerind, New Delhi.
3. Robert G. Caldwell (1956), Criminology, Ronald Press, New York.
4. Jones, Stephen (2009), Criminology, Oxford University Press, New York.
5. Singh, Shyamdhar (2008), Theories of Criminology, Sapna Ashok Prakashan, Varanasi.
6. Paranjae, N. V (1999), Criminology and Penology, Central Law Publications, Allahabad.

इकाई - 2 : अपराध की वैज्ञानिक विचारधारा

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 वैज्ञानिक विचारधारा
2.3 वैज्ञानिक विचारधारा की विवेचना
2.4 शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक विचारधारा की तुलना
2.5 वर्तमान चिंतन
2.6 प्रश्न
2.7 संदर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप -

- वैज्ञानिक विचारधारा से परिचित होंगे।
- वैज्ञानिक विचारधारा तथा शास्त्रीय विचारधारा के अन्तर को समझ सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

कालान्तर में वैज्ञानिक अनुसंधानों की प्रगति के फलस्वरूप उन्नीसवीं सदी के कुछ फ्रांसीसी चिकित्सकों ने यह सिद्ध कर दिखाया कि अपराध का वास्तविक कारण मनुष्य की स्वतंत्र इच्छा या मानसिक विकृति न होकर उसकी शारीरिक रूपाकृति ही उसे आपराधिकता की ओर ले जाती है। दूसरे शब्दों में आपराधिकता का वास्तविक कारण अपराधी की मानवशास्त्रीय रूपाकृति (phrenologists) ने मानव मस्तिष्क की सम्पूर्ण क्रिया का अध्ययन करके यह सिद्ध कर दिखाया कि आपराधिकता और मानव मस्तिष्क की बनावट तथा उसकी क्रियाओं में प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। पॉजिटिव शाखा के समर्थकों ने इसी दिशा में अपने अनुसंधान आगे जारी रखे जिनमें इटली के तीन प्रमुख अपराधशास्त्रिओं-सिसेर लोम्ब्रोसो, एनरिको फैरी तथा रेफिल गेरोफेलो का योगदान विशेष उल्लेखनीय है। यही कारण है कि पॉजिटिव विचारधारा को अपराधशास्त्र की 'इटेलियन विचारधारा' भी कहा गया है।

2.2 वैज्ञानिक विचारधारा (Positive School)

लोम्ब्रोसो (Cesare Lombroso 1836-1909)

लोम्ब्रोसो को पॉजिटिव विचारधारा का मुख्य प्रवर्तक माना जाता है। वे कुछ समय के लिए इटली की थल-सेना में एक फिजिशियन के रूप में कार्यरत थे, परन्तु बाद में वे ट्यूरिन विश्वविद्यालय से जुड़ गए। उनकी 'अपराधी व्यक्ति (L'U'mo Delequente) नामक प्रथम कृति सन् 1876 में प्रकाशित हुई जिसका पन्द्रहवाँ संस्करण सन् 1897 में बृहद् रूप में 1903 पृष्ठों सहित प्रकाशित हुआ। लाम्ब्रोसो ऐसे प्रथम अपराधशास्त्री थे जिन्होंने व्यक्ति के आपराधिक-आचरण के कारणों को वैज्ञानिक पद्धति से प्रस्तुत करने का प्रयास किया तथा इस अध्ययन में अपराध के बजाय अपराधी की ओर ध्यान केन्द्रित की जाने की आवश्यकता प्रतिपादित की। अपराधशास्त्र के प्रति वस्तुनिष्ठ वं अनुभवाश्रित (empirical) पद्धति अपनाते हुए लाम्ब्रोसो ने रोगियों की शारीरिक बनावट तथा उनकी विशिष्टताओं का अध्ययन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि शारीरिक बनावट की दृष्टि से अपराध करने वाले व्यक्तियों का स्तर अपेक्षाकृत निम्न कोटि का होता है। उन्होंने यह साबित करने की कोशिश भी की कि सामान्य व्यक्ति की तुलना में अपराधी में कष्ट या यातनाएँ सहन करने की क्षमता अधिक होती है और इसीलिए वे दण्ड भोगने से विशेष नहीं डरते। इस प्रकार लोम्ब्रोसो ने अपने मानवशास्त्रीय प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया कि आपराधिक आचरण के सम्बन्ध में डार्विन (Darwin) का जैविक निरूपण का सिद्धान्त (Theory of Biological Determination) पूर्णतः लागू होता है।

लोम्ब्रोसो ने अपराधियों को निम्नलिखित तीन मुख्य श्रेणियों में वर्गीकृत किया-

1. जन्मजात अपराधी (Atavists)

लाम्ब्रोसो के अनुसार कुछ अपराधी जनमतः ही अपराधी स्वभाव के होते हैं तथा उनकी आपराधिकता वंशानुगतता के कारण होती है। ऐसे अपराधियों को लोम्ब्रोसो ने 'एटाविस्ट' (Atavists) की संज्ञा दी जिसका अर्थ है जन्मजात अपराधी। उनके अनुसार ऐसे अपराधी अपनी आपराधिक प्रवृत्ति को रोकने में असमर्थ होते हैं तथा परिस्थिति का उन पर कोई असर नहीं होता है। अतः ऐसे अपराधियों को सुधारना प्रायः असंभव होता है। लोम्ब्रोसो के अनुसार व्यक्ति की आपराधिक प्रवृत्ति के लक्षण उसके शारीरिक अवयवों की बनावट में परिलक्षित होते हैं। उन्होंने सोलह ऐसी शारीरिक असामान्यताओं (abnormalities) का उल्लेख किया है जो अपराधी में पाई जा सकती हैं, जिनमें अपराधी के सिर के आकार तथा बनावट, भयावह आँखे, बढ़े हुए जबड़े उभरी हुई गाल की हड्डियाँ,

मोटे मांसल होंठ, असामान्य दाँत, लम्बी एवं चपटी ठोड़ी, संकरा माथा, काला या सांवला रंग आदि प्रमुख है। यद्यपि पश्चातवर्ती वर्षों में लाम्ब्रोसो ने अपने इस सिद्धान्त को परिमार्जित किया लेकिन फिर भी इस बात को सदैव रेखांकित करते रहे कि आपराधिकता का मानवीय शारीरिक संरचना से गहरा सम्बन्ध है। सन् 1906 में उन्होंने अपने शोध के निष्कर्ष के रूप में यह प्रतिपादित किया कि कुल अपराधियों की लगभग एक तिहाई संख्या जन्मजात अपराधियों की होती है। परन्तु बाद में उन्होंने इन्हें जन्मजात अपराधी कहने के बजाय कदाचनिक अपराधी (Occasional Criminals) कहना अधिक उपयुक्त समझा।

कुछ वर्षों बाद एनरिको फैरी (Enrico Ferri) ने यह सिद्ध कर दिखाया कि यह धारणा गलत है कि कुछ अपराधी असुधार योग्य होते हैं। फैरी का मत था कि जिस प्रकार अपराधी व्यक्ति अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर आपराधिक कृत्य कर सकता है उसी प्रकार घोर अपराधी भी अनुकूल वातावरण मिलने पर अपनी आपराधिक मनोवृत्ति को त्याग सकता है।

2. मानसिक विकृति से पीड़ित अपराधी (Insane Criminals)

लोम्ब्रोसो के अनुसार अपराधियों की इस श्रेणी में ऐसे अपराधियों का समावेश है जिनकी मानसिक दशा सामान्य नहीं होती या वे किसी मानसिक विकृति से पीड़ित होते हैं। स्वाभावतः ऐसे अपाधियों में उचित-अनुचित में विभेद करने की क्षमता न होने के कारण वे अपराधों के प्रति अधिक संवेदनशील नहीं रहते हैं। अतः इनके प्रति उदार दण्ड की नीति अपनाई जानी चाहिए।

3. क्रिमिनॉइड्स (Criminoids)

इस श्रेणी के अन्तर्गत ऐसे अपराधियों को रखा गया जिनकी शारीरिक बनावट में कोई विकृति या दोष हो। लोम्ब्रोसो के मतानुसार शारीरिक विकृति के कारण इन अपराधियों में हीनता की भावना बनी रहती है जिस पर काबू पाने के प्रक्रिया स्वरूप व अपना हीन भाव छिपाने के लिए आपराधिक कृत्य कर बैठते हैं।

अपराधशास्त्र के विकास में लोम्ब्रोसो के योगदान की समीक्षा निम्नलिखित शबदों में की जा सकती है-

"लोम्ब्रोसियन विचारों के अनुसार अपराधी की आपराधिक प्रवृत्ति का पता लगाने के लिए उसके व्यक्तित्व पर विशेष बल दिया जाना चाहिए। इसी मान्यता के आधार पर आगे चलकर अपराधियों के उपचार हेतु वैयक्तिकरण का सिद्धान्त (individualisation) अपनाया गया जिसके अन्तर्गत अपराधी का उपचार उसकी वैयक्तिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया जाता है। इस सन्दर्भ में यह ठीक ही

कहा गया है कि समाजशास्त्री आपराधिकता के वाह्य कारकों को महत्व देते हैं, मनोवैज्ञानिक आन्तरिक कारकों पर बल देते हैं, जबकि दोनों का अभिधायक (denominator) 'व्यक्ति' (individual) ही होता है।''

अपराध के कारणों का विश्लेषण करते समय लोम्ब्रोसो ने मानव स्वभाव के जैविक स्वरूप (biological nature) पर विचार किये जाने की आवश्यकता पर जोर दिया और इस प्रकार अपराधशास्त्रियों का ध्यान अप्रत्यक्ष रूप से वातावरण और आपराधिक कारणों के बीच घनिष्ठ सम्बन्धों की ओर आकृष्ट किया।

उल्लेखनीय है कि अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में लोम्ब्रोसो ने स्वयं स्वीकार किया कि आपराधिकता विषयक जन्मजात अपराधी का सिद्धान्त (Theory of Atavism) वास्तविकता से परे था। इस प्रकार उन्होंने आपराधिकता के कारणों के अध्ययन में सकारात्मक तथा वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाया जिसके फलस्वरूप कालान्तर में समाजशास्त्रियों ने बहुविध कारकों का सिद्धान्त (Multiple CausationTheory) प्रतिपादित किया।

लोम्ब्रोसो के समकालीन इंग्लैण्ड के आपराधशास्त्री गोरिंग (Goring) ने भी अपराधियों की मनोवैज्ञानिक दशा पर गहन शोधकार्य किया तथा अनेक अपराधियों व अपराधियों की तुलना के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि ''शारीरिक दृष्टि से अपराधी'' जैसे अपराधियों की ऐसी कोई श्रेणी नहीं है जिस पर कि लाम्ब्रोसो ने अनावश्यक जोर दिया था। तथापित गोरिंग ने लोम्ब्रोसो की अनुभवाश्रित पद्धति (Inductive method) का समर्थन किया और यह भी स्वीकार किया कि अपराधी प्रायः मानसिक दृष्टि से दूषित व्यक्ति होते हैं। उसने लोम्ब्रोसो के इस तर्क से भी सहमति व्यक्ति की कि दण्डशास्त्र का केन्द्र बिन्दु न तो 'अपराध' है और न 'दण्ड' बल्कि 'व्यक्ति' है।

ब्रिटिश लेखिका कैथरीन एस. विलियम्स ने लम्ब्रोसो और गोरिंग के आपराधिकता सम्बन्धी विचारों में विभेद को स्पष्ट करने हेतु बास्केटबॉल के खिलाड़ियों का रोचक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा है कि ''यदि इसे हम लोम्ब्रोसो के दृष्टिकोण से देखें, तो वे हमें असामान्य शारीरिक बनावट के दिखलाई देंगे क्योंकि वे बहुत अधिक लम्बे कद के होते हैं, परन्तु गोरिंग की दृष्टि से वे असाधारण लम्बे कद के होने के कारण ही उन्हें बास्केटबॉल जैसे खेल के खिलाड़ी के रूप में शामिल किया गया है।

सन् 1909 में लोम्ब्रोसो की मृत्यु के समय तक यह पूर्णतः स्थापित हो चुका था कि उनके द्वारा प्रतिपादित जन्मजात अपराधी का सिद्धान्त तथ्यों का आवश्यकता से अधिक सरलीकरण के सिवा और कुछ नहीं था क्योंकि इसका कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं

था। अतः अपराधशास्त्र की आधुनिक पाजिटिव विचारधारा में लोम्ब्रोसो के विचारों का विशेष महत्व नहीं रह गया है। **लेविन** ने इसकी आलोचना करते हुए इसे 6लोम्ब्रोसो की कोरी कल्पना' (Lombrosian myth) निरूपित किया है।

लोम्ब्रोसो की सिद्धान्तों की आलोचना करते हुए प्रोफेसर सदरलैंड ने कहा है कि क्लासिकल शाखा द्वारा अपराधशास्त्र के विकास को सुदृढ़ आधार दिलाए जाने के बाद लोम्ब्रोसो ने अपराध को एक सामाजिक घटना के बजाय वैयक्तिक घटना सिद्ध करने में जो पचास वर्ष गवां दिये उसके कारण आपराधशास्त्र का विकास पचास वर्ष तक रूका रहा और उनका योगदान लगभग व्यर्थ ही रहा। इन सब आलोचनाओं के बावजूद, अपराधशास्त्र के विकास में लोम्ब्रोसो के योगदान को सरलता से नहीं भुलाया जा सकता है क्योंकि उन्होंने अपराधशास्त्र का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन किये जाने की परंपरा प्रारम्भ की जिसका दण्ड नीति के निर्धारण में प्रयोग किया जाता रहा है। अपराधशास्त्र के विकास में लोम्ब्रोसो का सर्वोपरि योगदान यह रहा है कि उन्होंने इसके अध्ययन के प्रति वैज्ञानिक पद्धति अपनाई तथा बाकेरिया के 'स्वतंत्र इच्छा सिद्धान्त' (Free Will Theory) के तार्किक आधार का खण्डन किया।

एनरिको फैरी (Enrico Ferri 1856-1928)

अपराधशास्त्र की पॉजिटिव विचारधारा के समर्थकों में एनरिको फैरी का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने लोम्ब्रोसो के विचारों को चुनौती दी तथा अपनी विद्वतापूर्ण अनुसंधानों द्वारा यह साबित किया कि अपराधशास्त्र के लिए केवल जैविक कारण ही पर्याप्त नहीं है। फैरी के अनुसार संवेदनशीलता, सामाजिक अक्षमता, भौगोलिक स्थिति आदि जैसे अनेक अन्य कारण भी हैं जो व्यक्ति की आपराधिक प्रवृत्तियों पर प्रभाव डालते हैं। यही कारण है कि फैरी को 'आपराधिक समाजशास्त्र' का प्रवर्तक भी माना जाता है। फैरी ने अपराधों के तीन मुख्य कारण निरूपित किये हैं- (1) भौतिक कारण, (2) मानवशास्त्रीय कारण तथा (3) सामाजिक कारण।

अपराधशास्त्र में एनरिको फैरी का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह रहा है कि उन्होंने 'आपराधिक सन्तृप्ति' (criminal saturation) का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इस सिद्धान्त के अनुसार बहुत से कारक मिलकर एक ऐसी स्थिति निर्मित कर देते हैं जो आपराधिक आचरण के लिए अनुकूल होती है। अनेक विद्वानों ने फैरी के इस सिद्धान्त की आलोचना इस आधार पर की कि यह कारण और परिणाम के नियम (Law of cause and effect) का ही एक विशिष्ट प्रकार है, जो आपराधिक आचरण के प्रति लागू किया गया है।

फैरी ने इस बात पर जोर दिया कि अपराधी को उसके अपराधकृत्य के लिए

उत्तरदायी ठहराना व्यर्थ है क्योंकि परिस्थिति के संयुक्त प्रभाव के काराण ही वह अपराध कर बैठता है। अतः अपराध निवारण कार्यक्रम में अपराध के कारणों को समाप्त करने की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। फैरी ने विभिन्न आधारों पर अपराधियों को निम्न पाँच प्रकारों में बांटा-

1. जन्मतः अपराधी (Born criminals)
2. कदाचनिक अपराधी (Occasional criminals)
3. भावावेशी अपराधी (Passionate criminals)
4. विक्षिप्त अपराधी (Insane criminals); तथा
5. आदतन अपराधी (Habitual criminals)

1. जन्मतः अपराधी

फैरी के अनुसार जन्मतः अपराधी से आशय यह नहीं है कि वंशानुगतता के (heridity) कारण उनमें आपराधिक प्रवृत्ति पनपती है, अपितु जन्म से ही ये आपराधिक वातावरण में पले-बढ़े होने के कारण अपराध के प्रति इनका आकर्षण या रूझान बढ़ जाता है और वे आपराधिक गतिविधियों में लिप्त हो जाते हैं।

2. कदाचित अपराधी

कदाचित अपराधी (Occasional Criminal) से फैरी का तात्पर्य उन व्यक्तियों से है जो स्वभावतः अपराधी नहीं होते लेकिन अचानक अपराध करने हेतु अनुकूल वातावरण या मौका मिल जाने के कारण वे अवसर का लाभ उठाकर उपराध कर बैठते हैं।

3. भावावेशी अपराधी

भावावेशी अपराधी वे व्यक्ति होते हैं जो अपनी भावनाओं को नियंत्रण में रखने में विफल रहते हैं और क्षणिक आवेश या भावना में बहकर आपराधिक कृत्य कर बैठते हैं। यौन अपराधियों में प्रायः यह प्रवृत्ति पायी जाती है।

4. विक्षिप्त अपराधी

विक्षिप्त अपराधियों में सही गलत में विभेद करने की क्षमता न होने के कारण वे अपराध करते हैं। वस्तुतः अपराध करने का उनका कोई दुराशय नहीं होता और न उन्हें यह ज्ञात रहता है कि जो कुछ वे कर रहे हैं वह एक दण्डनीय अपराध है। ऐसे अपराधियों

पर दण्ड का भी कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है इसलिए इनके लिए उपचारात्मक दण्ड पद्धति अपनाया जाना ही एकमात्र उपाय है।

5. आदतन अपराधी

इस श्रेणी में उन अपराधियों का समावेश है जो घोर अपराधियों की कुसंगति में पड़कर आपराधिक गतिविधियों में लिप्त रहते हैं। यदि वे एक दो बार अपने अपराध कृत्य में सफल हो जाते हैं और पकड़े जाने से बच जाते हैं तो इन्हें अपराधिकता को जारी रखने हेतु प्रोत्साहन मिलता है और वे निर्भय होकर अपराध करते रहते हैं। इसलिए इन्हें आदतन अपराधी कहा जाता है।

फैरी का निश्चित मत था कि अपराधों की रोकथाम के लिए अपराध निवारण अभियान चलाया जाना चाहिए तथा अपराधी में सुधार लाने के लिए दण्ड का भी माध्यम के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। उन्होंने अनियम दण्ड (Indeterminate Sentence) का समर्थन करते हुए कहा कि इसके प्रयोग द्वारा अपराधी को समाज मे पुनर्स्थापित करने मे सहायता मिलेगी। अपनी 'दांडिक परियोजना' (Penal Project) मे फैरी ने प्रतिशोधात्मक दण्ड को अस्वीकार किया।

रेफेल गेरोफेलो (Raffeale Garofalo)

अपराधशास्त्र की इटेलियन विचारधारा या पॉजिटिव शाखा के तीन पमुख प्रवर्तकों में रेफेलो का नाम भी उल्लेखनीय है। वे फैरी के ही समकालीन अपराधशास्त्री थे। उनका जन्म सन् 1852 मे इटली के नेपल्स में हुआ था। पॉजिटिव विचारधारा के इन तीन समर्थकों में केवल गेरीफेलो ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे जो विधिशास्त्री होने के साथ-साथ मजिस्ट्रेट, प्राध्यापक तथा सीनेटर (Senator) के रूप मे कार्य कर चुके थे। विधि के इन तीन महत्वपूर्ण पदों पर कार्य करने का अनुभव होने के कारण उनके निष्कर्ष बहुत ही व्यावहारिक एवं तर्कसंगत सिद्ध हुए। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि अपराधी अपनी परिस्थितियों की निर्मिति होने के कारण अपराधशास्त्र के अध्ययन में उसकी जीवन की वास्तविक परिस्थितियों पर विचार किया जाना चाहिए। क्लासिकल विचारधारा के स्वच्छन्द इच्छा (free will) के सिद्धान्त को नकारते हुए गेरोफेलो ने अपराध की व्याख्या नये ढंग से की। उनके अनुसार 'अपराध' मनुष्य द्वारा किया गया ऐसा कृत्य होता है जिसके कारण सामान्य व्यक्ति में अन्तर्विष्ट दया (pity) तथा न्यायिकता (probity) की भावनाओं पर प्रत्याघात होता है और जो समाज के लिए अहितकर होता है। अतः किसी व्यक्ति में दया की भावना का अभाव उसे शरीर सम्बन्ध अपराध करने की ओर प्रवृत्त करता है जबकि न्यायिकता की भावना के अभाव के कारण वह बहुधा सम्पत्ति सम्बन्धी अपराध करता है।

MASY 09 7A

गेरोफेलो ने फैरी द्वारा किये गये अपराधियों के वगीकरण को अस्वीकार करते हुए उन्हें निम्नलिखित चार वर्गों में वर्गीकृत किया है-

1. हत्यारी (Murderers of endamic criminals)
2. हिंसात्मक अपराधी (Violent criminals)
3. न्यायिक भावना रहित अपराधी (Criminals lacking sentiment of Probity)
4. विषयासक्त या कामातुर अपराधी (Lustful criminals)

इटली की न्यायिक सेवा में रह चुकने के कारण गेरोफेलो आपराधिक विधि एवं प्रक्रिया से भली भाँति परिचित थे तथा उन्हें आपराधिक न्याय प्रशासन का पर्याप्त व्यावहारिक अनुभव था। उन्होंने मृत्युदुण्ड, आजीवन कारावास या देश निकाला तथा क्षतिपूर्ति इन तीन दण्डों को न्यायोचित माना। अपने स्वयं के न्यायिक अनुभव तथा फ्रांस में उपचारात्मक दण्ड की असफलता को देखते हुए वे अपराधियों के सुधार के बारे में अधिक आशान्वित नहीं थे। इसीलिए उन्होंने आदतन तथा घोर अपराधियों को समाज से बहिष्कृत किये जाने की अनुशंसा की क्योंकि उनका समाज में पुनर्स्थापन लगभग असंभव ही था।

गेब्रिल टार्डे (Gabriel Tarde)

अपराधशास्त्र की पॉजिटिव विचारधारा के आलोचकों में गैब्रियल टार्ड का नाम अग्रगण्य है। उनके मतानुसार आपराधिक आचरण के लिए सामाजिक परिस्थितियाँ तथा आसपास का वातावरण ही मुख्य रूप से कारणीभूत होते हैं अतः जैविक और भौतिक तथ्यों का असर तो केवल आकस्मिक होता है। उन्होंने इस ओर ध्यान आकर्षित किया कि मानव की निवेशन तथा अनुकरण (Insertion and imitation) की स्वाभाविक प्रवृत्ति ही अपराधों के लिए कारणीभूत है। इस तर्क की पुष्टि से उन्होंने कहा कि मनुष्य प्रायः अपने सहयोगियों का अनुकरण करता है। इसी प्रकार अधीनस्थ वर्ग में प्रायः अपने से उच्चतर (Superior) या वरिष्ठ लोगों का अनुकरण करने की प्रवृत्ति होती है। अतः आपराधिक जगत में नव-अपराधी प्रायः अभ्यस्त अपराधियों के सम्पर्क में आने के कारण उनका अनुसरण करने लगते हैं। यही कारण है कि आज के किशोर वयस्कों में चलचित्र या दूरदर्शन आदि के नायक-नायिकाओं का हाव-भाव, चाल-ढाल, फैशन आदि का अनुसरण करने की प्रवृत्ति देखने को मिलती है जिनका उन पर दुष्प्रभाव पडता है क्योंकि कच्ची आयु के होने के कारण उनमें उचित-अनुचित में भेद समझने की क्षमता नहीं होती है।

अपराधों के सन्दर्भ मे अनुकरण (imitation) की भूमिका का उल्लेख करते

हुए टार्डे कहते हैं कि अन्य सामाजिक घटनाओं की तरह मनुष्य प्रारम्भ में अपराध को फैशन की तरह अपनाता है जो आग चलकर उसकी आदत का रूप धारण कर लेती है। उल्लेखनीय है कि भारत में वर्तमान राजनीतिक अराजकता तथा अपराधिकता भी टाडे के अनुकरण के सिद्धान्त को सही प्रमाणित करती है (नेताओं के आचरण का अनुसरण उनके अनुयायी करने लगते हैं)। जब अधिकांश नेतागण ही हिंसा, स्वार्थ, भ्रष्टाचार, पक्षपात, शोषण आदि में रत है, तो इसका प्रभाव उनके अनुयायियों पर पडना स्वाभाविक है और इसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण राजनीतिक वातावरण दूषित हो चुका है।

टार्डे ने अपराधियों को दो वर्गो मे वर्गीकृत किया है जिन्हें (1) नगरीय (Urban) अपराधी तथा (2) ग्राम्य (Rural) अपराधी कहा है। उनके अनुसार ग्राम्य अपराधियों की तुलना में नगरीय अपराधी अधिक चालाक और हानिकारक होते हैं तथा नगरीय क्षेत्रों में होने वाले अपराधों का स्वरूप भी अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर होता है।

यद्यपि टार्डे के अपराध एवं आपराधिकता सम्बन्धी विचार अधिक व्यावहारिक तथा तर्कसंगत थे परन्तु उन्हें अत्यधिक सरलीकरण के आधार पर मान्यता प्राप्त न हो सकी। फिर भी अपराधों के निवारण के लिए इन विचारों का मार्गदर्शक के रूप में महत्व आज भी बना हुआ है।

2.3 वैज्ञानिक विचारधारा की विवेचना

जैसा कि पूर्व में कथन किया जा चुका है, अपराधशास्त्र की पॉजिटिव विचारधारा का उद्भव क्लासिकल तथा नियो-क्लासिकल विचारो की प्रतिक्रियास्वरूप हुआ। इस विचारधारा के समर्थकों ने आपराधिकता सम्बन्धी पैशाचिक प्रभाव, अन्धविश्वास तथा स्वच्छन्दता के सिद्धान्तों का खंडन करते हुए उसे निश्चित वैज्ञानिक दिशा प्रदान की जो तर्क और वास्तविक संप्रेक्षण (Observation) पर आधारित थी। उनके अनुसार मानवशास्त्रीय (anthropological), भौतिक तथा सामाजिक परिस्थितियाँ ही आपराधिकता के लिए मुख्य रूप से कारणीभूत होती है। पॉजिटिव विचारधारा का सर्वश्रेष्ठ योगदान यह था कि उसने अपराधशास्त्रियों का ध्यान इस ओर दिलाया कि अपराधशास्त्र के अध्ययन के केन्द्र बिन्दु 'अपराधी' होना चाहिए न कि अपराध-कृत्य या दण्ड। अतः अपराधी के सुधार तथा समाज में उसके पुनर्स्थापन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इसी सिद्धान्त के परिणामस्वरूप वर्तमान न्याय-प्रशासन में अनेक उपचारात्मक तरीकों का प्रादुर्भाव हुआ है जिनके माध्यम से अपराधियों में सुधार लाने का प्रयास किया जाता है। इस विचारधारा का यह तर्क कि अपराधी अपने वातावरण तथा अनुभवों का उपोत्पद (by-product) है, आज भी उतना ही सार्थक है जितना कि उस समय था। इन विचारकों के मतानुसार आपराधिक न्याय-प्रशासन का मुख्य उद्देश्य आपराधिक

MASY 09 7B

तत्वों से समाज की रक्षा करना है तथा इसे सुनिश्चित करने के लिए ऐसे अपराधियों को जो सुधार-योग्य नहीं है, समाज से निष्कासित किया जाना आवश्यक है।

उल्लेखनीय है कि न्याय प्रशासन में जूरी पद्धति (Juri System) का उद्भव भी पॉजिटिव विचारधारा की ही देन है। जूरी से आशय उन व्यक्तियों से है जो जनसाधारण में से चुने जाते हैं। जूरी के सदस्यों का कार्य यह होता है कि वे अपराधी की परिस्थितियों तथा अपराध-कृत्य करने के कारणों पर विचार करके अपनी राय से न्यायाधीश को अवगत कराएँ। आशय यह है कि अपराधी के दोष के विचारण में विधिक प्रावधानों के अलावा जनसामान्य के सदस्यों की राय भी महत्वपूर्ण होती है क्योंकि इससे संकेतिक रूप से जनता की प्रतिक्रिया का अनुमान लगाया जा सकता है। निवेदित है कि वर्तमान में न्याय-प्रशासन पूर्णतः विकसित हो जाने के परिणामस्वरूप तथा न्यायिक विवेक के बढ़ते हुए महत्व के कारण जूरी पद्धति का महत्व कम हो गया है और भारत की वर्तमान आपराधिक न्याय-व्यवस्था में इसे कोई स्थान प्राप्त नहीं है।

2.4 शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक विचारधारा की तुलना

तुलना की दृष्टि से क्लासिकल तथा पॉजिटिव विचारधाराओं में निम्नलिखित विभेद हैं-

1. क्लासिकल विचारधारा ने 'अपराध' की विधिक परिभाषा की जबकि पॉजिटिव शाखा ने विधिक परिभाषा को अस्वीकार करते हुए अपराध की समाजशास्त्रीय परिभाषा को महत्व दिया।

2. अपराध के स्पष्टीकरण के रूप में क्लासिकल शाखा के विचारकों ने 'स्वच्छन्द इच्छा के सिद्धान्त' (Free Will Theory) का सहारा लिया परन्तु पॉजिटिव शाखा ने जैविक उत्तरजीविता (Biological Survivorship) को अपराध का कारण माना।

3. क्लासिकल विचारधारा ने अपराध के लिए कठोर तथा निश्चित दण्ड दिये जाने का समर्थन किया तथा समान अपराध के लिए समान दण्ड की नीति अपनाई जबकि पॉजिटिव शाखा ने दण्ड की उपचारात्मक पद्धति को अधिक प्रभावी माना तथा अपराधी की परिस्थितियों के अनुसार कम या अधिक दण्ड दिये जाने की आवश्यकता प्रतिपादित की।

4. क्लासिकल मत के समर्थकों ने 'अपराधी' के बजाय 'अपराध' को अपने अध्ययन का केन्द्र-बिन्दु बनाया परन्तु पॉजिटिव शाखा ने अपराधी के अध्ययन के व्यक्तित्व को अधिक महत्वपूर्ण माना।

5. क्लासिकल विचारधारा का उद्‌भव अट्‌ठारहवीं शती में हुआ जिसका मुख्य उद्‌देश्य अपराध विषयक भ्रान्तियों को दूर करके उसका वैज्ञानिक आधार पर अध्ययन करना था जबकि पॉजिटिव विचारधारा का प्रादुर्भाव उन्नीसवीं सदी में हुआ जिसका लक्ष्य मनमानी तथा प्रतिशोधात्म दण्डों के बजाय निश्चित मापदण्डों पर आधारित दण्ड व्यवस्था को लागू करना था।

6. क्लासिकल विचारधारा के प्रवर्तकों में बकारिया तथा बेंथम के नाम अग्रगण्य हैं जबकि लोम्ब्रोसो, फैरी तथा गेरोफेलो को पॉजिटिव विचारधारा का मुख्य प्रवर्तक माना जाता है।

2.5 वर्तमान चिंतन

क्लिनिकल विचारधारा (Clinical School)

वर्तमान में मनोविज्ञान तथा मनोचिकित्सा-शास्त्र में हुए नवीनतम अनुसन्धानों के फलस्वरूप मानव स्वभाव तथा उसकी आन्तरिक भावनाओं के बारे में विस्तृत जानकारी उपलब्ध हुई है जिसके कारण अपराधियों की मनोवृत्ति तथा उनके मनोविकारों को अच्छी तरह समझने में पर्याप्त सहायता मिली है। इस सन्दर्भ में प्रोफेसर गिलिन (Prof. Gillin) ने कहा है कि अपराधियों के मनोवैज्ञानिक परीक्षण से उनकी आपराधिकता के कारणों के विश्लेषण में पर्याप्त सहायता मिली है और तद्‌नुसार उनका दण्ड निर्धारण करना सरल हो गया है। इस अपेक्षाकृत नवीन विचारधारा को क्लिनिकल विचारधारा के नाम से सम्बोधित किया गया है। इस विचारधारा के समर्थकों का मानना है कि व्यक्ति के स्वभाव पर उसके वंशानुगत लक्षणों तथा जीवन के वैयक्तिक अनुभवों का झा प्रभाव पड़ता है। दूसरे शब्दों में बाल्यकाल से लेकर अपराध किये जाने तक के विभिन्न अनुभवों की प्रतिक्रियास्वरूप ही व्यक्ति अपराध करता है। अतः उसके व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक आधार पर विश्लेषण करके उपचारात्मक पद्धति से उसका सुधार किया जाना चाहिए ताकि वह पुनः अपराध की ओर प्रवृत्त न हो। आशय यह है कि जिस प्रकार किसी रोगी के रोग के कारणों का पता लगाने के पश्चात् ही उसका चिकित्सकीय उपचार किया जाता है, ठीक उसी प्रकार अपराधी का भी उसकी अपराधिकता के कारणों का पता लगाने के बाद उपचारात्मक दंड-पद्धति द्वारा निदान किया जाना चाहिए।

समाजशास्त्रीय विचारधारा (Sociological School)

अपराधशास्त्र के विकास में समाजशास्त्रीय विचारधारा अपेक्षाकृत अद्यतन है। इसके अनुसार व्यक्ति की विभिन्न सामाजिक परिस्थितियाँ ही अपराधों के

लिए कारणीभूत होती हैं। इस सामाजिक कारणों में गतिशीलता, संस्कृति, शर्म, आर्थिक दशा, राजनीतिक मान्यताएं, जनसंख्या की गहनता, रोजगार की स्थिति आदि का आपराधिकता से घनिष्ठ सम्बन्ध है इन्हें सदरलैण्ड ने अपने विविध कारकों के सिद्धान्त में समाविष्ट कर अपराधों में प्रत्यक्षतः सम्बन्धित बताया है। इस विचारधारा के समर्थकों ने अपराध और अपराधियों के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाये जाने पर बल दिया है। उनकी धारणा है कि अपराध का कोई एक निश्चित कारण नहीं होता बल्कि विभिन्न कारण मिलकर एक ऐसी विशिष्ट परिस्थिति उत्पन्न करते हैं जो अपराध के लिए अनुकूल स्थिति निर्मित करते हैं जिनके प्रभाव में व्यक्ति अपराध कर बैठता है। अतः आपराधिक कृत्य मानव आचरण का ही परिणाम है जिसे निश्चित नियमों में सूत्रबद्ध नहीं किया जा सकता।

वर्तमान समय में अपराधशास्त्रीय चिन्तन में पर्याप्त बदलाव आया है। आधुनिक अपराधशास्त्री परम्परागत अपराधशास्त्रीय विचारधारा का इस आधार पर खण्डन करते हैं कि उन्होंने अपराधी वर्गों में लाक्षणिक भेद गलत धारणाओं पर आधारित किया। इस गलत धारणा का मूल कारण यह था कि रूढ़िवादी अपराधशास्त्रियों ने कुछ अपराधियों को 'अपराधी-स्वरूप' (criminal type) कहकर के निरूपित किया। इस सम्बन्ध में माइकेल फिलिप्सन ने कहा है कि 'अपराध' को सामाजिक सन्दर्भ से बाहर रखते हुए उसे केवल भौतिक या मानसिक विकृति की उत्पत्ति मानना सरासर भ्रम है। फिलिप्सन के अनुसार परम्परागत अपराधशास्त्र की आलोचना के निम्नलिखित मुख्य आधार है-

1. यह कि अपराध के कारण सार्वभौतिक (universal) हैं ।
2. यह कि आपराधिक समुदाय को दो वर्गों-आपराधिक तथा अनआपराधिक में वर्गीकृत किया जा सकता है।
3. यह कि वैयक्तिक अपराधियों के अध्ययन से अपराध के कारणों का पता लगाया जा सकता है।
4. यह कि अपराधों सम्बन्धी अधिकृत सांख्यिकी (statistics) अपराधों के बारे में बदलती हुई प्रवृत्तियों को प्रदर्शित करती है।

आधुनिक अपराधशास्त्र के समर्थक आपराधिकता को सामाजिक अन्तर्विरोध (Social Conflict) का परिणाम मानते हैं। ऐन्जिल्स (Engels) ने कहा है कि सम्पन्न वर्ग द्वारा किये जाने वाले शोषण के कारण समाज के धनहीन एवं वंचित वर्ग के लोग स्वयं को उपेक्षित अनुभव करते हैं और उनके मनोबल में ह्रास के कारण उनका झुकाव आपराधिकता की ओर होने लगता है। अतः आपराधिकता के निवारण के लिए यह परम आवश्यक है कि समाज के सामाजिक एवं आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन लाया जाए।

सुविख्यात अपराधशास्त्री कोहेन (Cohen) ने अपराधशास्त्र की समाजशास्त्रीय विचारधारा व्यक्त करते हुए कहा है कि अपराधी की परिस्थिति को ही उसके अपराध का कारण मानना महान भूल होगी क्योंकि ऐसा करने से अपराध की परिस्थितियों और उसके कारणों में कोई भेद ही नहीं रह जाएगा, जो सर्वथा अनुचित है। वे आगे कहते हैं कि अपराध के कारणों को उसके 'कारकों' (factors) में ढूँढ़ना सरासर भूल होगी क्योंकि 'कारकों' को सामाजिक वातावरण को बदले बिना सरलता से विलुप्त (eliminate) किया जा सकता है।

विक्टिमोलॉजी (Victimology)

हाल के कुछ वर्षों में अपराधों के सम्बन्ध में यह धारणा भी उभर कर सामने आ रही है कि अपराधी के बजाय अपकारित व्यक्ति को ही अपराध के लिए कारणीभूत माना जाना चाहिए। इसे विक्मिोलॉजी (Victimology) कहा गया है। इसके अन्तर्गत इस ओर ध्यान दिलाने का प्रयास किया गया है कि अब तक केवल 'अपराध' और 'अपराधी' पर ही अपराधशास्त्रियों का ध्यान केन्द्रित रहा है और इसमें अपकारित व्यक्ति के योगदान की अनदेखी की गई है। अनेक अपराध ऐसे होते हैं जिनमें अपकारित व्यक्ति स्वयं ही उस अपराध का कारण होता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई महिला भड़कीली पोशाक में अपने अंग-प्रत्यंगों का प्रदर्शन करते हुए इधर-उधर व्यर्थ घूमती-फिरती है और कोई मनचला व्यक्ति उससे छेड़छाड़ कर बैठता है, तो वस्तुतः इस अपराध के लिए वह महिला ही मूलतः कारणीभूत है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति रेल के भीड़-भरे डिब्बे में या बस में अपनी जेब से हजारों रूपये के नोट निकालकर गिनती करने के बहाने उनका प्रदर्शन करता है जिससे प्रलोभित होकर कोई बदमाश या पाकेटमार उसकी जेब से उन रूपयों को उड़ा लेता (गायब) है, तो इसके लिए वास्तविक रूप से वह अपकारित व्यक्ति ही कारणीभूत है क्योंकि उसने ही पाकेटमार को रुपयों की चोरी करने के लिए प्रलोभित किया।

विक्टिमोलॉजी की इस नवीनतम धारणा के अनुसार अपराध से अपकारित व्यक्ति की समुचित क्षतिपूर्ति की जाने पर भी जोर दिया गया है।

2.6 प्रश्न

वस्तुनिष्ठ

1. लोम्ब्रोसो को वैज्ञानिक (पॉजिटिव) विचारधारा का प्रर्वतक माना जाता है

सत्य/असत्य

2. विक्टिमोलॉजी में यह धारणा उभर कर सामने आ रही है कि अपराधी के

बजाय अपकारित व्यक्ति को ही अपराध के लिए कारणीभूत माना जाना चाहिए

सत्य/असत्य

लघु उत्तरीय

1. अपराध की शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक विचारधारा में अन्तर बतायें?
2. वैज्ञानिक (पॉजिटिव) विचारधारा पर एक टिप्पणी लिखें?

दीर्घ उत्तरीय

1. लाम्ब्रोसो के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करें।
2. अपराध के वैज्ञानिक (पॉजिटिव) सम्प्रदाय पर एक निबंध लिखें।

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Edwin H. Sutheland and Dnald R. Cressey (1968), Principles of Criminology, the times of India press. Bombay.
2- Talcott Parsons (1979), The Social System, Amerind, New Delhi.
3. Robert G. Caldwell (1956), Criminology, ronald Press, New York.
4. Jones, Stephen (2009), Criminology, Oxford university Press, NewYork.
5. Singh, Shyamdhar (2008), Theories of Criminology, Sapna Ashok Prakashan, Varanasi.
6. Raranjape, N. V (1999), Criminology and Penology, Central Law Publications, Allahabad.

इकाई-3 अपराध के जैविकीय, भौगोलिक एवं मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 अपराध के जैविकीय सिद्धान्त

3.3 अपराध के भौगोलिक सिद्धान्त

3.4 अपराध के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

3.5 प्रश्न

3.6 सन्दर्भ ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त

- अपराध के जैविकीय सिद्धान्त से आप अवगत हो जाएंगे।
- अपराध के भौगोलिक तथा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त से आपका परिचय हो जायेंगे।

3.1 प्रस्तावना

प्रायः मानव इतिहास के प्रारम्भ से ही यह विश्वास चला आ रहा है कि स्वभाव, आचरण व्यवहार, सामाजिक-संगठन, सामाजिक प्रक्रियाएँ तथा समाज का ऐतिहासिक भाग्य उसके भौगोलिक पर्यावरण द्वारा निर्धारित होता है। विभिन्न समयों में विभिन्न विचारकों और विद्वानों ने इस मत की पुष्टि की है और इसके पक्ष में सही एवं गलत प्रमाण प्रस्तुत किया है। प्राचानी काल एवं मध्यकाल के अतिरिक्त उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों में अनेक इतिहासकारों, दार्शनिकों, अर्थशास्त्रियों, भूगोलवेत्ताओं, राजनीति-वैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों, मानवशास्त्रियों, मानवजाति-वैज्ञानिकों, प्राणिशास्त्रियों तथा चिकित्सा विज्ञान के विद्वानों ने मानव समाज के विभिन्न क्षेत्रों में भौगोलिक पर्यावरण के निर्णायक प्रभाव की ओर संकेत किया है। इनके विचारों में जहाँ कुछ समानताएँ हैं वहाँ विस्तृत विभिन्नताएँ भी विद्यमान हैं।

अगर इन सभी लेखकों को समग्र रूप से देखा जाये तो मानव शरीर और मन का कोई ऐसा गुण नहीं, समूह या सामाजिक संगठन का कोई ऐसा रूप या स्वभाव

नहीं, जिसकी कि भौगोलिक कारणों द्वारा विवेचना न की जा सके। पृथ्वी पर जनसंख्या के वितरण, प्रजातीय विभिन्नताएँ, आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक संगठन की विशेषताएँ, राष्ट्रों का उत्थान और पतन, धार्मिक विचार और विश्वास, परिवार और विवाह के प्रकार, स्वास्थ्य, प्रजनन शक्ति, बुद्धि, अपराध, आत्महत्या, सांस्कृतिक सफलता, प्रभावशाली व्यक्तियों की संख्या, साहित्य, कविता, कला एवं सम्पन्नता के गुण, आर्थिक और सामाजिक जीवन का विकास, संक्षेप में, सभी सामाजिक तथ्यों और प्रघटनाओं को उन्होंने भौगोलिक कारणों में ढूँढ़ा है।

3.2 अपराध के जैवकीय सिद्धान्त

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जैविकीय विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में आपराधिक व्यवहार के कारणों का अवबोध प्राप्त करने का प्रयास किया गया। जैविकीय विचारधारा चूँकि "प्रत्यक्षवाद" पर आधारित थी, अतः शारीरिक संरचना के सम्प्रदाय को प्रत्यक्षवादी सम्प्रदाय या सिद्धान्त भी कहा जाता है। शारीरिक संरचनावादी सम्प्रदाय के चिंतकों की धारणा थी कि आपराधिक व्यवहार का निर्धारण अपराधी के शारीरिक तत्वों द्वारा होता है। अपराधियों का शारीरिक गठन अनपराधियों के शारीरिक गठन से भिन्न होता है अपराधियों की कुछ विशिष्ट आकृतियाँ होती हैं और इनके कारण ही वे सामान्य व्यक्तियों से भिनन व पृथक होते हैं। अपराधियों के व्यक्तित्व में निहित शारीरिक एवं मानसिक विशेषताएँ जन्मजात होती हैं और ये विशेषताएँ ही उन्हें अपराधोन्मुख करती हैं। इस सिद्धान्त के विभिन्न चिंतकों ने आपराधिक व्यवहार की व्याख्या मानव शरीर के विभिन्न संघटक तत्वों के आधार पर की है जिनका विश्लेषण हम यहाँ पृथक-पृथक करेंगे।

कपालाकृति-विज्ञान से सम्बन्धित सिद्धान्त (Theory related to phrenology)

अपराधशास्त्र में शारीरिक संरचना से सम्बन्धित सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में मानव स्वभाव को मापने की दिशा में एक अत्यन्त व्यवस्थित तथा प्रभावशाली प्रयासों में कपालाकृति विज्ञान से सम्बन्धित सिद्धान्त एक प्रथम प्रयास था। इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रवर्तक वियना के एक प्रख्यात शरीरशास्त्री एवं चिकित्सक **डॉ. फ्रांज जोसेफ गाल** (1758-1828) थे।

डॉ. गाल के अनुसार चूँकि मनुष्य के मस्तिष्क में ही सारी मानव क्रियाओं की प्रेरक शक्ति निहित होती है, अतएव कपाल की आकृति से ही मनुष्य की क्रियाशीलता परखी जा सकती है। उनकी यह अभिधारणा थी कि कपाल का आकार मस्तिष्क की रूपरेख के अनुरूप होता है। गाल का कपालाकृति विज्ञान इस सिद्धान्त पर आधारित है कि मनुष्य के आचरण तथा व्यवहार मस्तिष्क में स्थानिक पैंतीस विभागों अथवा प्रवृत्तियों

के संतुलन द्वारा निर्धारित होते हैं। इस भ्रान्तिपूर्ण अवलोकन के आधार पर गाल तथा उसके सहयोगियों ने सिर के अस्थिमय वाह्य रूप के परीक्षण के आधार पर आचरण विश्लेषण की एक व्यवस्था विकसित की। किसी प्रवृत्ति के प्रभाव की मात्रा को सम्बद्ध कापालिकी के आधार एवं क्षेत्र के उभरे या आगे की ओर निकले होने की स्थिति में देखा जा सकता है। कपाल के (असाधारण) उभार, विनाशता, आशा, सतर्कता तथा अन्य सांवेगिक एवं बौद्धिक शक्तियों के द्योतक हैं। **डि क्युरॉस** के अनुसार गाल द्वारा प्रतिपादित इस अवधारणा का विकास इस सिद्धान्त पर आधारित है कि "शरीर का सबसे प्रभावशाली भाग मुखाकृति या चेहरा है।"

सिर की विभिन्न आकृतियों की कुछ निश्चित विशेषताओं को देखकर गाल ने स्वयं यह प्रश्न उठाया कि "क्यों लोगों की आकृतियों (चेहरों) एवं स्वभावों में ऐसी भिन्नताएँ हैं, क्यों एक व्यक्ति धोखेबाज, दूसरा निष्कपट एवं तीसरा सच्चरित्र है? इन प्रश्नों का उत्तर देने के प्रयास में उन्होंने यथासम्भव प्राप्त प्रत्येक सिर का परीक्षण किया। उन्होंने चिकित्सा प्रयोगशालाओं, कारावासों, पागलखानों में स्वयं जाकर प्राप्त खोपड़ियों के उभारों तथ असमानताओं को परखा। तत्पश्चात् उन्होंने उभरे हुए सिर तथा कुछ प्रवृत्तियों एवं आचरण विशेषताओं के मध्य सहसम्बन्ध स्थापित किया, जिन्हें उन्होंने विशिष्ट नामों से पदनामित किया। इस प्रकार अपराधियों तथा अनपराधियों के कापालिक आकारों में उन्होंने अन्तर स्थापित किया तथा वे इस निर्णय पर पहुँचे कि कपाल के आकार के माप द्वारा आपराधिक व्यवहार को परखा जा सकता है।

यद्यपि आज कपालाकृति-विज्ञान को एक नीम हकीमी से अधिक कुछ नहीं माना जाता है। परन्तु करीब सौ साल या इससे पहले इस विज्ञान को बड़े आदर के साथ स्वीकार किया जाता था। उन दिनों यह विज्ञान न केवल एक परिवार बल्कि समाज के पुनर्निर्माण के लिए एक अभिकल्प या रूपरेखा की भूमिका अदा करता था। प्रारम्भिक आलोचकों के बावजूद भी इसका प्रभाव 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से अन्त तक रहा। सामान्य लोगों की तो बात ही क्या उस युग के प्रख्यात समाजशास्त्री आगस्त कोंत तथा प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्स इस विज्ञान से अत्यधिक प्रभावित थे। प्रो. जेम्स ने अपनी पुस्तक "प्रिसिपल्स ऑफ साइकॉलॉजी" में लिखा कि "एक शुक नासिका (तोते की नाक वाला) तथा एक दृढ़ जबड़ा व्यावहारिक शक्ति के चिन्ह हैं..... एक सुप्रकट आँख शक्ति का चिन्ह है तथा वृषभ (साँड) के सदृश गर्दन विषयाशक्ति (कामुकता) का चिन्ह है।

कपालाकृति विज्ञान से सम्बन्धित कई अध्ययन कारावास प्रशासकों द्वारा किये गये। एम.बी. सान्सोम (M.B. Sonsom) द्वारा विरचित Rationale of Crime' 1846, पुस्तक प्रकट रूप से कपालाकृति विज्ञान पर आधारित थी जिसका प्राक्कथन

न्यूयार्क में सिंगसिग के महिला वर्ग के तत्कालीन अधीक्षक एलिजा फार्नहम ने लिखा था।

सन् 1899 में **अलफ्रेड वैलेक** जो प्रख्यात डार्विनियन उद्विकासीय सिद्धान्त के सहयोगी प्रवर्तक थे, ने लिखा कि "आने वाले शताब्दी में कपालाकृति विज्ञान,... स्वयं ही मन का सही विज्ञान प्रमाणित होगा। शिक्षा, आत्म-अनुशासन, अपराधियों के सुधारात्मक उपचार तथा पागलों के उपचारी व्यवहार में इसका व्यावहारिक प्रयोग विज्ञानों के संस्तरण में इसे उच्चतम स्थान प्रदान करेगा।"

कपालकृति विज्ञान को दण्डशास्त्र में अपरिहार्य रूप से प्रयोग करने का कार्य कपालकृति वैज्ञानिक स्कॉट तथा कारावास निरीक्षक जार्ज कॉम्बे ने किया था। कॉम्बे का यह तर्क कि प्रत्येक कैदी का वर्गीकरण कपालाकृति, विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में करना चाहिए, एडवर्ड लिविंग स्टोन द्वारा प्रस्तावित अन्तर्राष्ट्रीय प्रभावशाली दण्ड संहिता में सम्मिलित कर लिया गया था। कुछेक अमेरिकी कारावास प्रकट रूप से इन नवीन सिद्धान्त को स्वीकार कर चुके थे। सन् 1847 ई. में अमेरिकी कपालाकृति विज्ञान पत्रिका ने सिंगसिंग को "कपालाकृति वैज्ञानिकी संचालित कने वाली संस्था के रूप में घोषित किया।

कपालाकृति वैज्ञानिक वे प्रथम वैज्ञानिक हैं जिन्होंने दृढ़तापूर्वक दावा किया कि अपराध एक रोग है तथा साथ ही एक पाप भी है। सामान्यतः वे अपराधियों के उपचार के सम्बन्ध में बहुत अधिक मानवतावादी दृष्टिकोण रखते थे तथा प्रतिशोधात्मक न्याय के विरोधी थे।

परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कुछ अपराधशास्त्रीय एवं वैज्ञानिक अनुसंधानों की उपलब्धियों के प्रकाश में कपालाकृति विज्ञान की मान्यताओं की अनुदार कटु आलोचनाएँ व्यक्त की गईं। इस प्रकार आपराधिक व्यवहार की व्याख्या का यह सिद्धान्त अधिक प्रचलित नहीं हो सका, क्योंकि इस सिद्धान्त के सम्पोषक वैज्ञानिक रूप से यह प्रमाणित नहीं कर सके कि कपाल का आकार मस्तिष्क की रूपरेखा के अनुरूप होता है। पुनः वैज्ञानिक अनुसंधानों के परिणामों के आधार यह सिद्ध किया गया कि आचरण तथा व्यवहार स्थानिक पैंतीस विभागों अथवा प्रवृत्तियों संतुलन द्वारा निर्धारित नहीं होते हैं। वस्तुतः मस्तिष्क विभिन्न विभागों में एकांतिक रूप से विभाजित नहीं होता जैसा कि गाल तथा उसके सहयोगियों ने दर्शाया है। वैज्ञानिकों ने यह भी दावा किया कि मस्तिष्क की किसी प्रवृत्ति के प्रभाव की सम्बद्ध कापालिकी के प्रकार एवं क्षेत्र के उभार में कोई सकारात्मक सहसंबंध नहीं है। बहुत से ऐसे व्यक्ति जिनमें कापालिकी क्षेत्र के उभार होते हैं किन्तु वे आपराधिक व्यवहार नहीं करते हैं, वे क्यों ऐसा नहीं करते हैं, इस प्रश्न का उत्तर कापालिकी क्षेत्र कपालाकृति विज्ञान के सम्पोषकों के पास नहीं था।

कपालाकृति विज्ञान के आलोचकों का यह भी कहना है कि मानव व्यवहार इतना जटिल है कि इसका सम्यक अवबोध केवल कपालाकृति विज्ञान की विशेषताओं के विश्लेषण के आधार पर प्राप्त नहीं किया जा सकता। जैसे-जैसे मनोविज्ञान का विकास एक वैज्ञानिक अध्ययन के रूप में होता गया, कपालाकृति विज्ञान श्रीहीन होता गया। इस प्रकार स्पष्ट है कि मानव व्यवहार की व्याख्या इतना सरल नहीं है जितना कि इस काल्पनिक आभासी विज्ञान ने किया है फिर भी इस विज्ञान का योगदान अपराधशास्त्र में प्रशंसनीय था क्योंकि इस सिद्धान्त ने ही अपराध के अस्पष्ट, बिलकुल ही सामान्य सिद्धान्तों से मनुष्य का ध्यान खींचकर अपराधी की वैयक्तिक परख की ओर केन्द्रित किया।

सीजर लोम्ब्रोसो का सिद्धान्त (Cesare Lombroso's Theory)

आपराधिक व्यवहार के कारणों का सबसे अधिक प्रभावशाली शारीरिक संरचना से सम्बन्धित सिद्धान्त सिजर लोम्ब्रोसो (1836-1909) का सिद्धान्त था। यही कारण है कि लोम्ब्रोसो को शारीरिक संरचना के सिद्धान्त का जनक माना जाता है। लोम्ब्रोसो इटली में एक सैनिक चिकित्सक थे जिन्होंने अपराधशास्त्र में एक नवीन दिशा का संकेत दिया। मनोविकृति विज्ञान में प्रायोगिक पद्धतियों का प्रयोग करने में अग्रगामी लोम्ब्रोसो ने दृढ़तापूर्वक सामाजिक विज्ञानों में वैषयिक तथा मापने योग्य कारकों के महत्व पर विशेष रूप से बल दिया। उनका शारीरिक संरचना से सम्बन्धित विज्ञान की पद्धतियों को निश्चयात्मक रूप से प्रयोग में लाने का अवसर प्रदान किया। अपराधशास्त्रीय साहित्य में इस सिद्धान्त को "प्रत्यक्षवादी सिद्धान्त" भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त इसे "इटैलियन सम्प्रदाय" के नाम से जाना जाता है।

इटैलियन विचारक लोम्ब्रोसो के सिद्धान्त के अनुसार अपराधियों की शारीरिक संरचना अनपराधियों से भिन्न होती है। उन्होंने सम्पूर्ण शारीरिक संरचाना में कई शारीरिक व्यतिक्रमों का उल्लेख किया है किन्तु विशेष बल कपाल के आकारीय व्यतिक्रमों पर दिया है। उसकी मूल मान्यताएँ दो थी : (1) अपराधी जन्म से ही अपराधिता के लक्षणों से संयुक्त रहता है, वह इस रूप में ही जन्म लेता है, बनता नहीं। (2) अपराधी कुछ विशिष्ट आकृतियों को घोषित करते हैं और सामान्य मनुष्यों से इनके कारण भिन्न व पृथक होते हैं। लोम्ब्रोसो का मत है कि मनुष्य के सोचने-विचारने तथा कार्य करने के तरीकों का निर्धारण उसकी शारीरिक संरचाना के आधार पर ही किया जा सकता है। उनके अनुसार नर हत्या करने वाले, चोरी एवं अन्य प्रकार के गंभीर अपराध करने वाले व्यक्ति अपने शारीरिक गठन के आधार पर न केवल गैर-अपराधियों से भिन्न होते हैं प्रत्युत वे आपस में भी एक-दूसरे से भिन्न होते हैं।

लोम्ब्रोसो के सिद्धान्त की प्रथम आख्या सन् 1876 ई. में एक पम्पलेट या

पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुई। किन्तु उत्तरवर्ती संस्करणों में यह त्रि-खण्डीय पुस्तक रूप में विकसित हुई। अपने प्रारम्भिक तथा अधिक सुस्पष्ट स्वरूप में इस सिद्धान्त में निम्नलिखित प्रस्तावों या तर्कवाक्यों को सम्मिलित किया गया था :

1. अपराधी जन्म से ही एक विशिष्ट प्रकार के व्यक्ति होते हैं।

2. उनका यह विशिष्ट प्रकार शारीरिक क्षतचिन्हों (विकृतियों या असमानताओं) के आधार पर जाना जा सकता है। जैसे-असममित कपाल, लम्बा नीचा जंबड़ा, चिपटी नाक, तिरछा या झुका हुआ ललाट, लम्बे तथा मोटे कान, लम्बी बाँहें, वक्र ऑखें, घनी भौंहें, अत्यधिक बाल अथवा बालों का असामान्य प्रभाव, छोटी दाढ़ी तथा दुःख से अत्यधिक संवेदित अथवा न्यूनतः संवेदित होना। जिन व्यक्तियों में पॉच या इससे अधिक क्षतचिन्ह पाये जाते हैं उनमें अपराधोंन्मुखता प्रखर होती है। जिनमें तीन से पाँच क्षतचिन्ह पाये जाते हैं, वे अंशतः आपराधिक प्रवृत्ति वाले होते हैं और जिनमें तीन से भी कम क्षतचिन्ह पाये जाते हैं, वे बहुधा अपराधशील नहीं होते हैं।

3. ये शारीरिक असामान्यताएँ स्वयं अपराध का कारण नहीं होती हैं, प्रत्युत आपराधिक व्यवहार कने वालों के व्यक्तित्वों की विशेषताएँ होती हैं तथा जिनके कारण वे बर्बर हो जाते हैं एवं अवनति की ओर लुढ़क जाते हैं।

4. अपनी व्यक्तिगत प्रवृत्तियों के कारण ऐसे व्यक्ति अपराध से बचे नहीं रह सकते जब तक जीवन की परिस्थितियाँ असामान्य रूप से मनोनुकूल न हों।

5. लोम्ब्रोसो के कुछ अनुयायियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि अपराधियों के विभिन्न वर्ग जैसे-चोर, हत्यारे अथवा लैंगिक अपराधी शारीरिक क्षतचिन्हों द्वारा एक-दूसरे से भिन्न होते हैं।

अपने तर्कवाक्यों पर विशेष बल देते हुए लोम्ब्रोसो ने यह दावा किया कि लगभग सभी अपराधों में अपराध का कारण प्रतिकूल पर्यावरण न होकर व्यक्तियों की आपराधिक जैविकीय प्रवृत्ति है जो उनके शारीरिक क्षतचिन्हों द्वारा वाह्यरूप से ज्ञात होती है।

इटैलियन सेना में चिकित्सक के रूप में कार्य करते हुए लोम्ब्रोसो ने यह पर्यवेक्षित किया कि कष्टायक सैनिकों की शारीरिक विशेषताएँ कुछ विशिष्ट प्रकार की थी जबकि नियमबद्ध अथवा भविष्यवाणी योग्य सैनिकों में ऐसी विशेषताएँ विद्यमान नहीं थीं। उन्होंने यह भी अवलोकित किया कि अधिकांश सैनिक अपनी भुजाओं, छाती तथा शरीर के अन्य भागों पर गोदना गोदवाते हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने यह भी प्रेक्षित किया कि क्रूर या कष्टदायक सैनिकों में गोदने गँवारू या घटिया, अपरिष्कृत तथा लज्जास्पद

थे, जबकि सौम्य तथा विश्वसनीय सैनिकों के गोदने अधिकांशतः अहानिकारक एवं सरल थे। इस पर्यवेक्षण के आधार पर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि किसी व्यक्ति के शारीरिक अंगों पर बनवाए गए चित्र उसकी प्रकृति को निर्देशित करते हैं। इन शारीरिक विशेषताओं के आधार पर वह इस निर्णय पर पहुँचे कि व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक अभिवृत्तियों का शारीरिक क्षतचिन्हों के साथ उच्च सहसम्बन्ध होता है। इस प्रकार के प्रायोगिक निष्कर्ष ने इटैलियन बन्दीगृहों में अपराधियों के एक अधिक सम्यक् अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया।

हूटन का सिद्धान्त (Hooton's Theory)

गोरिंग के खण्डन के बावजूद आपराधिक व्यवहार के कारणों का शारीरिक संरचना के सिद्धान्त के साथ सातत्यता (निरन्तरता) विद्यमान रही, यद्यपि विभिन्न विद्वानों ने अपने अपने ढंग से इसका पोषण किया।

हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध मानवाशास्त्री अर्नेस्ट ए. हूटन ने सन् 1939 ई. में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'क्राइम एण्ड दि मैन' में यह प्रतिपादित किया कि अपराध तथा सामाजिक व्यवहार, प्रायः केवल शारीरिक एवं प्रजातीय कारकों के परिणाम है। उपर्यक्त पुस्तक हूटन के बारह वर्षों के गहन अध्ययन का उत्पाद था जिसमें उन्होंने अनेक अंशो में लोम्ब्रोसो के सिद्धानत का समर्थन किया। हूटन ने चार्ल गोरिंग के अध्ययन को अवैधानिक मानते हुए कहा कि उनके अनुसंधान के परिणाम अभिनतपूर्ण (पक्षपातपूर्ण) हैं। हूटन ने कहा कि जिन अपराधियों का उसने तथा उसके सहयोगियों ने अध्ययन किया था वे सभी बन्दी (जो एक महत्वपूर्ण सीमा है), विभिन्न शारीरिक हीनता के निश्चित प्रतिमान की रचना करते थे, अनपराधियों से भिन्न थे। अपराध का उन्मूलन करने के सम्बन्ध में हूटन ने कहा कि आपराधिक वंश (Criminal Stock) का निष्कासन करना परमावश्यक है। उनका विचार था कि इन दोषपूर्ण प्रकारों का बन्ध्यता द्वारा तथा उत्कृष्टतर प्रजाति के प्रजनन द्वारा आपराधिकता की वृद्धि को रोका जाना संभव हो सकता है।

हूटन के अध्ययन परिणाम 13873 पुरूष बंदियों तथा 3203 अनपराधियों के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित थे। उन्होंने अपराधियों के प्रतिदर्श में मैसाचुसेट्स (Massachusetts) के दस राज्यों के बंदियों को समाविष्ट किया था। इसी प्रकार अनपराधियों के प्रतिदर्श में भी उन्होंने मैसाचुसेट्स के ही तैराकियों (Patrons of bathing beach) नाशविल्ले के अग्निशमनजनों (Firemen in Nashville) एक नागरिक सेना कम्पनी के सदस्यों (Members of a Militia company) तथा एक अस्पताल के कुछ बाहरी रोगियों (Out patients) को अन्तर्विष्ट किया था। मापनों के अन्तर्गत 107 मानवमितिक (Anthropometric) विशेषताएं अन्तर्निहित

थी। अपने अध्ययन परिणामों के आधार पर हूटन ने निमनलिखित निष्कर्षों को प्रतिपादित किया-

(1) आपराधिक व्यवहार वंशानुगत हीनता का एक प्रत्यक्ष परिणाम है।

"आपराधिक व्यवहार विभिन्न प्रकार के होते हैं... किन्तु अपराधी जो भी हो, यह सामान्यतः विकृत प्राणी से उत्पन्न होता है... अपराध का प्राथमिक कारण जैविकीय हीनता है।

(2) विशिष्ट प्रकार के अपराध विशिष्ट प्रकार की जैविकीय हीनता के कारण घटित होते हैं, जैसा कि विभिन्न दोषपूर्ण शारीरिक विशेषताओं के प्रतिमानों द्वारा स्पष्ट होते हैं-

"चोरों तथा सेंधमारों का छोटे कद का शारीरिक गठन होता है.... डकैतों का विभिन्न प्रकार का-जैसे दुबला-पता, संकीर्ण, कठोर, हट्टा-कट्टा, शारीरिक गठन होता है।

"यह उल्लेखनीय तथ्य है कि लम्बे, दुबले-पतले व्यक्ति हत्या एवं लूटमार करने की ओर एवं लम्बे भारी व्यक्ति हत्या करने एवं जालसाजी और धोखेबाजी करने की ओर, नाटे दुबले-पतले व्यक्ति चोरी एवं सेंध मारने की ओर, छोटे भारी व्यक्ति आक्रमण करने, बालात्कार करने और अन्य लैंगिक अपराध करने की ओर जबकि मध्यम शारीरिक आकार वाले व्यक्ति सुस्पष्ट विभेदीकरण अथवा वरीयता से रहित कानून तोड़ने की ओर अभिमुख होते हैं।

(3) भिन्न व पृथक प्रजातीय वंश कुल तथा भिन्न व पृथक राष्ट्रीय समूह भिन्न-भिन्न प्रकार के अपराध करते हैं।

हूटन के अनुसार अपराध के कारण के रूप में वंशानुगत जैविकीय हीनता की तुलना में पर्यावरण की भूमिका नगण्य है। पर्यावरण केवल अप्रकट जैविकीय क्षमता को स्पष्ट करता है।

"जन्मजात हीन प्राणी अधिकांशतः वे होते हैं जो आपत्तियों अथवा अपने सामाजिक पर्यावरण के प्रलोभनों के वशीभूत होते हैं तथा सामाजिक विरोधी व्यवहार में आसक्त होते हैं।

इस प्रकार हूटन के अनुसार शारीरिक गठन से ही अपराधी निम्न श्रेणी के होते हैं। पर्यावरण का इन निम्न श्रेणी के लोगों पर जो प्रभाव पड़ता है, उसका ही प्रतिफल अपराध होता है, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अपराध का उन्मूलन तभी सम्भव हो सकता है जबकि शरीर, मस्तिष्क तथा नैतिक स्तर से विकृत इन विकलांगों का ही उच्छेदन किया जाए अथवा इन्हें समाज से बिल्कुल ही पृथक रखा जाये।

हूटन का मत है कि अपराधियों को पृथक तो रखना ही चाहिए साथ ही उन्हें ऐसे स्थानों पर रखना चाहिए जहां वे अपना पृथक सामाजिक संगठन बना सकें।

शेल्डन का व्यवहार-सूत्र के रूप में शारीरिक गठन का सिद्धान्त

हूटन के सिद्धान्त के पश्चातृ शीघ्र ही शारीरिक संरचना के अनुसंधान का एक दूसरा पक्ष ध्यानाकर्षित कने लगा। यह कार्य था हारवर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर विलियम एच. शेल्डन तथा उनके सहयोगियों का। यद्यपि शेल्डन के पूर्व भी आपराधिक व्यवहार की व्याख्या करने के सन्दर्भ में सामान्य शारीरिक बनावट तथा शारीरिक गठन की ओर यथेष्ठ रूप में ध्यानाकर्षित किया गया था। जर्मनी अर्नेस्ट क्रेश्चमर ने मनोवैज्ञानिक विकार तथा सामान्य व्यक्तित्व के संबंध में शारीरिक गठन के वर्गीकरण को विकसित किया था। उन्होंने शारीरिक बनावट के निम्नलिखित पांच प्रकारों का उल्लेख किया।

1. ऐसथेनिक (Asthenic)-जिनका शारीरिक गठन पतला, तंग कंधे, पतली लम्बी बाँहें, लम्बा दुबला वक्ष तथा पेट और कोणात्मक चेहरा होता है।
2. ऐथेलेटिक (Athletic)-जिनका अस्थि गठन चौड़ा और विकसित, सबल कंधे, पुष्ट वक्ष, धड़ तथा पैर नपे तुले, छोटी नासिका और उन्नत जबड़ा आदि होता है।
3. पिकनिक (Pyknic)- जिनका धंसा वक्ष, बढ़ा हुआ उदर, स्निग्ध अवयव और गोल कंधे होते हैं।
4. डिसप्लास्टिक (Dysplastic)- जिनके अवयवों में एकरूपता नहीं होती है।
5. मिश्रित प्रकार (Mixed Type)- जिनके शारीरिक गठन की विशेषताएँ एक निश्चित प्रकार की नहीं होती, बल्कि मिश्रित होती हैं।

क्रेश्चमर ने इन शारीरिक विशेषताओं को मनोवैज्ञानिक विकार तथा व्यक्तित्व वर्गीकरणों से मिलाया और पाया कि पिकनिक कोटि के व्यक्ति में मानसिक ह्रास होता है। अपराधियों के अध्ययन में यद्यपि क्रेश्चमर के वर्गीकरण का प्रयोग करने के प्रयास किए गए, किन्तु उनके शारीरिक गठन तथा आपराधिक व्यवहार के मध्य कोई सह-सम्बन्ध नहीं पाया गया।

क्रेश्चमर के पूर्ववर्ती कार्यों का अनुसरण करते हुए तथा शायद समानान्तर रूप से शेल्डन तथा उनके सहयोगियों ने अपनी प्रथम पुस्तक वेराइटीज ऑफ ह्यूमन फिजीक में शारीरिक गठन की भिन्नता के आधार पर व्यक्तियों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया-

(1) एण्डोमॉफिक (Endomorphic)- इस श्रेणी में सम्मिलित किये जाने

वाले व्यक्तियों की शारीरिक बनावट गोलाकार होती है, छोटे पतले अंग होते हैं, मुलायम चिकनी मखमली त्वचा होती है।

(2) मेसोमार्फिक (Mesomorphic)- इस श्रेणी में समाविष्ट किये जाने वाले व्यक्तियों का शारीरिक गठन मांसल युक्त अस्थियाँ एवं शिराएँ मजबूत, स्कंध बड़ा, वक्षस्थल चौड़ा, कलाइयाँ और हाथ भारी तथा शरीर शक्तिशाली होता है।

(3) एक्टोमॉर्फिक (Ectomorphic)- इस श्रेणी के अन्तर्गत अन्तर्विष्ट किये जाने वाले व्यक्तिों की शारीरिक संरचना कोमल अस्थियों से युक्त होती है। ये व्यक्ति लम्बे आकार के होते हैं। इनका स्कंध झुका हुआ होता है सुस्पष्ट दिखाई पड़ने वाली पसलियाँ होती है। छोटा चेहरा, नोकदार नाक एवं पतले बाल होते हैं तथा ये व्यक्ति सम्पूर्ण शारीरिक बनावट के आधार पर दुर्बल होते हैं।

पुनः शेल्डन के अनुसार शारीरिक गठन के तीन प्रकारों के अपने अंगभूत स्वभाव होते हैं, जो निम्नलिखित हैं-

(1) विसिरोटॉनिक (Viscerotonic)- इस स्वभाव से युक्त व्यक्ति सामान्यतः सुविधापूर्ण, आरामदेह, सुखद तथा विलासी वातावरण पसंद करते हैं। ऐसे व्यक्ति बहिर्मुखी होते हैं।

(2) सोमोटोटॉनिक (Somototonic)- इस स्वभाव से युक्त व्यक्ति, कार्यशील, गतिशील, निश्चयात्मक, सिद्धान्ती, साहसी एवं उत्साही होते हैं तथा इनका व्यवहार आक्रामक होता है और इनको प्रभुत्व एवं आधिपत्य जमाने से बहुत प्रेम होता है।

(3) सेरिब्रोटानिक (Cerebrotonic)- इस स्वभाव वाले व्यक्ति अन्तर्मुखी, संवेदनशील, एकान्तप्रिय होते हैं तथा एलर्जी, चर्मरोग, थकान, अनिद्रा से ग्रसित होते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति शांतिपूर्ण वातावरण पसंद करते हैं और भीड़-भाड़पूर्ण माहौल से दूर भागते हैं।

शेल्डन तथा उनके सहयोगियों ने अपने प्रारंभिक विचारों का विवेचन शीघ्र ही प्रकाशित अपनी एक दूसरी पुस्तक "वेराइटीज ऑफ टेम्परामेंट" में भी किया है। इस पुस्तक में दक्षिण बोस्टन के एक सामाजिक केन्द्र 'हायडेन गुडविल सराय' में 200 अपराधी युवकों के जीवन-निर्वाह तथा साहसिक कार्यों का सजीव तथा बड़े मनोरंजक ढंग से वर्णन किया गया है। इस अध्ययन का काल 7 वर्षों तक अर्थात् 1939 से 1946 रहा है। लेखक का प्रमेय व सिद्धान्त है कि व्यवहार, शरीर संरचना का एक प्रकार्य है तथा सावधानीपूर्वक शारीरिक मापन द्वारा एवं निर्वचन के आधार पर व्यक्ति के व्यवहार के सम्बन्ध में यथार्थ रूप से भविष्यवाणी की जा सकती है। उन्होंने यह

निष्कर्ष निकाला कि अपराधियों के अपने शारीरिक गठन तथा अपने स्वभावगत तथा मनोरोग, प्रकारों में भिन्न होते हैं। उन्होंने यह भी माना है कि हीनता की दिशा में ये अन्तर भिन्न होते हैं तथा हीनता वंशागत होती है।

अपराध का अन्तःस्रावी ग्रन्थीय सिद्धान्त (Endocrinological Theory of Crime)

अपराध के शरीरिक संरचना के सिद्धान्त के अन्तर्गत हमें निश्चित रूप से ग्रन्थीय उपागम से परिचित होना भी परमावश्यक है। ग्रन्थीय उपागम के प्रवर्तकों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया था कि अन्तःस्रावी अथवा नाड़ी रहित ग्रन्थियाँ (जिनका रस सीधे लहू में जा मिलता है) व्यक्तित्व तथा आपराधिक कारणत्व का संकेत करती हैं।यदि ग्रन्थियाँ अस्वाभाविक, अप्राकृतिक रूप से कार्य करती हैं, तब व्यक्ति की भावनात्मकता, मानसिकता तथा अन्य क्षमता में विचलन आ पड़ते हैं। आन्तरिक रसों से भावनाएँ प्रभावित तथा संचालित होती हैं और शरीर के सभी अवयवों पर इनका प्रभाव पड़ता है, विशेषतः मस्तिष्क तथा तंतु विधान पर थाइरॉक्सिन पाराथाइरिन, एड्रेनेलिन, कोर्टिन, एस्ट्रोजिन तथा एंड्रोजिन इन सभी ग्रन्थियों के सरस्राव मस्तिष्क पर प्रभाव डालते हैं और मनुष्य के व्यवहार व आचरण को गति प्रदान करते हैं।

सन् 1921 में लूईस वेर्मैन ने यह बताया कि व्यक्ति के विभिन्न प्रतिरूप ग्रन्थियों के प्रभावानुसार निर्धारित किए ज़ा सकते हैं। इनके अनुसार इनके छः विभाजन हैं-

1. उत्तरदायित्वविहीन तथा अपराधशील, थाइमोसेंट्रिक।
2. आवेगशील, थाइराइड।
3. मंदबुद्धिवाला और क्षण में क्रुद्ध हो जाने वाल, एड्रिनल।
4. पुरूषत्व में अधिक सामर्थ्यवान या स्त्रीत्व से प्रधान, पिट्यूटिरी।
5. पुरूषत्व में अत्यन्त क्षीण, गोनामेसेंट्रिक।

इन प्रतिरूपों में रसों का सम्मिश्रण रहता है, किसी एक ही का प्राधान्य नहीं रहता। परन्तु जब एक की प्रधानता रहती है तब उससे सम्बन्धित गुण विकसित होकर व्यवहार या आचरण निर्धारित करते हैं। इस प्रकार बेर्मन ने अपराध के कारण के रूप में अन्तःस्रावी ग्रन्थियों को निर्धारक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

अपराध का आनुवंशिक सिद्धान्त (Genetic Theory of Crime)

अपराध की जैविकीय चिंतनधारा की यह मान्यता रही है कि आपराधिक व्यवहार अपराधी के आनुवंशिक विरासत द्वारा निर्धारित होते हैं अथवा निश्चित रूप से

प्रभावित होते हैं। यह वंशागत कारक एक समूह के सभी सदस्यों के लिए सामान्य हैं, अथवा आनुवंशिक रूप से केवल अपने दोषपूर्ण सदस्यों तक ही परिसीमित होता है, निर्धारक तत्व जनन-द्रव्य से आनुवंशिक रूप से दोषपूर्ण वंश से हस्तान्तरित होते रहते हैं। इस दृष्टिकोण के महत्वपूर्ण परिणाम हैं। यदि अपराधिता निर्धारित करने वाले कारक नये गर्भ-धारण करने वाले भ्रूण में विरासत द्वारा विद्यमान हैं, तब परवर्ती पर्यावरण के कारकों का प्रभाव अवश्य ही नगण्य होगा। अन्य शब्दों में, आनुवंशिक रूप से दोषपूर्ण व्यक्तियों का अपने उत्तरकालीन अनुभवों में किसी अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद भी अपराधी होना निश्चित होता है।

आनुवंशिक नियतिवाद के तार्किक परिणाम के आधार पर किसी प्रकार का तर्कसंगत निर्णय नहीं किया जा सकता। समान वंशागत पृष्ठभूमि पर व्यक्तियों में आनुवंशिक अपराधिता को प्रमाणित करने के लिए यह दिखाना आवश्यक है कि पर्यावरण की दशाएँ भिन्न रही हैं। जब तक यह सिद्ध नहीं किया जाता तब तक यह निष्कर्ष निकालना सम्भव नहीं है कि परिणाम समान आनुवंशिक कारकों की अपेक्षा समान पर्यावरण के अनुभवों का फल है। इसके विपरीत जहाँ आनुवंशिक पृष्ठभूमि भिन्न है तथा पर्यावरण की दशाएं समान है, समाज के परिणाम सिद्धान्त पर सन्देह उत्पन्न करते हैं।

इस प्रकार अपराधिता के सन्दर्भ में नियतिवाद तथा पर्यावरण के सिद्धान्तों के बीच आनुवंशिकता तथा पर्यावरण के सापेक्ष महत्व को लेकर बढ़ा विवाद हुआ है। दोनों सम्प्रदायों ने अपने-अपने मत की पुष्टि के लिए परीक्षणों का आधार लिया है। दोनों सम्प्रदायों के विवाद का समाधान कने के सन्दर्भ में कुछ वैज्ञानिकों तथा समाजशास्त्रियों ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि अपराधिता के विकास में आनुवंशिकता एवं पर्यावरण दोनों की ही अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है।

क्या अपराधिता आनुवंशिक है? इस प्रश्न का उत्तर देने के प्रयास में पांच विधियों का प्रयोग किया गया है। वे विधियां निम्नलिखित हैं-

1. "बर्बर या असभ्य" (Savage) से अपराधियों की तुलना 2. वंश वृक्ष (Family trees) 3. वंशवृक्षों में मेंडेलियन अनुपात 4. माता-पिता तथा इनकी संतानों के अपराधों के मध्य सांख्यिकी, और 5. समरूप तथा भ्रात्रीय जुड़वा बच्चों की तुलना।

लोम्ब्रोसो तथा उनके अनुयायियों ने अपराधिता की वंशागति के अध्ययन में विधि रूप में अपराधियों तथा "बर्बरों" की तुलनाओं का प्रयोग किया था। वे प्रारंभिक अपराधी को जन्मजात अपराधी मानते थे तथा इसको पूर्वजता अथवा निम्नतर पाशविक

तथा बर्बर जीवन पर आरोपित किया। उनका मुख्य प्रमाण कि अपराधिता पूर्वजानुरूप होती है, बर्बर जीवन पर आरोपित किया। उनका मुख्य प्रमाण कि अपराधिता पूर्वजानुरूप होती है, बर्बर अपराधी के सादृश्य था, किन्तु बर्बर की विशेषताएं पूर्वजानुरूप होती है, बर्बर अपराधी के सादृश्य था, किन्तु बर्बर की विशेषताएं काल्पनिक थीं न कि विश्वसनीय विधियों द्वारा निर्धारित परिणाम यह हुआ कि लोम्ब्रोसो के पास अपराधिता की वंशागति का कोई महत्वपूर्ण प्रमाण अथवा व्याख्या नहीं थी।

वंशवृक्षों का व्यापक प्रयोग कुछ विद्वानों द्वारा यह प्रमाणित करने के प्रयास में किया गया कि अपराधिता वंशगत हैं। शायद इस प्रकार के अध्ययनों में अत्यधिक प्रसिद्ध डूग्डेल तथा इस्टबूक द्वारा ज्यूक्स परिवार का किया गया अध्ययन है, जिन्होंने यह सूचित किया है कि इस परिवार के लगभग 1200 सदस्यों में से 140 अपराधी थे, सात (नर) हत्या, 60 चोर तथा वेश्यावृत्ति के अपराधी। ज्यूक्स परिवार की तुलना जोनाथन एडवर्ड, जो ओपनिवेशित काल में एक प्रसिद्ध धर्मोपदेशक थे, के वंशजों से की गईं उसके पास भी वंशज अपराधी नहीं पाये गये, जबकि संयुक्त राज्य के अनेक राष्ट्रपति, राज्यों के राजयपाल, उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के सदस्य तथा प्रसिद्ध लेखक, धर्मोपदेशक और शिक्षक थे।

इस तुलना के बारे में विशिष्ट कठिनाई यह है कि जोनाथन एडवर्ड के कुछ पूर्वजों के पास आपराधिक प्रलेख थे, जैसे उनकी मातृ दादी (Maternal grand mother) को परपुरूष गमन के आधार पर तलाक दिया गया था, उनकी बड़ी चाची (Grand aunt) ने अपने पुत्र की हत्या की तथा उनके बड़े चाचा (Grand uncle) ने स्वयं अपनी बहन की हत्या की थी। यदि अपराधिता वंशागत होती हो जानाथन एडवर्ड तथा उनके अनेक पूर्वजों को अपराधी होना चाहिए था। वंशवृक्षों के अध्ययन निष्कर्ष के विरूद्ध अधिक सामान्य तर्क यह है कि वह क्रमिक पीढ़ियों में प्रकट होने वाले केवल उस लक्षण को दिखाता है जो क्रमिक पीढ़ियों में प्रकट होते हैं, इससे यह प्रमाणित नहीं होता है कि वह लक्षण वंशागत है। खाने में कांटा का प्रयोगकाल अनेक पीढ़ियों से अधिकांश परिवार का लक्षण रहा है। किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि कांटा का प्रयोग करने की प्रवृत्ति वंशागत हैं ज्यूक्स परिवार का प्रत्येक बालक पर्यावरण एवं साथ ही आनुवंशिकता के प्रभाव का विषय रहा है तथा इस परिवार में पर्यावरण सामान्यतः अपराध का प्रेरक तत्व था। डाहलस्ट्रोम ने चार पीढ़ियों से एक आपराधिक परिवार के छः बच्चों को सात वर्ष की आयु से पूर्व अलग रखकर दिखाया कि ये समस्त समाज के आदरणीय सदस्यों के रूप में पुष्पित हुए और दो जो सात वर्ष की आयु के उपरान्त पृथक कर दिये गये थे वे अपराधी हो गए।

कार्ल रथ ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि कि अपराधिता ने केवल

क्रमिक पीढ़ियों से ही प्रकट होती है प्रत्युत यह प्रत्याशित मेंडोलियन अनुपात के अनुसार भी प्रकट होती है। कार्ल रथ ने जर्मनी के सीवर्ग (Serburg) में पारिवारिक इतिहासों के अध्ययन में इन परिवारों की संतानों को अपराधी पाया। डूग्डेल, इस्टबूक तथा अन्यों द्वारा अन्वेशित परिवारों में अपराधिता मेंडेलियन (Mendelian) अनुपातों के सादृश्य नहीं दिखाई गई थी। रथ के विश्लेषण में यह दोष है कि चूंकि अपराधिता को मेडलीय सिद्धान्त सम्बन्धी लक्षण से युक्त मान लिया गया है, एक पूर्वज का लक्षण केवल पूर्वानुमान द्वारा निर्धारित किया जा सकता है। संतान की अपराधिता से माता-पिता की प्रकृति निर्धारित करने में प्रयुक्त किया गया है तथा माता-पिता की प्रकृति को सन्तान की अपराधिता की व्याख्या में प्रयुक्त किया गया है। इस प्रकार के अध्ययनों में एक आवश्यक दोष है, क्योंकि मानव प्राणियों के प्रजनन का एक पर्याप्त कालावधि एक नियन्त्रण करना तथा यह निर्धारित करना कि व्यक्ति विशेष को भी पौधों तथा कीड़ों के समान नियन्त्रित किया जा सकता है, सम्भव नहीं है।

आनुवंशिकता तथा अपराध के सम्बन्ध के सन्दर्भ में निष्कर्ष के रूप में दो स्वीकारात्मक कथन एवं एक अस्वीकारात्मक कथन प्रस्तुत किए जा सकते हैं। प्रथमतः मानव प्राणियों में कुछ वंशागत लक्षण होते हैं जो उन्हें मानव प्राणियों के समान व्यवहार या आचरण करना संभव बनाते हैं। किन्तु यह सत्य यद्यपि समयक रूप से यह स्पष्ट नहीं कर पाता है कि क्यों कुछ ही मानव प्राणी अपराध करते हैं तथा अन्य नहीं करते हैं। द्वितीयतः कुछ वंशागत विशेषताएं आपराधिक व्यवहार से इस तथ्यगत आधार पर महत्वपूर्ण रूप से सम्बन्धित हो सकती हैं कि एक समाज के सदस्य एक निश्चित रूप में उनके प्रति प्रतिक्रिया करना सीखे होते हैं। संयुक्त राज्यों में नीग्रो की त्वचा के रंग के प्रति एक निश्चित रूप में प्रतिक्रिया की जाती है तथा अपराध की दर नीग्रों में अधिक है। किन्तु इस कथन के आधार पर आपराधिक व्यवहार की सम्यक् व्याख्या नहीं की जा सकती क्योंकि गैर-वंशागत लक्षणों के प्रति भी महत्वपूर्ण रूप में प्रतिक्रिया हो सकती है तथा ये लक्षण आपराधिक व्यवहार से उसी प्रकार से संयुक्त हो सकते हैं। तृतीय कथन यह है कि पूर्व उल्लेखित दोनों अभिप्रायों के अतिरिक्त आपराधिक व्यवहार के साथ आनुवंशिकता का कोई साहचर्य प्रमाणित नहीं होता है। अपराधिता को वंशागत रूप में प्रमाणित करना अस्पष्ट रूप से असंभव है, क्योंकि अपराध विधायिका के अधिनियमों द्वारा परिभाषित होता है तथा यह कानून के उल्लंघनों की जैविकीय वंशागति से पूर्णतया स्वतंत्र होता है। यदि कुछ वंशागत लक्षणों से संयुक्त व्यक्ति अन्य वंशागत लक्षणों से संयुक्त व्यक्तियों की अपेक्षा अपराध अधिक करते हैं, तब भी इन लक्षणों का तादात्म्य स्थापित नहीं किया गया है तथा आपराधिक व्यवहार के साथ उनका संबंध प्रमाणित नहीं किया गया हैं। उन लोगों के अतिरिक्त पूर्व दोनों कथनों के अभिप्रायों के संदर्भ में जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपराधिता की वंशागति का समर्थन करते हैं, अपने पूर्व-

धारणाओं तथा पूर्वानुमानों के आधार पर उनका समर्थन करते हैं न कि यथार्थ प्रमाणों के आधार पर। आश्ले-मांटेगू का यह उद्धरणीय है कि किसी भी व्यक्ति में आपराधिक कार्य करने की प्रवृत्ति आनुवंशिकता द्वारा हस्तांतरित नहीं होती है। अपराध एक सामाजिक दशा है न कि जैविकीय दशा। आश्ले-मांटेगू यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि जुड़वों के आपराधिक व्यवहार के इन अध्ययनों में पर्यावरण के कारकों को वस्तुतः छोड़ दिया गया है।

भौगोलिक कारकों की परिभाषा (Definition of Geographical Factors)

इससे पहले कि हम अपराध पर भौगोलिक पर्यावरण के विभिन्न प्रभावों का अध्ययन करें यह आवश्यक है कि हम भौगोलिक पर्यावरण के अर्थों को निश्चित कर लें।

भौगोलिक पर्यावरण में वे सभी सांसारिक अवस्थाएँ तथा प्रघटनाएँ सम्मिलित हैं जिनका मनुष्य के क्रियाकलाप से कोई सम्बन्ध नहीं होता है और जो मनुष्य की उपस्थिति और क्रिया से स्वतन्त्र अपने आप सहज रूप से परिवर्तित होती है। दूसरे शब्दों में यदि हम मनुष्य के अथवा किसी सामाजिक समूह के पर्यावरण को लें और उसमें से उन सभी साधनों को निकाल दें जिन्हें मनुष्य ने बनाया या परिवर्तित किया है, तो हमारे पास मोटे तौर पर जो बच जाता है, वही भौगोलिक पर्यावरण है। प्राकृतिक जलवायु, तापक्रम, जमीन, भूतल की बनावट, जल का वितरण और उसकी दिशाएँ, प्राकृतिक परिवर्तन, गुरूत्वाकर्षण, भूकम्प, तूफान, समुद्र जहाँ तक वे मनुष्य के बिना प्रयत्न के रहते और बदलते रहते हैं ऐसी वस्तुएँ और प्रघटनाएँ भौगोलिक पर्यावरण है। इससे विपरीत, वे समस्त अवस्थाएँ और प्रघटनाएँ जिनकी उपस्थिति और परिवर्तन प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में किसी भी प्रकार मनुष्य की उपस्थिति और क्रिया के परिणाम हैं मानवीय सामाजिक साधन हैं, भौगोलिक पर्यावरण नहीं। बोये हुए खेत, लगाये हुए जंगल या बगीचे, कृत्रिम नहरें या कुएँ, भूमितल के कृत्रिम रूपान्तर अथवा कृत्रिम जलवायु ऐसी सभी वस्तुएँ भौगोलिक पर्यावरण से अलग हैं और उन्हें हम सही अर्थों में प्राकृतिक साधन नहीं कह सकते।

मांटेस्क्यू, डिग्यूरी, क्वेटलेट, ओटिंगेन लेवास्युर, लोम्ब्रोसा, इ, फेरी, लेफिंग बेल, बी, फोल्डस, एच, कुरेला, लैकासाग्ने, जेन्ट्स्क आस्फेनबर्ग, डेक्सटर, पी. गैडकेन, क्रोपोटकिन आदि लेखकों ने अपने कार्यों में भौगोलिक दशाओं एवं आपराधिकता के बीच एक सहसम्बन्ध स्थापित किया है।

3.3 अपराध के भौगोलिक सिद्धान्त

नैतिक तथा आपराधिक सांख्यिकी के प्रारम्भिक दिनों से ही अनेक अनुसंधानकर्त्ताओं

ने अपराधिकता पर भौगोलिक दशाओं, विशेषकर जलवायु और मौसम के प्रभाव को दर्शाने का प्रयास किया है। इन अनुसंधानकर्त्ताओं ने विभिन्न भौगोलिक पदनामों जैसे- प्राकृतिक, ब्रह्माण्डिक एवं स्थलमण्डलीय कारकों के अन्तर्गत विशेषकर जलवायु, मौसम, ताप क्रम, रोशनी और वायुमण्डल, पृथ्वी से विकिरणों और मानवप्राणी में नियतकालिक उतार-चढ़ावों को मानव व्यवहारों की असामान्यताओं एवं विशेषकर आपाधिकता के प्रत्यक्ष कारणों के रूप में उल्लेख किया है।

जलवायु विषयक तथा मौसमी दशाएँ एवं अपराध

मांटेस्क्यू (Montesquieu) ने अपने कार्य स्प्राइट ऑफ लाज (Sprite of Law) में यह दर्शाया है कि जैसे-जैसे हम ध्रुव रेखा की ओर बढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे मदोन्मत्तता भी बढ़ती जाती है। क्वेटलेट (Quetelet) ग्यूरी (M.D. Guery) तथा वान वेटिंगेन ने जलवायु तथा विभिन्न प्रकार के अपराधों के बीच एक सहसम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है। उनका मत है व्यक्तियों तथा सम्पत्ति के विरुद्ध किए गए अपराधों में जलवायु विषयक परिवर्तन देखा जा सकता है जो कि निर्विवाद रूप से अपराधों पर जलवायु के प्रभाव को सूचित करता है। क्वेटलेट, जिन्हें सांख्यिकी का जनक कहा जाता है, ने यह दावा किया कि उष्ण (गरम) जलवायु वाले क्षेत्रों में व्यक्ति के विरुद्ध अपराध अधिक अधिक होते हैं, अर्थात चोरी, डकैती तथा राहजनी से सम्बन्धित क्राइम (Thermic Law of Crime) के नाम से सम्बोधित किया है। क्वेटलेट की धारणा का समर्थन मायोस्मिथ (Mayo-Smith) ने अपने कार्य स्टेटेसटिक्स एण्ड सोसियोलॉजी (Statistics and Sociology) में किया है। ग्यूरी ने 1825 और 1830 के मध्य फ्रांस में व्यक्ति के विरूद्ध किये गए प्रत्येक 100 अपराध के पीछे सम्पत्ति सम्बन्धी 48.8 अपराध मिलते हैं, जबकि उत्तरी फ्रांस में व्यक्तियों के विरुद्ध किए गए प्रत्येक 100 अपराधों के पीछे सम्पत्ति-सम्बन्धी 181.5 अपराध मिलते हैं।

अन्य विद्वानों जैसे इटली के लोम्ब्रोसो एवं फेरी तथा जर्मनी के आस्कफेनबर्ग ने भी अपने-अपने देशों में अपने-अपने अध्ययन परिणामों के आधार पर दक्षिण के विरूद्ध उत्तर, उष्ण के विरूद्ध ठण्ड का समर्थन किया।

फ्रांस में लैकासाग्ने ने 1825 और 1880 के मध्य अपराधियों के विश्लेषण में यह पाया कि सम्पत्ति सम्बन्धी अपराध की सबसे अधिक आवृत्ति दिसम्बर महीने में और उसके उपरान्त जनवरी, नवम्बर और फरवरी तत्पश्चात् अक्टूबर तथा मार्च में मिलती है।

पोलगेडकेन ने डेनमार्क में अपराध के कारण के रूप में तापमान की अपेक्षा प्रकाश को एक अधिक महत्वपूर्ण कारक माना है। अनेक पर्यवेक्षणों के आधार पर वहाँ यह मान लिया गया है कि रासायनिक क्रियात्मक प्रकाश किरणें हिंसात्मक, लैंगिक तथा

आत्महत्या से संबंधित अपराधों में होने वाले उत्तर-चढ़ावों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है।

डिग्यूरी, लैगाट, ए वागनर, एल, बोडिओ, ए. लेफिंगवेत्थ मोरसेली, क्रोसे, गैडकेन, डेक्स्टर, जी.वान. मायर इत्यादि अनेक यूरोपीय लेखकों ने कुछ यूरोपीय तथा गैर-यूरोपीय देशों में होने वाली आत्महत्याओं में एक निश्चित मौसमी उतार-चढ़ाव पाया हैं गर्मी के मौसम में यूरोप में अधिक आत्महत्याएँ होती हैं। इसमें भी सबसे अधिक मई-जून में होती है, इसके बाद बसन्त ऋतु का नम्बर आता है और उसके बाद पतझड़ का। जाड़ों में सबसे कम आत्महत्याएँ होती हैं। इन अध्ययनों से यह भी जाहिर हुआ है कि आत्महत्याओं में दैनिक अवधि क्रम भी है। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी दिखाया हैं कि यूरोप में अक्षांश रेखा के अनुसार आत्महत्याओं के वितरण में भी एक नियमितता पाई जाती हैं। उदाहरणस्वरूप, उस अक्षांश रेखा से 55 प्रतिशत अक्षांश रेखा तक आत्महत्याओं की संख्या बराबर बढ़ती चली जाती है। 55 अक्षांश रेखा के बाद वह पुनः कम होती जाती है।

अपराध का पारिस्थितिक सिद्धान्त

सामाजिक पारिस्थितिकी के सम्प्रत्ययात्मक ढाँचों की मान्यता है कि मनुष्य एक जैविक प्राणी है और इसलिए वह जैविक संसार के सामान्य विधि के अनुसार व्यवहार करता है। मानवीय पारिस्थितिकी लोगों एवं उनके स्थानिक पर्यावरण तथा उनके विविध पर्यावरणीय दबावों एवं तनावों की विविध प्रतिक्रियाओं के सम्बन्धों पर विचार करती है।

पारिस्थितिकी सिद्धान्त के अन्तर्गत मनुष्यों तथा संस्थाओं के व्यवहार-प्रतिमानों पर स्थानिक वितरण के प्रभावों को दर्शाया गया है। पारिस्थितिकी पद के अन्तर्गत मानव सम्बन्धों के उस अध्ययन को सम्मिलित किया जाता है जिसमें सामाजिक जीवन के सांस्कृतिक पक्ष समाविष्ट नहीं होते हैं। पारिस्थितिकी का सम्बन्ध मनुष्यों के जीवीय समूहों से होता है, विशेषकर उनका जो प्रवसन, प्रतियोगिता तथा श्रम-विभाजन के परिणाम हैं। पारिस्थितिकीवेत्ता अपराध के स्थानिक वितरण का अन्य सामाजिक प्रघटनाओं से तुलना करने के लिए बिन्दु मानचित्रों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार पारिस्थितिकी उपागम के अन्तर्गत क्षेत्रीय सामाजिक दशाओं के प्रकारों का अध्ययन किया जाता है जहाँ अपराध संकेन्द्रित होता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक अपराध की पारिस्थितिकीय व्याख्या अत्यन्त प्रचलित रही, किन्तु सन् 1945 ई0 के पश्चात् इसका प्रभाव क्षीण पड़ गया। यद्यपि बार्न्स एवं टीटर्स, टैफ्ट तथा टप्पन आदि के विश्लेषण ध्यातव्य है तथापि इस सिद्धान्त का प्रभुत्व अब जाता रहा है। किन्तु जिन पक्षों का इस सिद्धान्त द्वारा उल्लेख किया गया

है, वे अवश्य विवेचनीय है तथा अपराधिता की प्रघटनाओं पर प्रकाश डालने में सहायक भी है। पारिस्थितिकी सिद्धान्त के अनुयायियों में राबर्ट ई. पार्क, अर्नेस्ट डब्ल्यू वर्गेस तथा राडेरिक डी मैकेन्जी एवं डरिक थ्रेसर और क्लीफार्ड शा इत्यादि विद्वानों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रोफेसर राबर्ट ई. पार्क जो शिकागो, विश्वविद्यालय के एक मूर्धन्य समाजशास्त्री रहे हैं, ने समुदाय को अपने अनुसंधान की इकाई के रूप में स्वीकार किया। यद्यपि उन्होंने समुदाय को पारिस्थितिकी परिसीमा में बद्ध कर दिया था, तथापि यह एक अत्यन्त विस्तृत विषय है तथा निश्चय ही पौध जगत से सादृश्य स्थापित करने की परिसीमाएँ हैं। किन्तु इस सामान्य प्रमेय के परिणामस्वरूप अनेक प्रतिभाशाली अध्ययनों का विकास हुआ है जिनका समाजशास्त्रीय तथा सामाजिक अनुसंधान में विशेष महत्व है।

पार्क, बर्गेस तथा मैकेन्जी के पारिस्थितिकीय अन्वेषणों से प्रभावित होकर इस युग के जिन अपराधशास्त्रियों व समाजशास्त्रियों ने अपराध तथा बाल-अपराध का कारण पारिस्थितिकी दशाओं में ढूँढ़ने का प्रयास किया है, उनमें फ्रेडरिक थ्रेसर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। थ्रेसर ने शिकागों में 3313 गिरोहों (Gangs) के अध्ययन में यह दर्शाया है कि गिरोह एक ऐसी प्रघटना है जो बड़े-बड़े नगों के उपेक्षित व निर्धन तथा अभावग्रस्त (Poverty Belt) क्षेत्रों में रहने वाले किशोरों व युवकों की प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट होती है। इस क्षेत्र की तीन विशेषताएँ हैं : विकृत पड़ोस, अधिक गतिशीलता और स्थानान्तरणीय जनसंख्या। इन क्षेत्रों में रहने वाले युवक सामान्य अधिकारों तथा सुविधाओं से वंचित रहते हैं। गलियों तथा नुक्कड़ों पर समय व्यतीत करने वाले किशोर आपस में मत साम्य स्थापित कर लेते हैं। यह मत साम्य किसी विरोधी समूह से मुठभेड़ करने अथवा होड़ लेने के लिए ही घठित होता है। अपेक्षाओं की पूर्ति में इसका समन्वय हो जाता है और इनका नेतृत्व भी उभर जाता है। सामान्यतः किशोर गिरोहों के सादृश्य इन क्षेत्रों या समाजों के अन्य किशोरों से भावात्मक तथा सामाजिक दृष्टियों में विभिन्न नहीं होता है, परन्तु जैसा थ्रेसर ने कहा है ये अपने लिए एक समाज का निर्माण कर लेते हैं जो समाज इनके लिए सामान्यतः पहले से स्थित नहीं होता है। इनके अभियान के क्षेत्र निश्चित होते हैं। किशोरों के गिरोहों का एक नेतृत्वविहीन स्वरूप भी ध्यातव्य है जिसकी ओर भी आधुनिक अपराधशास्त्रियों ने ध्यान आकृष्ट किया है। इन गिरोहों का मुख्य लक्ष्य हिंसाएँ करना ही होता है। ये अत्यन्त उग्र होते हैं। स्वतन्त्र हिंसक अपराधियों तथा गिरोह हिंसक अपराधियों में घोर अन्तर होता है। ये मेलों तथा उत्सवों में उपस्थित होकर या अनाधिकार प्रवेश कर भीषण उत्पात मचाते हैं।

थ्रेसर के अनुसार शिकागो नगर में गिरोहों का केद्रीय परिपथ क्षेत्र (Central loop District) विकिरणकारी रूप में कारखानों के साध्य प्रकाश (Twilight) तथा

रेलपथों के क्षेत्र में संकेन्द्रित पाये गये हैं। उनके अनुसार "गिरोह स्थान परिपथ तथा आवासीय क्षेत्रों में एवं अन्य मध्य-स्थितियों में एक भौगोलिक और सामाजिक अन्तराली (Interstitial) क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि ग्रामीण गिरोह प्रायः सामाजिक समस्या उत्पन्न नहीं करते हैं तथा सभी नगरीय गिरोह भी अपराधी नहीं होते हैं। किन्तु अधिकांश गिरोहों के पास अपराधों के लिए प्रतिशक्षण विद्यालय होते हैं। उनका अनुसंधान यद्यपि प्राथमिक रूप से अपराध से सम्बन्धित नहीं था, किन्तु क्षेत्रों के प्राकृतिक इतिहास, जो अपराध के आवास एवं संवर्धन गृह हैं, के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण योगदान दिया, क्योंकि उन्होनें अपने अध्ययन में इन क्षेत्रों के स्थान निर्धारण की विशेषताओं का उल्लेख किया है। इस सम्बन्ध में संक्रान्तिक (Transitional) सम्प्रत्यय अथवा अन्तराली क्षेत्र बहुत महत्वपूर्ण था, क्योंकि इससे स्पष्ट हुआ कि अपराध की उत्पत्ति सभ्यता तथा प्रतिष्ठित किनारों (Edges) पर तथा उन समुदायों में होती है जो सामान्य दशाओं में अपूर्ण रूप से समायोजित होते हैं। थ्रेसर के कार्य को आधार मानकर महानगरीय क्षेत्रों में उभरते हुए युवा किशोर गिरोहों का अध्ययन आज भी किया जा सकता है।

क्लिफोर्ड आर शा और सहयोगियों ने अपराध क्षेत्रवाद का प्रबल समर्थन किया है, जिसका विस्तृत वर्णन उन्होंने अपनी पुस्तक "डेलिक्वेन्सी एरिया' में किया है। पारिस्थितिकी सिद्धान्त के आधार पर शिकागो नगर के अध्ययन में उन्हें इस प्रकार के तथ्य प्राप्त हुए हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि नगरों में हो रहे सतत् विकास के कारण कुछ ऐसे क्षेत्र भी बन जाते हैं जहां अपराधिकता का उद्भवन और संवर्धन होता है। अपराध की घटनाएँ नगर के केन्द्रीय क्षेत्रों में अधिक पाई जाती हैं क्योंकि वहाँ पर जनसंख्या का घनत्व अधिक होता है वहीं से नगर का व्यापारिक जीवन नियंत्रित होता है। इसके अतिरिक्त नगर के केन्द्रीय क्षेत्र से जैसे-जैसे दूर चलते हैं अपराधों की दर क्रमशः कम होती जाती है तथा इसके विपरीत जैसे-जैसे नगर के सीमावर्ती क्षेत्र से केन्द्रीय क्षेत्र की ओर जाते हैं, अपराधों की दर बढ़ती जाती है।

शा तथा उनके सहयोगियों ने यह दर्शाया कि पूर्व-अपराध के व्यवहार-लक्षण, अभ्यासगत् आवारापन, आरम्भिक अपराध इत्यादि निश्चित सुपरिणाम क्षेत्रों में गुच्छेदार अथवा संकेन्द्रित होते हैं। इस प्रकार अपराध की उच्चतम दर प्रायः घने एवं विघटित नगरीय क्षेत्रों जो केन्द्रीय व्यापार तथा गोदाम क्षेत्रों के निकटस्थ होते हैं, में पाई जाती है एवं न्यूनतम दर दूरस्थ अपनगरीय (Suburban) तथा आवासीय क्षेत्रों में पाई जाती है। अपने अध्ययन हेतु शा तथा उनके सहयोगियों ने सम्पूर्ण शिकागो नगर को नौ संकेन्द्रित अंचलों में विभाजित करके यह पाया था कि सभी प्रकार के अपराधी घनी आबादी वाले क्षेत्र के निकट के भाग में सबसे बड़ी संख्या में रहते हैं। इस प्रकार नगर

के केन्द्रीय भाग और उनके निकटवर्ती भागों में अपराधों की दर उच्चतम होती है। मुख्य वाणिज्य केन्द्र से जुड़े होकर भी नगरों के विकास क्रम में इन क्षेत्रों का पड़ोस सुगठित नहीं रहता है और उनके सांस्कृतिक संस्थान तथा सामाजिक स्तरों में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। पुनः इन क्षेत्रों को उद्योग एवं वाणिज्य भी आच्छादित कर लेते हैं और इनमें सांस्कृतिक एकता नहीं होती है। ये निवासी विभिन्न स्थानों से आकर यहां रहने लगते हैं, इनकी आर्थिक सुरक्षा नहीं रहती है और जिस पड़ोस का सृजन होता है उसमें न तो बच्चों की शिक्षा तथा देख-रेख व्यवस्थित हो पाता है और न ही अपराधशीलता को नियन्त्रित ही किया जा सकता है।

शा तथा उनके सहयोगियों ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि अपराधी क्षेत्रों तथा बात अपराध में एक निश्चित सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त, उन्होंने यह दर्शाया कि अपराध तथा अपराध व्यसन के मध्य एक घनिष्ठ सम्बन्ध है। उन्होंने यह दर्शाया कि वह क्षेत्र जिसमें अपराध की उच्च दर है, वहाँ बाल अपराधियों में अपराध व्यसन का प्रतिशत भी उच्च है।

3.4 अपराध के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

अपराध के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त तीन प्रमुख स्रोतों-मानसिक हीनता, मनोचिकित्सीय तथा मनोविश्लेषणीय अध्ययनों-से उद्भूत हुए हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भिक भाग के दौरान कुछ मानसिक परीक्षक तथा कुछ मनोचिकितसक अपराधियों के अध्ययन में अभिरूचि लेने लगे एवं न्यायालयों के आमन्त्रण पर परीक्षणों एवं चिकित्सकीय परीक्षणों में भाग लेने लगे। मानसिक परीक्षकों का मत था कि प्रायः अधिकांश अपराधी मन्दबुद्धि के होते हैं और उनकी मन्दबुद्धिता पैतृक होती है। मानसिक हीनता अपराध का प्रमुख कारण है क्योंकि मन्दबुद्धिता के कारण व्यक्ति न तो अपने व्यवहार के परिणामों का मूल्यांकन कर सकता है और न ही कानून के अर्थ को समझ सकता है। मनोचिकित्सकों का मत था कि प्रायः सभी अपराधी मनोरोगी होते हैं और जहाँ किसी मनोरोग का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं भी देख पड़े वहाँ भी आपराधिक व्यवहार में इसका पुट ढूँढ़ा जा सकता है। चिकित्सकीय परीक्षणों द्वारा आपराधिक व्यवहार की व्याख्या स्पष्ट की जा सकती है। तत्पश्चात् अन्त में इस क्षेत्र में प्रवेश करने वाले मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने अपराधिता की अपनी व्याख्याओं में मनोविश्लेषणीय सिद्धान्तों के कुछ सूत्रों का प्रयोग किया है। मनोविश्लेषणीय सिद्धान्त एक नहीं अनेक हैं, किन्तु सभी अपराध के कारणत्व में कुछ प्रकार की अचेतन संवेगात्मक समस्याओं पर बल देते है। विवेचानागत अध्ययन की सुगमता हेतु यहाँ हम अपराध के इन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का क्रमशः विवेचन करेंगे।

मानसिक हीनता का सिद्धान्त (Theory of Mental Deficiency)

कुछ लेखकों ने मानसिक हीनता को अपराध की उत्पत्ति का प्रमुख कारण माना है। किन्तु इस सिद्धान्त के बारे में कुछ और विवेचन करने के पूर्व इसका सम्प्रत्यात्मक अवबोध प्राप्त कर लेना समीचीन प्रतीत होता है।

जहाँ तक मानसिक हीनता के तात्पर्य का प्रश्न है, वे बच्चे तथा युवक जिनमें अपर्याप्त बौद्धिक विकास के कारण सीखने की योग्यता तथा समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप समायोजन कर सकने की क्षमता का पर्याप्त मात्रा में अभाव होता है, मानसिक रूप से दुर्बल बच्चे तथा युवक कहे जाते हैं। ट्रेडगोल्ड ने मानसिक हीनता का वर्णन करते हुए कहा है कि बुद्धि का आवश्यक प्रयोजन है व्यक्ति के साथ प्रभावकारी समायोजन की योग्यता प्रदान करना, जिससे वह एक स्वतन्त्र व्यक्ति के रूप में जीवनयापन कर सकने में समर्थ बना रहे परन्तु जब व्यक्ति में इस समायोजनशीलता के अभाव के कारण उसके मस्तिष्क का किसी भी प्रकार या मात्रा का अवरोधित ताथ अपूर्ण विकास हो, जिससे वह एक स्वतन्त्र व्यक्ति के रूप में जीवनयापन कर सकने में असमर्थ हो तथा उसे स्वयं की देखभाल के लिए अन्य लोगों की आवश्यकता हो तो इस प्रकार की मानसिक अपर्याप्तता को मानसिक हीनता की संज्ञा दी जाती है। जेम्स डी पेज के अनुसार मानसिक हीनता निम्न मानसिक विकास की वह अवस्था है जो व्यक्ति में या तो जन्म से ही विद्यमान होती है अथवा जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में उत्पन्न होती है, जिसकी प्रमुख देखभाल बौद्धिक स्तर तथा सामाजिक अपर्याप्तता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि मानसिक हीनता अवरोधित अथवा सीमित या अपूर्ण बौद्धिक विकास से उत्पन्न सामाजिक अपर्याप्तता की वह स्थिति है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति स्वयं की देखभाल समाज के एक रचनात्मक एवं स्वतन्त्र सदस्य के रूप में नहीं कर सकता।

मानसिक हीनता और अपराध

संरचनात्मक दोष या हीनता (Constitutional Inferiority) के विचार को लेकर चलने वाले शारीरिक संरचनावादी या प्रारूपपादी (Typological) सिद्धान्तों को भाँति मानसिक हीनता या मन्दबुद्धिता वाले सैद्धान्तिक विचारधारा में भी संरचनात्मक हीनता के भाव को केन्द्रीय स्थिति प्रदान की गयी है। अन्तर केवल यह है कि जहाँ शारीरिक प्रारूपवादी सिद्धान्तों में मानसिक दोषों या कमियों पर विशेष बल दिया गया है।

आरम्भ में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के विकास के साथ बौद्धिक विभेद की धारणा को भी महत्व प्रदान किया गया। बन्दियों का बुद्धि परीक्षण कर अपराधिता व बौद्धिक

स्तर के मध्य साहचर्य प्रदर्शित किया गया। इस सन्दर्भ में प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के विकास से पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई। प्रतिक्रिया काल, स्मृति इत्यादि से सम्बद्ध प्रयोगों के आधार पर ही व्यक्तिगत विभेद की अवधारणा का विस्तार हुआ।

फ्रान्सीसी मनोवैज्ञानिक अल्फ्रेड बिनेट (Alfred Binet) (1857-1911) ने सर्वप्रथम प्रयोगशाला के बाहर बुद्धि परीक्षणों का उपयोग किया और इसकी सहायता से पेरिस के विद्यालयों में मानसिक पिछड़ेपन का अध्ययन प्रस्तुत किया। बिनेत का विचार था कि बुद्धि एक प्राकृतिक योग्यता है, यह सीखे गये व्यवहार का परिणाम नहीं है। इस आधार पर विद्यालयों में बिनेत ने मन्दबुद्धिता का विश्लेषण किया। इस कार्य में पेरिस विद्यालयों के चिकित्सा अधिकारी थियोडोर साईमन (Theodore Simon) से बिनेत को पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई।

पन्द्रह वर्षों के अथक प्रयास के उपरान्त सन् 1905 में बिनेत ने प्रथम प्रमापीकृत बुद्धि के परीक्षण का प्रस्तुतीकरण किया। इसे, संशोधित रूप में "बिनेत साइमन बुद्धि परीक्षण" या "बिनेत साईमन स्केल ऑफ इनटेलिजेन्स (Binel-Simon Scale of Intelligence), के नाम से प्रकाशित किया गया। इस संशोधित परीक्षण में मानसिक आयु (Mental Age) की अवधारणा को भी समाविष्ट किया गया। बिनेत की मृत्यु के उपरान्त इस परीक्षण का पूर्ण संशोधित स्वरूप सन् 1911 में प्रकाशित हुआ।

"बिनेत साइमन परीक्षण" के उद्भव के साथ बुद्धि परीक्षणों के अनुकूलनों (Adaptations), विस्तार एवं संशोधनों की बाढ़ सी आ गयी। अमेरिका में प्रोफेसर टर्मन (Terman) ने बिनेत साइमन परीक्षण के संधोधन को "स्टैनफोर्ड परीक्षण" शीर्षक के अन्तर्गत प्रस्तुत किया। वयस्क व्यक्तियों के बुद्धि के मापन के सम्बन्ध में बुद्धिलब्धि (Intelligence quotent) तथा मानसिक आयु की अवधारणाओं का भी विकास हुआ।

मानसिक हीनता की अवधारणा प्रारम्भिक बुद्धि मापनकर्ताओं के लिए एक विवादास्पद तथ्य थी। एच.एच. गोडार्ड (H.H. Goddard) ने इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण कार्य किया और बताया कि 16 वर्ष की आयु में 75 से कम बुद्धि लब्धि, मानसिक हीनता का द्योतक है। प्रथम महायुद्ध में इन मनोवैज्ञानिक बुद्धि परीक्षणों का व्यापक उपयोग सैन्य चयन कार्यक्रमों के अन्तर्गत किया गया है जिनसे इनके प्रसार को बहुत अधिक लोकप्रियता एवं मान्यता प्राप्त हुई। गोडार्ड ने अपने अध्ययन परिणामों के आधार पर यह सिद्ध किया कि शारीरिक प्रारूप की अपेक्षा मानसिक हीनता अपराध का मूल कारण है।

कुछ लेखकों ने अपनी अनुसंधान उपलब्धियों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि अपराधिता व्यक्ति की मानसिक हीनता व मन्दबुद्धिता का परिणाम हैं इन लेखकों का आधारभूत विश्वास है कि अधिकांश अपराधी मानसिक रूप से हीन व्यक्ति

होते हैं। उनके सिद्धान्तों के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रस्ताव अन्तर्विष्ट हैं-

1. प्रायः सभी अपराधी मन्दबुद्धि वाले होते हैं।
2. मन्दबुद्धि वाले व्यक्ति विशेष अन्तर्बाधित दशाओं के अभाव में अपराध इसलिए करते हैं क्योंकि उनमें आपराधिक कानून की अपेक्षाओं को समझने की शक्ति नहीं होती है।
3. मेंडल के अनुवांशिक विधान के अनुसार मन्दबुद्धिता इकाई स्वभाव के रूप में वंशागत होती है।
4. मन्दबुद्धि वाले व्यक्ति हिंसात्मक तथा लैंगिक अपराधों की ओर इसलिए अभिमुख होते हैं क्योंकि या तो वे बुद्धि की कमी के कारण अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति परोक्ष साधन द्वारा नहीं कर सकते हैं अथवा अपने मनोवेगों को नियन्त्रित नहीं कर सकते हैं।
5. मन्दबुद्धि वाले व्यक्ति अपनी संस्कृति के मूल्यों, यहां तक कि वे व्यवहार की उचित एवं अनुचित परिभाषाओं को समझने में अयोग्य होते हैं।
6. मन्दबुद्धि वाले व्यक्तियों को अपने व्यवहार के परिणामों का पूर्वाभास नहीं होता है।
7. मन्दबुद्धि वाले व्यक्ति सहज ही अपराध में लीन हो जाते हैं तथा दण्ड से भयभीत नहीं होते हैं।
8. पड़ोसी मन्दबुद्धिता, जहाँ अपराधियों के उदाहरण सामान्य होते हैं, अपराध का कारण बनती है।
9. मन्दबुद्धिता की बन्ध्यकरण अथवा पृथक्करण की नीति ही एकमात्र प्रभावी विधि है। इस विचारधारा का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि बन्ध्यकरण एवं पृथक्करण पर सर्वाधिक बल दिया जाने लगा।

हेनरी गोडार्ड को अपराध शास्त्र के मानसिक हीनता के सिद्धान्त का परम समर्थक माना जाता है। वह सन् 1914 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'Feeblemindedness' में कारावास में रखे गये अपराधियों में बुद्धि परीक्षण के आधार पर इस निर्णय पर पहुँचा कि प्रायः अधिकांश अपराधी मन्दबुद्धि के होते हैं और उनकी मन्दबुद्धिता आनुवंशिक विरासत के रूप में प्राप्त होती है। मन्दबुद्धिता के कारण भले-बुरे का ज्ञान नहीं रख पाते और न तो कानून की मान्यताओं को और न अपने दुष्प्रकार्यों के परिणामों को ही परख सकते हैं। अतएव अपराधिता अपराधियों की मानसिक न्यूनता का एक स्वाभाविक परिणाम होते हैं। इसके साथ ही गोडार्ड ने यह भी स्वीकार किया कि

मानसिक हीनता मेन्डल्स के आनुवंशिकता सिद्धान्त के अनुरूप एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है। अन्य शब्दों में, मानसिक परीक्षणवादी सिद्धान्तों में मन्दबुद्धिता को आनुवंशिक दोष के रूप में स्वीकार किया गया।

बाल अपराधियों पर किए गए एक अन्य अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर गोडार्ड ने अपने पूर्ववर्ती मत को पुष्ट किया और कहा कि इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि बाल अपराध का सबसे बड़ा कारण निम्न स्तरीय मानसिकता एवं मदबुद्धिता है। पुनः एक अन्य सम्बन्ध में, उसने कहा कि मन्दबुद्धिता अपराधिकता की पूर्ण व्याख्या करती है।

इसी सन्दर्भ में विभिन्न अपराधशास्त्रियों ने सतर्कता से मानसिक हीनता को अपराधिता के कारक के रूप में स्वीकार किया है। मन्दबुद्धिता के कारण मानसिक रूप से प्रखर दूसरे व्यक्ति अपने अपराधों को सम्पादित करने की प्रक्रिया में मानसिक रूप में हीन व्यक्तियों को अपने गिरोह में सम्मिलित कर लेते हैं अथवा इन्हें अपराधोन्मुख कर देते हैं। इस प्रकार मन्दबुद्धिता व्यक्ति को अपराधों के प्रांगण में ढकेल सकती है। किंचित वेश्याएँ इस दोष के कारण इस व्यवसाय में लीन हो जाती है।

मनोचिकित्सकों ने अपने अधीन रखे गये रोगियों का अध्ययन कर यह पाया है कि मानसिक दुर्बलता भी दो स्तर की होती है- एक निम्नकोटीय तथा दूसरी उच्चकोटीय, और इन्होंने पाया है कि उच्चकोटीय स्तर के ऐसे व्याधिकीय व्यक्ति ही संगीन अपराध करते हैं और इनमें से यह तथ्य भी उभरा है कि अधिकतर लैंगिक तथा हिंसात्मक अपराध ऐसे लोगों द्वारा सम्पन्न होते हैं।

डॉ. विलियम हिलीएवं ब्रुनर जो मनोचिकित्सक थे, के अनुसार यद्यपि संगीन अपराधियों में मंदित (Retarded) सामान्य जनता की अपेक्षा प्रायः पांच से दस बार अधिक दिखाई देते हैं, किन्तु अत्यन्त संगीन अपराधियों की बुद्धि औसत से निम्न नहीं होती है। हिली एवं ब्रुनर ने शिकागों तथा बोस्टन में अभ्यस्त अपराधियों के 4000 केसों के अध्ययन में 72.5 प्रतिशत को मानसिक रूप से सामान्य, तथा केवल 13.5 प्रतिशत को मानसिक रूप से हीन पाया। 400 अपराध के केसों के एक गहन अध्ययन में उन्होंने ऐसे केवल दो केसों को पाया जो मन्दबुद्धि वाले थे।

बीज एवं सैम्पलिनर ने 16 से 21 वर्षायु के किशोरों, जो कि प्रथम अपराधी थे, के अध्ययन में पाया कि उनमें बुद्धि का वितरण सामान्य जनता की बुद्धि के वितरण के समान है। एल.जी. लावरी के अनुसार, मन्दबुद्धिता अपराध में सार्वभौम कारक नहीं है जैसा कि एक बार इसे माना गया था, स्थूल रूप से विचारित, हीन बुद्धि को भी अपराधियों के व्यक्तित्व का एक विशिष्ट लक्षण नहीं माना जा सकता है। फेरेन्ट्ज के शब्दों में बहुधा लड़खड़ कर आपराधिक व्यवहार करते दिखाई पड़ते हैं। उच्चतर स्तरीय

मन्दबुद्धि वाले जीवन में अपने सापेक्ष असफलता द्वारा प्रभावित हो सकते हैं। तथापि किसी भी तरह मन्दबुद्धिता अपराध के एक बहुत साधारण अंश के लिए उत्तरदायी है। मन्दबुद्धिता के ठीक विपरीत व्यक्ति की अन्य विशिष्टता, बुद्धि प्रखरता या प्रतिभा भी अपराधशास्त्रियों के लिए आकर्षक सिद्ध हुई है। सदरलैण्ड ने सफेदपोशी अपराधियों के अध्ययन द्वारा यह सिद्ध किया है कि इस प्रकार के अपराध मन्दबुद्धि वाले व्यक्तियों के द्वारा न होकर मेधावी लोगों के द्वारा सम्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त मानसिक परीक्षण करने वाले अपराधशास्त्रियों ने, विशेषकर उन अपराधियों तथा बाल अपराधियों का अध्ययन किया है जो कारावासों में बन्दी बनाकर रखे गए थे। कारावासों के बाहर पाये जाने वाले अपराधियों तथा बाल अपराधियों के समूहों के बारे में उन्हें कोई ऐसा अवबोध नहीं है जिससे यह प्रमाणित किया जा सके वे भी मन्दबुद्धि के हैं। सत्य तो यह है कि मन्दबुद्धि वाले अपराधी ही बड़ी संख्या में गिरफ्तार होते हैं तथा प्रखर बुद्धि वाले अपराधी पुलिस-तन्त्र तथा न्याय-तन्त्र के शिकंजे से बच जाते हैं।

यह धारण कि मन्दबद्धिता वंशागत होती है, अब सामान्यतः परित्यक्त कर दी गई हैं परीक्षणों द्वारा मापित बुद्धि परिवर्तनीय प्रमाणित हुई है। जैसा कि समरूप व्यक्तियों के पुनर्परीक्षण तथा भिन्न पर्यावरणीय में पाये गए पोष्य बच्चों की तुलना द्वारा दर्शाया गया है।

अल्पबुद्धिता तथा अपराध के मध्य सम्बन्ध के विषय में आधुनिक मनोवैज्ञानिक चिन्तनधारा कोलेमैन के चिन्तन के समरूप है, जिसने यह लेखबद्ध किया है कि-

सामान्य विचार, इस पुरातन मनोवैज्ञानिक उपलब्धियों पर आधारित रहा है कि दण्डात्मक संस्थाओं के बहुसंख्यक निवासी मानसिक रूप से मन्दबुद्धि के होते हैं तथा मानसिक रूप से मन्दबुद्धि वाले व्यक्ति विशेष रूप से आपराधिक व्यवहार की ओर उन्मुख होते हैं। वास्तव में समाज को उसकी तथाकथित आपराधिक प्रवृत्तियों से बचाने के लिए मानसिक मन्दबुद्धियों के लिए सांस्थानिकीकरण की प्रथम संस्तुति की गई। तथापि अत्याधुनिक मनोवैज्ञानिक प्रमाण में अन्तिम रूप से सिद्ध कर दिया है कि हीन मनोवृत्ति, अपराध तथा बाल-अपराध में न तो विशिष्ट कारण और न ही उत्कृष्ट कारक ह। यद्यपि बाल अपराधी बच्चों का एक उच्चतर प्रतिशत मानसिक रूप से मन्दबुद्धि की श्रेणी से आता है, विशेषकर बुद्धि सीमारेखा से, किन्तु यह मन्दबुद्धिता नहीं है, बल्कि बच्चों को पर्याप्त विद्यालयी ज्ञान प्रदान करने की असमर्थता अथवा सामाजिक समायोजन की अयोग्यता है जो सामान्यतः उसके अपराध का कारण होती है।

इस सिद्धान्त की आलोचना इस तथ्य के आधार पर की जा सकती है कि अपराधियों तथा गैर-अपराधियों के मध्य विभेद करने की दृष्टि से इसकी प्रतिस्थापनाएं किस सीमा तक सफल है? इस सन्दर्भ में बहुत से विपरीत उद्धरण मिलते हैं। बहुत से

व्यक्ति समाज में ऐसे भी पाये जाते हैं जो मानसिक हीनता से ग्रस्त होते हुए भी अपराधी नहीं होते। उनमें आपराधिक वृत्ति नहीं पायी जाती। ऐसे भी बहुत से अपराधी पाये जाते हैं जो मानसिक हीनता से ग्रस्त नहीं होते। अतः इस सिद्धान्त की व्याख्या आपराधिक व्यवहार की व्याख्या की दृष्टि से अतर्कसंगत, अपूर्ण एवं असन्तोषजनक प्रतीत होती है।

MASY 09 9A

मनोचिकित्सीय सिद्धान्त

मनोचिकित्सीय उपागम चिकित्साशास्त्र की वह शाखा है जिसका सम्बन्ध मानसिक विकारों या रोगों से होता है। मानसिक चिकित्सकों का अपराधिकी के अध्ययन में आपराधिक व्यवहार एवं विभिन्न विशिष्ट मानसिक विकारों के मध्य सहसम्बन्ध स्थापित करने में बहुत अधिक योगदान है। वस्तुतः ऐसी कोई भी मनोचिकित्सकीय अथवा स्नायु-विज्ञान विषयक रूगणताएँ नहीं है जिनको अपराध से किसी न किसी रूप में न जोड़ा गया हो। अपराध के इस सम्प्रदाय की पूर्व धारणा है कि प्रायः सभी अपराधी मानसिक रोगी होते हैं और जहाँ किसी मानसिक रोग का प्रत्यक्ष प्रमाण न भी दृष्टिगोचर हो, वहाँ भी आपराधिक व्यवहार में इसका पुट ढूँढ़ा जा सकता है। चिकित्सा द्वारा आपराधिक व्यवहार की व्याख्या सुस्पष्ट होती है। इसलिए एक मनोचिकित्सक ने यहाँ तक कह डाला कि उसने अपने व्यापक अनुभव में एक भी अपराधी नहीं पाया, जो किसी न किसी मानसिक रोग के लक्षण से ग्रसित न रहा है... अतएव सामान्य अपराधी की संज्ञा एक कल्पित बात है।

इस प्रकार मनोचिकित्सीय सिद्धान्त अपराधियों को मनोरोगमय होने का दावा करता है। जब एक मनोरोग अपराध की व्याख्या करने में अपर्याप्त प्रमाणित होता है तब दूसरे मनोरोग की सहायता से अपराध की व्याख्या करने का प्रयास किया जाता है। कुछ चिकित्सक अपराध की व्याख्या, मनोविक्षिप्त, कुछ मनस्ताप तथा दूसरे मनो-विकृति के आधार पर करते हैं, तथापि मनोचिकित्सकों में इन व्याधिकीय लक्षणों के महत्व के सम्बन्ध में एकमतता नहीं हैं कुछ का मत है कि व्यावहारिक रूप से सभी अपराधी मनोरोगमय होते हैं, जबकि अन्यों का विचार है कि केवल कुछ प्रतिशत ही मनोरोगमय होते हैं।

अपराध का मनोविश्लेषणीय सिद्धान्त

अपचारियों एवं अपराधियों के अध्ययन में मनोवैज्ञानिकों का एक सम्प्रदाय ऐसा है जो अपराधिता की व्याख्या करने में मनोविश्लेषणीय सिद्धान्त का प्रयोग करता है। यद्यपि मनोविश्लेषणीय सिद्धान्त की अनेक शाखाएँ व सम्प्रदाय तथा अनेक अधिक या कम भिन्न सम्प्रदाय हैं, तथापि सभी सिद्धान्त अपराध के कारण के रूप में अचेतन मनोवैज्ञानिक शक्तियों (Force) अथवा प्रेरणाओं (Drives) पर विशेष रूप से बल देते

हैं।

सिंगमण्ड फ्रायड (Sigmund Freud) (मई 6,1856-सितम्बर 23, 1939) मनोविश्लेषणीय सिद्धान्त के जन्मदाता हैं। फ्रायड से कुछ भिन्न मत एडलर (Adler) तथा जुंग (Jung) का है। इसके अतिरिक्त फ्राम (Fromm) कैरेन हार्नी तथा सुलीवान (Sulivan) आदि विद्वानों ने फ्रायड के विचारों को संशोधित तथा नये रूप में प्रस्तुत किया है। आपस में भिन्नता होते हुए भी फ्रायड के मनोविश्लेषणीय सिद्धान्त से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होने के कारण इन्हें मनोविश्लेषणीय सिद्धान्त के ही वर्ग में रखा जाता है। विवेचनागत अध्ययन की सुविधा के लिए यहाँ हम अपराध के कारण के रूप में मनोविश्लेषणीय सिद्धान्त के प्रमुख मतों का वर्णन करेंगें।

MASY 09 98

फ्रायड ने व्यवहार की व्याख्या के लिए जो वैचारिकी प्रस्तुत की उसके अन्तर्गत आपराधिक व्यवहार की विवेचना भी समाहित है। आपराधिक व्यवहार की व्याख्या में फ्रायड के विश्लेषण का केन्द्र मानसिक संघर्ष की अवधारणा रही है। फ्रायड का विचार था कि दलित इच्छाएँ (Represented desires) एवं विचार अचेतन मन (Unconscious mind) में चले जाते हैं, लेकिन वहाँ भी उनका अस्तित्व पाया जाता है। व्यवहार के निर्धारण एवं व्यक्तित्व को प्रभावित करने की दृष्टि से अचेतन मन भी एक सीमा तक महत्वपूर्ण है। अतः दमित आवेगी, भावनाओं एवं इच्छाओं का भी प्रभाव मानव के व्यवहारों पर पड़ता है।

फ्रायड के अनुसार आपराधिक व्यवहार इन दमित आकांक्षाओं की परिवर्तित अनुक्रिया है। अचेतन मन में व्याप्त संघर्ष से व्यक्ति के मन में चिन्ता एवं दोषी भावना का उदय होता है। परिणामस्वरूप वह चाहता है कि उसे दण्ड मिले जिससे कि उसमें व्याप्त दोषी भावना का निराकरण हो। इस प्रकार फ्रायड यह स्वीकार करता है कि अपराधी पकड़े जाने व दण्डित होने के लिए अपराध करता है। अचेतन मन से अभिप्रेरित त्रुटियाँ ही अपराधियों के लिए उनको पकड़ने हेतु सूत्र का कार्य करती है।

आपराधिक व्यवहार के क्षेत्र में मनोविश्लेषणवादी अवधारणाओं - ओडिपस इलेक्ट्रो काम्पलेक्सेज (Odipus-Electro Complexes) मृत्युजन्य मूल प्रवृत्तियाँ (Death instincts), हीनता क्षतिपूर्ति, भग्नाशा-आक्रामकता (Frustration aggression) प्रारम्भिक जीवन के भय, इत्यादि की भूमिकाओं को लेकर अनेक अध्ययन हुए है। इन सबका सार यह है कि अपराध एक अर्थपूर्ण स्थानापन्न व्यवहार (Meaningful substitute behaviour) है जो कि व्यक्ति के आन्तरिक संघर्षों एवं अचेतन मन में दमित आकांक्षाओं का परिणाम होता है। मनोविश्लेषकों के अनुसार, आपराधिक व्यवहारों की प्रमुख विवेचना का आधार अचेतन मन है जो आन्तरिक भावनाओं का एक जगत है। आपराधिक व्यवहार मानसिक जीवन की चेतन क्रियाओं का उत्पाद ही

नहीं प्रत्युत अचेतन मन की गत्यात्मकता का परिणाम है।

आपराधिक व्यवहार की विवेचना की दृष्टि से व्यक्ति की व्यक्तित्व संरचना आन्तरिक संघर्ष या द्वन्द्व, दमन इत्यादि का मनोविश्लेषकों के लिए विशेष महत्व है। अतः अब हम क्रमशः इस तथ्य पर विचार करने का प्रयास करेंगें कि किस रूप में व्यक्तित्व संरचना एवं आन्तरिक द्वन्द्व तथा अन्य प्रक्रियाएँ आपराधिक व्यवहार को जन्म देती है।

व्यक्तित्व संरचना (Personality Structure)

फ्रायड के परम्परागत मनोविश्लेषीय सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व के तीन आवश्यकत तंत्र हैं इड (Id), ईगो (Ego) तथा सुपर-ईगो (Super-Ego)। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि फ्रायड व्यक्तित्व के इन तीनों तंत्रों को एक दूसरे से पृथक नहीं मानता। इन तीनों के मध्य सीमांकन रेखाएँ स्पष्ट नहीं हैं वरन् वे रंग के उन तीन क्षेत्रों के समान हैं जिनमें एक ही रेंग के तीन शेड इस प्रकार आपस में मिले हुए हैं कि यह निर्धारित करना कि कौन सा शेड कहाँ समाप्त हुआ और कहाँ से दूसरा नया प्रारम्भ हो गया अत्यधिक कठिन है। फ्रायड का मत है कि इन तीनों को एक दूसरे से पृथक कर देने के बाद उन्हें पुनः आपस में विलीन करके समझना चाहिए। वह समस्त व्यक्तियों को एक इकाई के रूप में कार्य करते हुए देखता है न कि इड, ईगो तथा सुपर ईगो नामक विभाजित तन्त्रों के रूप में। सामान्य व्यक्तित्व इन तीनों तन्त्रों में एकता का प्रतीक है तथा असामान्य व्यक्तित्व में इन तीनों तंत्रों में खींचतान तथा विभाजन दृष्टिगत होता है। विवेचनागत अध्ययन की सुगमता हेतु इस स्थल पर परम्परागत मनोविश्लेषणीय सिद्धान्त के इन तीनों तन्त्रों का सम्यक अवबोध प्राप्त कर लेना अत्यावश्यक है।

1- इड (Id)

फ्रायड के अनुसार इड मानसिक साधनों अथवा क्षेत्रों में अत्यन्त प्राचीन है। व्यक्ति जो कुछ भी आनुवंशिकता से प्राप्त करता है, जो कुछ भी उसके जन्म के समय उसमें होता है और विशेषकर वे मूल प्रवृत्तियाँ जिनका जन्म शरीर के गठन से सम्बन्धित है उन सबकी मानसिक अभिव्यक्ति इड में होती है। लेकिन जिस रूप में यह अभिव्यक्ति होती है उसका हमें ज्ञान नहीं होता है। इड के सम्बन्ध में द्वितीय उल्लेखनीय बात यह है कि इसका सम्बन्ध अचेतन मन से होता है। और इसलिए व्यक्ति इड द्वारा किये गये मानसिक कार्यों से अपरिचित रहता है। इसकी तृतीय विशेषता की चर्चा करते हुए फ्रायड ने बताया कि इड एक प्रकार की मिट्टी या पत्थर है जिसे कांट छाटकर मूर्ति का निर्माण किया जाता है। इसी आधार पर फ्रायड यह मानता है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण अपरिचित एवं अनजाने इड के ही आधार पर होता है। चतुर्थतः इड का न तो वाह्य जगत से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है और न ही इसके बारे में हमें कोई जानकारी ही हो पाती है। इड तो केवल सुखानुभूति के लिए लालायित रहता है और वह वही कार्य करना

चाहता है जिसमें उसे सुखानुभूति प्राप्त होती है। इस प्रकार तात्कालिक संतुष्टि की इच्छाएँ तथा विचार इड की विषय सामग्री है। इसमें किसी प्रकार की नैतिकता तथा मूल्य नहीं होता। इसकी विषय सामग्री अनश्वर होती है क्योंकि वह कालगत विशेषताओं से मुक्त है। इसके लिए कुछ भी न तो भूतकालीन है और न ही विस्मृत। इसका समय और स्थान तथा तार्किकता से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इस कारण हमें एक ही साथ दो बिल्कुल विरोधी इच्छाएँ उपस्थित हो सकती हैं।

जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व में इड की प्रधानता होती है अर्थात उसके ईगो एवं सुपर ईगो, इड की तुलना में अविकसित होते हैं, वह न तो समाज के मानदण्डों एवं आदर्शों को ध्यान में रखता है और न ही सामाजिक नियमों का पालन करता है। उसका प्रमुख उद्देश्य तात्कालिक सुखोपयोग करना होता है और वह तात्कालिक सुखोपभोग मूलतः कामजन्य होता है। इस आधार पर इस तात्कालिक सुखोपभोग के नियम को ही फ्रायड ने सुख का सिद्धान्त माना है।

2. ईगो (Ego)

फ्रायड के अनुसार ईगो या अहम, इड का संगठित रूप है। वाह्य जगत से प्रभावित होकर इड का जो अंश चेतन बनता है वही ईगो है। इस प्रकार ईगो में बाह्य जगत का ज्ञान एकत्रित होता है। यह उसी की जिम्मेदारी है कि वाह्य जगत से आदान-प्रदान करता रहें।

ईगो के विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि व्यक्ति सुख के सिद्धान्त को धीरे-धीरे छोड़कर यथार्थ सिद्धान्त (Reality Principle) के आधार पर कार्य करना सीखे। इस कार्य में व्यक्ति की शिक्षा अत्यधिक सहायक होती है। इसीलिए फ्रायड शिक्षा के विषय में कहते हैं कि बिना किसी हिचक के शिक्षा को हम सुख के सिद्धान्त के स्थान पर यथार्थ सिद्धान्त की स्थापना मान सकते हैं। अतः स्पष्ट है कि ईगो की सबसे बड़ी विशेषता है यथार्थ के प्रति जागरूक रहना और यथासंभव निम्नस्तरीय सुखों से अपने को बचाना।

फ्रायड की यह मान्यता है कि व्यक्ति का विवेक, तर्क शक्ति, चिन्तन ईगो से सम्बन्धित होते हैं। जिस व्यक्ति का ईगो सामान्य एवं संतोषजनक नीति से विकसित होता है उसके व्यक्तित्व में सामाजिक गुणों की प्रधानता होती है। सामाजिक मानदण्डों, आदर्शों व नियमों का पालन करना एवं उनका अनुशीलन करना ईगो का प्रधान कार्य है। जिस सीमा तक व्यक्ति का ईगो इन कार्यों को करने में समर्थ होगा उसके ईगो की सशक्तता उतनी ही अधिक होगी। ईगो का सशक्त होना सामान्य व्यक्ति के लिए आवश्यक है।

3. सुपर ईगो (Super Ego)

सुपर ईगो व्यक्तित्व का नैतिक पक्ष है। व्यक्तित्व का यह तंत्र सबसे अन्त में विकसित होता है। माता-पिता, गुरुजन तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक मूल्यों एवं आदर्शों की अभिव्यक्ति सुपर ईगो के रूप में होती है। यह वास्तविकता के स्थान पर आदर्श को अभिव्यक्त करता है और इसका उद्देश्य सुखोपभोग न होकर पूर्णतया की प्राप्ति है। इस प्रकार सुपर ईगो के दो पक्ष हैं - अन्तरात्मा (Conscience) तथा आदर्श अहं (Ego ideal)। जब ईगो, आदर्श की अहं की आशा के अनुरूप व्यवहार नहीं करता तो अन्तरात्मा ईगो में अपराध की भावना उत्पन्न होती है और जब ईगो सुपर इगो के अनुरूप चलता है तो उसमें गर्व की भावना उत्पन्न होती है। इस प्रकार व्यक्ति की नैतिक मान्यताओं का प्रमुख आधार सुपर ईगो है।

इड, ईगो तथा सुपर ईगो का आपसी सम्बन्ध -

ईगो तथा सुपर ईगो स्थिर इकाइयाँ नहीं हैं वरन् ये गतिशील है। इनमें आपस में खींचतान मची रहती है। इड पूर्णरूपेण सुख के नियम से नियमित होता है जबकि सुपर ईगो नैतिकता से प्रेरित होता है, परिणामतः इनमें आपस में विरोध रहता है। ईगो एक ओर तो इड आवेगों की संतुष्टि का प्रयास करता है तो दूसरी ओर सुपर ईगो को भी संतुष्ट रखने का प्रयत्न करता है। ईगो की स्थिति एक ऐसे मध्यस्थ की भांति है जिसे दो प्रबल विरोधी व्यक्तियों की आज्ञा का पालन करना पड़ता है। इसी कारण इन तीनों के मध्य एक सतत् संघर्ष रहता है। उदाहरणस्वरूप व्यक्ति के व्यक्तित्व में उस समय द्वन्द्व पैदा हो जाता है जब इड किन्हीं वासनाओं की संतुष्टि करने के लिए तत्पर रहता है और सुपर ईगो के आपसी संघर्ष के मध्य ईगो को समझौता करना पड़ता है। ईगो यथार्थ के आधार पर परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ऐसा मार्ग निकालने का प्रयास करता है जिससे कि मानसिक द्वन्द्व समाप्त हो जाये। अन्य शब्दों में व्यक्तित्व का समायोजन का प्रयास ईगो, इड तथा सुपर ईगो की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर करता है।

सामान्य व्यक्ति में व्यक्तित्व के इन तीनों तन्त्रों में सामंजस्य होता है। इनमें आपस में जितना अधिक विरोध होगा, व्यक्तित्व का विघटन उतना ही प्रबलतर होगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि जब इन तीनों तन्त्रों में सामंजस्य होता है तब व्यक्तित्व का गठन संतोषप्रद रहता है। किन्तु यदि किसी व्यक्ति का कार्य इड से अधिक प्रभावित होता है तब वह असामाजिक एवं असांस्कृतिक कार्यों की ओर प्रेरित हो जाता है।

फ्रायड द्वारा विकसित मनोविश्लेषणीय सिद्धान्त में अपराधी व्यवहार की व्याख्या मानसिकता क्रिया के स्तरों (Levels of Mental Activity) के आधार पर भी की गई है। फ्रायड ने कहा कि मानसिक क्रियायें तीन स्तरों पर सम्पादित होती है। चेतन (Conscious), अवचेतन (Subconscious) तथा अचेतन (Unconscious)। चेतन स्तर

पर वे मानसिक एवं शारीरिक क्रियायें आती हैं जिनके प्रति हम जागरूक होते हैं तथा जिनका सरलता से प्रत्याहवान (Recall) किया जा सकता है। इनका प्रयोग पर्यावरण को समझने में किया जाता है। अवचेतन के अन्तर्गत वे स्मृतियाँ निहित है जिनका प्रत्याहवान तो किया जा सकता है किन्तु चेतन की अपेक्षा जोर अधिक लगाना पड़ता है। चेतन तथा अवचेतन की विषय सामग्री वास्तविकता से संगति रखती है। अचेतन के अन्तर्गत वह समस्त विषय सामग्री आती है जिसकी न तो हमें जानकारी होती है और न जिन पर हमारा ऐच्छिक नियन्त्रण ही होता है। इसके सम्बन्ध में हमें सामान्य ढंग से तब तक जानकारी नहीं हो सकती जब तक हम किसी विशेष ढंग (सम्मोहन, मुक्त, प्रोजेक्टिव टेकनीक आदि) का सहारा न लें। अचेतन तर्क, समय एवं स्थान के प्रभाव से परे है।

इस प्रकार फ्रायडियन के सिद्धान्त के अनुसार हमारे जीवन के दुःखद तथा अमान्य विचार जो पहले चेतन होते हैं दमन (Repression) की प्रक्रिया के द्वारा अचेतन का अंग बन जाते हैं। साथ ही साथ इड की अनेक इच्छाएँ तथा आवेग जो कभी भी चेतन नहीं थे उनकी भी स्थिति अचेतन में होती है। अचेतन मन की तुलना एक कुएँ से की जा सकती है। जिसकी सतह पर कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता किन्तु उसके पानी के भीतर भाँति-भाँति के जीव-जन्तु छिपे रह सकते हैं।

3.5 प्रश्न

वस्तुनिष्ठ

1. अपराध के भौगोलिक सिद्धान्त के अनुसार जलवायु तथा अपराधों में एक सकारात्मक सम्बन्ध है? सत्य/असत्य
2. जैविकीय सिद्धान्त का मत है कि अपराधी जन्म से ही एक विशेष प्रकार के व्यक्ति होते हैं? सत्य/असत्य

लघु उत्तरीय

1. अपराध के जैविकीय सिद्धान्त पर एक टिप्पणी लिखें?
2. अपराध के सम्बन्ध में फ्रायड के सिद्धान्त की चर्चा करें?

दीर्घ उत्तरीय

1. अपराध के जैविकीय तथा भौगोलिक सिद्धान्त किस तरह से अपराधों के कारणों की व्याख्या करते हैं विस्तार से चर्चा करें।
2. अपराध के मनोवैज्ञानिक कारणों की चर्चा करते हुए मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को

3.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. John D. Davis, Phrenology, Fad and Science, Yale University Press, New Haven, 1955, p. ix.
2. Edwin H. Sutherland and Donald R. Cressey, Principles of Criminology, The Times of India Press, Bombay 1968, p. 103.
3. H.E. Barnes and N.K. Teeters, new Horizons in Criminology, New Delhi, 1966, p. 126.
4. Willam H. Sheldon et al. varieties of Human Physique Harper and Bros, New York, 194 .
5. W.A. Bonger (1916), Criminology and Economic Conditions, Little Brown, Boston.
6. William Llyod Warner and Paul S. Lunt (1941). The Social life of a Modern Community. Yale University Press, New Haven.
7. Preven Wolf (1958), Quoted in Principles of Criminology. E.H. Sutherland andD.R. Cressey, The Times of India Press, Bombay.
8. Cyril Burt (1938). The young Delinquent, University of London Press, London.
9. W.F. Ogburn, "Factors in the variation of crime Among Cities, "Journal of the American Statistical Association, 1935. March, Vol. 30 pp. 12-34 see also James E. Mokeown "Poverty, Race and Crime" Journal of Criminal law and Criminology, 1948, Nov-Dec. Vol. 39.
10. Clifford R. Shaw and Henry D. Mckay (1942). Juvenile Delinquency and Urban Areas. University of Chicago Press, Chicago.

11. Edwin H. Sutherland and Donald R. Cressey (1968), Principles of Criminology, the times of India press, Bombay.

12. Talcott Parsons (1979), The Social System, Amerind, New Delhi.

13. Robert G. Caldwell (1956), Criminology, Ronald Press, New York.

14. Jones, Stephen (2009), Criminology, Oxford university Press, NewYork.

15. Singh, Shyamdhar (2008), Theories of Criminology, Sapna Ashok Prakashan, Varanasi.

16. Raranjape, N. V (1999), Criminology and Penology, Central Law Publications, Allahabad.

इकाई -4 : अपराध के आर्थिक सिद्धान्त

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 अपराध तथा आर्थिक स्थिति में संबंध

4.3 अपराध तथा आर्थिक स्थिति के संदर्भ में अरस्तु तथा प्लेटो के विचार

4.4 अपराध की मार्क्सवादी विचारधारा

4.5 बोंगर का अपराध का आर्थिक सिद्धान्त

4.6 अपराध तथा आर्थिक स्थिति के संदर्भ में न्यायिक दृष्टिकोण

4.7 निष्कर्ष

4.8 प्रश्न

4.9 सन्दर्भ ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त

- अपराध तथा आर्थिक स्थिति में क्या संबंध है यह आप समझ सकेंगे।
- अपराध के सन्दर्भ में आर्थिक सिद्धान्त क्या हैं इनसे आपका परिचय हो जायेगा

4.1 प्रस्तावना

अपराध का यह सिद्धान्त विशेषकर कार्ल मार्क्स एवं फ्रेडरिक एंजिल्स एवं बोंगर के विचारों पर आधारित है जिसका उद्‌भव सन् 1850 के लगभग हुआ। यह सिद्धान्त आर्थिक नियतिवाद (Economic Determinism) पर जोर देता है। इस सिद्धान्त की प्रमुख मान्यता यह है कि अपराध आर्थिक दशाओं का मात्र एक परिणाम है।

4.2 अपराध तथा आर्थिक स्थिति में सम्बन्ध

अपराध के कारण के रूप में अत्यन्त प्राचीनतम तथा अत्यन्त व्यापक प्रगतिशील सिद्धान्तों में सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त निर्धनता का है। आर्थिक नियतिवादी, मार्क्सवादी, आरम्भिक सामाजिक कार्यकर्ता तथा मानवतावादी सभी ने अपने वैयक्तिक धारणाओं की अभिव्यक्ति के रूप में आर्थिक कारकों पर विशेष बल दिया है। अत्यन्त व्यापक रूप से जनता द्वारा स्वीकृत तथा यहाँ के एवं विदेशी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत अनेकानेक अध्ययनों

और निष्कर्षों से संग्रहीत तथ्यों के आधार पर आर्थिक दशा के रूप में निर्धनता को अपराध के कारण के रूप में प्रमाणित किया गया है। ये दो प्रमुख प्रश्नों के आधार पर निर्दिष्ट किये गये हैं:

प्रथमतः यह कि क्या निम्नतर आर्थिक प्रस्थिति के लोग उच्चतर आर्थिक प्रस्थिति के लोगों की अपेक्षा अधिक अपराध करते हैं। द्वितीयतः यह कि क्या अपराध की दरों में उस समय वृद्धि हो जाती है जबकि आर्थिक मन्दी की अवधियों में गरीबी बढ़ जाती है। इन अध्ययनों की प्रमुख उपलब्धियों, उनकी परिसीमा तथा निष्कर्ष जो उचित या न्यायसंगत सिद्ध प्रतीत होते हैं, का यहाँ हम एक सर्वेक्षण प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

प्रथमतः अपराधियों की आर्थिक प्रस्थिति के अध्ययन यह निर्दिष्ट करते हैं कि निम्नतर आर्थिक वर्ग में उच्चतर आर्थिक वर्ग की अपेक्षा अधिकारिक अपराध की दर अधिक उच्चतर होती है। यह निष्कर्ष दो प्रकार के आँकड़ों पर आधारित है:

(अ) प्रथम प्रकार के आँकड़े अपचारियों एवं अपराधियों की आर्थिक प्रस्थितियों के अध्ययन से सम्बन्धित है। अपराध के कारण के रूप में आर्थिक उपागम पर विशेष बल देने वाले आरम्भिक अपराधशास्त्रियों में एक प्रसिद्ध अपराधशास्त्री इटली के इटोरे फोर्नोसरी डि बर्स थे जिन्होंने सन् 1894 ई. में यह उल्लेख किया कि इटली की कुल 60 प्रतिशत निर्धन जनसंख्या में 85 से 90 प्रतिशत दोषी प्रमाणित अपराधी थे।

डच अपराधशास्त्री विलियम ए. बोंगर ने तर्कपूर्ण ढंग से यह कहा कि निर्धनता अपराध को बढ़वा देती है तथा अपराध पूँजीवादी सामाजिक संरचना की आर्थिक व्यवस्था में अन्तर्निहित अन्तर-संघर्षों का एक परिणाम है। पुनः उन्होंने कहा कि निर्धन व्यक्ति अपनी विपन्नता से उत्पन्न कुंठाओं के कारण शराब पीते हैं। जो उनके आपराधिक व्यवहार का परोक्ष कारण बनती है।

थामस आर. माल्थस ने भी अपनी पुस्तक Essays on Principles of Population as it affects the Future Improvement of Society, London, 1978 में निर्धनता को आपराधिक व्यवहार का उद्गमस्रोत बताया।

अमेरिका में चार्ल्स लोरिंग ब्रेस तथा जैकब रीस, काल्डवेल एवं अन्य लेखकों ने अपनी कृतियों में इस प्रमेय का उल्लेख लेखाचित्रों के माध्यम से किया है।

काल्डवेल ने सन् 1931 में दण्ड के व्यावसायिक मूल्यनिर्धारण अनुमाप का प्रयोग करते हुए यह पाया कि विसकोसिन सुधारक संस्थाओं में 33.4 प्रतिशत बाल अपराधियों के माता-पिता 11.8 प्रतिशत राज्य की सम्पूर्ण नियोजित (काम में लगी) जनसंख्या जनसंख्या की तुलना में अशिक्षित या कुशल थे। इसी प्रकार पैसेइक न्यूजर्सी

में 761 अपराधियों के सम्बन्ध में संकलित आँकड़ों से यह स्पष्ट हुआ कि उनके पिताओं के व्यावसायिक मूल्य-निर्धारण नगर की सामान्य जनसंख्या के मूल्य निर्धारण की अपेक्षा पर्याप्त रूप से निम्नतर थे।

वार्नर तथा लुण्ट ने यह पाया कि यांकी नगर की जनसंख्या का 57 प्रतिशत भाग जबकि दो निम्न वर्गों के सदस्यों से संयुक्त था। सात वर्षों के दौरान 90 प्रतिशत गिरफ्तारियाँ इन्हीं दो वर्गों के सदस्यों की हुई थी। सिलोन में सन् 1944-1956 में परिवीक्षा पर छोड़े गये बच्चों के एक निदर्शन में 73 प्रतिशत बच्चे निर्धन तथा बहुत निर्धन पाये गये। डेनमार्क में एक अध्ययन परिणामों से यह प्रकट हुआ कि अपराधियों के एक समूह में 10 प्रतिशत अपराधी उच्च या मध्यम वर्ग के आये थे, जबकि इन वर्गों में सामान्य जनसंख्या से आने वाले अपराधियों की संख्या 27 प्रतिशत थी। अनेक अन्य अध्ययनों की उपलब्धियों से यह प्रकट हुआ है कि व्यस्क एवं बाल अपराधियों की ऐसी ही प्रवृत्तियाँ निम्नतर आर्थिक वर्ग में पाई गई। एक अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति पर बन्दियों की श्रेणी उनके पिताओं की श्रेणी की तुलना में निम्नतर थी।

ब्रिटिश लेखक सिरिल बर्ट ने बाल अपराध तथा निर्धनता के साहचर्य के अपने अध्ययन परिणामों को सन् 1931 में प्रकाशित किया। उन्होंने यह दावा किया कि 19 प्रतिशत बाल अपराधी अत्यन्त निर्धन परिवारों से आये थे, जबकि लंदन की कुल जनसंख्या के केवल 8 प्रतिशत बाल अपराधी ही ऐसे घरों से आये थे, 37 प्रतिशत साधारण निर्धन परिवारों से आये थे, यद्यपि इस वर्ग की जनसंख्या का प्रतिशत केवल 22 था। संक्षेप में अपराध की कुल जनसंख्या में से आधे से अधिक लोग अत्यन्त निर्धन तथा साधारण निर्धन परिवारों के सदस्य थे। परन्तु उनका यह भी कहना था कि केवल निर्धनता के कारण ही अपराध की उत्पत्ति नहीं होती है। उनकी मान्यता है, यदि अधिकांश अपराधी गरीब हैं, अधिकांश गरीब अपराधी नहीं बनते हैं।

अमेरिका में इस सम्बन्ध में दो प्रकार के आरम्भिक निश्चयात्मक अध्ययन हुए हैं–प्रथम अध्ययन डॉ. विलियम हीली द्वारा किया गया है। डॉ. विलियम हीली ने अनेक अध्ययन परिणामों के आधार पर यह दर्शाया है कि उसके अध्ययन केसों में 0.5 प्रतिशत केसों का प्रधान कारण निर्धनता थी तथा केवल 7.1 प्रतिशत केसों में यह एक गौण कारण थी। द्वितीय अध्ययन ब्रेकिरिंज तथा अब्बाट द्वारा किया गया है। इस अध्ययन की उपलब्धियों की चर्चा करते हुए डॉ. बर्ट ने लिखा है कि सम्पूर्ण संख्या में अपराधी लड़कियों का नौ-दसांश एवं अपराधी लड़कों का तृतीय चतुर्थांश गरीब परिवारों से आते हैं। हीली के अध्ययन की आलोचना करते हुए डॉ. बर्ट कहते हैं कि अंग्रेजवाचक यह पाकर चकित हैं कि निर्धनता पर कितना कम बल दिया गया

है.....आठ सौ से अधिक पृष्ठों वाली पुस्तक में निर्धनता पर बहुत संक्षिप्त अनुच्छेद (पैराग्राफ) समर्पित किया गया है जिसमें 17 पंक्तियों से अधिक पंक्तियाँ नहीं प्रस्तुत की गई है।

उत्तरकालीन अध्ययन में हीली तथा उनकी पत्नी एवं सहयोगी डॉ. बुनर ने बर्ट के समान आर्थिक मापदण्ड का अनुमाप प्रयोग किया : (अ) अभावग्रस्तता, (ब) निर्धनता (स) सामान्य (द) सुखद, तथा (य) विलासिता। 675 बाल अपराधियों जिनका उन लोगों ने अध्ययन किया उनमें उन्होंने 5 प्रतिशत अभावग्रस्त वर्ग, 22 प्रतिशत निर्धन, 35 प्रतिशत सामान्य, 34 प्रतिशत सुखद वर्ग तथा 4 प्रतिशत विलासिता वर्ग के सदस्य पाये। अन्य शब्दों में 27 प्रतिशत केस निर्धन परिवार से आये थे। इस अध्ययन का सारांश प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं–

इस प्रकार आँकड़ों से स्पष्ट है कि 73 प्रतिशत सामान्य अथवा अच्छे परिवारों से आये हैं। अतः अपराधी प्रवृत्तियों को दूर करने के लिए आर्थिक प्रस्थिति के प्रभावों को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं दिया जा सकता है।

इन्हीं लेखकों ने 1936 में प्रकाशित अपनी पुस्तक न्यू लाइट आन डेलिक्वेन्सी एण्ड इट्स ट्रीटमेन्ट में यह दर्शाया कि अपराध के लिए न केवल निर्धानता उत्तरदायी है वरन् निकटवर्ती पड़ोसी दशाएँ, बुरे साथी, अस्वस्थ मनोरंजन आदि कारक भी उत्तर दायी हैं।

(ब) द्वितीय प्रकार के आँकड़े विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न आर्थिक प्रस्थितियों के बाल अपराध की तुलनात्मक दरों से सम्बन्धित है। आगबर्ग ने बासठ नगरों के तुलनात्मक अध्ययन में निर्धनता एवं गरीबी के मध्य एक महत्त्वपूर्ण साहचर्य पाया। शा तथा मैके ने प्रत्येक इक्कीस नगरों में आवासीय क्षेत्रों की तुलना में अपराध एवं निर्धनता के बीच अधिक एवं स्थिर सम्बन्ध पाया। उन्होंने आवासीय क्षेत्रों द्वारा बाल अपराध एवं बालिका अपराध की दरों के मध्य तथा बाल अपराध की दरों एवं वयस्क अपराध की दरों के मध्य भी बहुत उच्च धनात्मक सहसम्बन्ध पाया। लन्दन के एक नगर में मोरिस ने अपराध की दरों एवं जनाधिक्य वाले घरों के प्रतिशत के मध्य +.74 का सहसम्बन्ध तथा अपराध की दरों एवं मध्यम वर्गीय परिवारों के प्रतिशत के बीच –.76 का सहसम्बन्ध पाया। अपराध की दरों एवं निर्धनता की अन्य सूचियों के मध्य के सहसम्बन्ध यह भी निर्दिष्ट करते हैं कि अपराध निर्धनता के क्षेत्रों से सम्बन्धित है। उदाहरणस्वरूप, आपराधिक क्षेत्रों में मकानों के आर्थिक मूल्य कम हैं, आपराधिक दर किराएदारों में सम्पत्ति-मालिकों की अपेक्षा उच्चतर है तथा आपराधिक क्षेत्रों में मकानों की भौतिक दशा एवं सज्जा दयनीय है।

अपराध की सूचियों की विश्वसनीयता के सम्बन्ध में बारम्बार प्रश्न उठाए गए

हैं। आधिकारिक आपराधिक सांख्यिकी में सफदेपोश अपराधों को अन्तर्निहित नहीं किया गया है और इस कारण से वे आँकड़े अभिनतपूर्ण है। वर्तमान समय में सफेदपोश अपराध की दरों के सम्बन्ध में मात्रात्मक आँकड़ों को संकलित करना सम्भव नहीं है और इसलिए विभिन वर्गों के कुल आपराधिक व्यवहार की परिशुद्ध तुलना करना सम्भव नहीं है। इस सम्बन्ध में जब सफेदपोश अपराधों को समाविष्ट किया जाय तो इस निष्कर्ष पर कि अपराध निम्न आर्थिक वर्गों में केन्द्रित है सन्देह उत्पन्न करता है। रेकलेस का विश्वास है कि संयुक्त राष्ट्र में सामाजिक वर्गों में अपराध का वितरण द्विरूपात्मक हैं। वहाँ निम्न वर्ग के सदस्यों में अपराध की दर उच्च शिखर पर है। सामान्य अपराधों के लिए भी आर्थिक रूप से सम्पन्न व्यक्तियों के लिए विपन्न लोगों की अपेक्षा प्रशासकीय प्रक्रियाएँ अधिक अनुकूल होती हैं। एक अध्ययन परिणामों से यह स्पष्ट हुआ है कि प्रशिक्षण विद्यालयों की जनसंख्या में निम्नतर वर्ग के बालकों का प्रतिनिधित्व महत्त्वपूर्ण रूप से अधिक था, यद्यपि जब हाईस्कूल के विद्यार्थियों से उनके अपराधों को प्रतिवेदित करने के लिए कहा गया तब विभिन्न सामाजिक आर्थिक वर्गों में लड़कों एवं लड़कियों के अपराध में कोई महत्त्वपूर्ण भिन्नता नहीं पाई गई।

द्वितीयतः अपराध की दरों तथा व्यापारिक चक्र के मध्य के सम्बन्ध का अध्ययन किया गया है। अध्ययन जो एक शताब्दी से अधिक तक निरंतर होते रहे हैं, का सारांश एवं मूल्यांकन सेलिन द्वारा किया गया है। परन्तु उल्लेखनीय है कि इन अध्ययनों में जिन विधियों का प्रयोग किया गया है वे कभी भी वैज्ञानिक उपाय नहीं रही है तथा अपराध एवं व्यापार की दशाओं की सूचियाँ व्यापक रूप से इस अर्थ में भिन्न रही है कि किसी प्रकार का सकारात्मक, निश्चित, वैद्य व विश्वसनीय सामान्यीकरणों का निर्धारण नहीं किया जा सकता। इन अध्ययनों के निष्कर्ष इस प्रकार हैं–

(अ) मन्दी की अवधियों में गम्भीर अपराधों के बढ़ने की तथा सम्पन्नता की अवधियों में गिरने की प्रवृत्तियाँ नगण्य एवं असंगत प्रतीत होती है। डोरोथी थामस ने इंग्लैण्ड एवं वेल्स में 1857 से 1913 के दौरान सभी अभ्यारोप्य (Indictable) अपराध एवं न्यूयार्क राज्य में 1870 से 1920 के दौरान –.35 का गुणात्मक सहसम्बन्ध पाया तथा फेल्प्स ने रहोड द्वीप में 1898 से 1926 के दौरान –.33 का गुणात्मक सहसम्बन्ध पाया।

(ब) मन्दी की अवधियों में सामान्य अपराध की दर महत्त्वपूर्ण रूप से नहीं बढ़ती है।

(स) मन्दी की अवधियों में हिंसा सहित सम्पत्ति सम्बन्धी अपराधों में बढ़ने की प्रवृत्ति पाई जाती है, किन्तु हिंसा रहित सम्पत्ति सम्बन्धी अपराधों जैसे चोरी में मंदी की अवधियों में बढ़ने की बहुत नगण्य तथा असंगत प्रवृत्ति पाई जाती है। रेडजिनविक्स ने

1941 में पोलैण्ड में प्रारंभिक तीस वर्षों के दौरान मन्दी के वर्षों में सम्पत्ति के विरूद्ध अपराधियों में स्पष्टतः वृद्धि पाया। दीर्घकालीन समय तक किए गये अध्ययनों में इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध नहीं दर्शाये गये हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि बाह्य कारणों के कारण जैसे कानून एवं कानून प्रशासन में भिन्नताएँ दीर्घकालीन समय में कम भूमिका अदा करती है।

(द) कुछ अध्ययनों के अनुसार समृद्धि की अवधियों में मद्यासक्ति की प्रवृति बढ़ने लगती है किन्तु अन्य अध्ययनों के अनुसार कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं दर्शाया गया है। डोरोथी थामस ने इंग्लैण्ड में सन् 1857 से 1913 के दौरान मद्यासक्ति अभियोजन तथा समृद्धि के मध्य +.34 का सहसम्बन्ध पाया। किन्तु विन्सलों ने मैसाचुसेट्स में मद्यासक्ति अभियोजन एवं बेकारी के मध्य कोई महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध नहीं पाया।

(इ) व्यक्तियों के विरूद्ध अपराधों में व्यापार चक्र के साथ कोई संगतपूर्ण सम्बन्ध नहीं दर्शाया गया है। कुछ अध्ययनों में समृद्धि की अवधियों में वृद्धि होने का संकेत किया गया है तथा यह भी दर्शाया गया है कि मद्यसार के उपभोग में वृद्धि होने से व्यक्तियों के विरुद्ध अपराधों में भी वृद्धि हो जाती है।

(फ) सम्पन्नता की अवधियों में बाल-अपराध बढ़ जाता है तथा मन्दी के दौरान कम हो जाता है। एक आधुनिक अध्ययन में यह सुझाव दिया गया है कि बाल अपराध की संयुक्त सांख्यिकी यह भ्रान्तिपूर्ण विचार देती है कि सामान्य अपराध की दर (सभी आयु) मन्दी की अवधियों में परिवर्तित नहीं होती है।

अपराध तथा आर्थिक दशाओं के मध्य के सम्बन्ध के इन दो प्रकारों के अध्ययनों से निर्धनता तथा अपराध के बीच एक सामान्य सकारात्मक निष्कर्ष मुश्किल से ही निकाला जा सकता है। निर्धन वर्गों में अपराध की अधिक दर मिलने का कारण व्यक्तियों की निर्धनता नहीं है, किन्तु वे प्रशासकीय प्रक्रियाएँ हैं जो धनवानों के प्रति अधिक अभिनतपूर्ण होती है। अतएव जब निर्धन व धनवान वर्ग के दो व्यक्ति एक ही अपराध के लिए अभियुक्त हैं, निम्नतर वर्ग वाले अभियुक्त व्यक्ति के गिरफ्तार, अभियोजित व दण्डित होने की सम्भावना अधिक होती है। यही कारण है कि निम्नतर वर्ग में अपराध की दर अधिक और उच्चतर वर्ग में कम मिलती है। कानूनों का निर्माणव कार्यान्वयन मुख्यतः निम्न आर्थिक स्तर के व्यक्तियों के द्वारा किये गये अपराधों के सन्दर्भ में किया जाता है। इस प्रकार सदरलैण्ड का विचार है कि इससे निम्नलिखित नकारात्मक निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं -

प्रथमतः आधिकारिक सांख्यिकी अभिनतपूर्ण होती है क्योंकि इसमें सफेदपोश अपराधियों को समाविष्ट नहीं किया जा सकता है। गिरफ्तार करने के व्यवहार में

भिन्नताएँ होती है। निम्नतर वर्ग में अपराधों की संख्या को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है,आधिकारिक अपराध अभिलेखों के अतिरिक्त निम्नतर वर्ग की अत्यधिक अपराधिता का प्रमाण प्राप्त नहीं होता है। द्वितीयतः यदि आधिकारिक सांख्यकी को स्वीकार कर लिया जाता है वे परस्पर विरोधी निष्कर्ष देती है। इसके विपरीत, वे अध्ययन जो अपराधियों तथा अनपराधियों के आवासीय क्षेत्रों की तुलना प्रदर्शित करते हैं, के अनुसार आपराधिक व्यवहार निर्धनता तथा निम्न आर्थिक प्रस्थिति से संगतपूर्ण ढंग से सम्बन्धित होते हैं। किन्तु जबकि कालक्रमानुसारी अवधियों की तुलना की जाती है ये निर्धनता तथा निम्न आर्थिक प्रस्थिति से सम्बन्धित नहीं होते हैं अथवा असंगतपूर्ण ढंग से सम्बन्धित होते हैं।

इससे यह स्पष्ट होता है कि निर्धनता के कुछ निश्चित सामाजिक सहवस्तु होते हैं तो आपराधिक व्यवहार के लिए उत्तरदायी हैं न कि आर्थिक आवश्यकताएँ। आधुनिक नगर में निर्धनता का तात्पर्य है निम्न किराये वाले क्षेत्रों में पृथकवास, जहाँ लोग आपराधिक अवरोधी प्रतिमानों से पर्याप्त अंश में पृथक होते हैं तथा अनेक आपराधिक व्यवहार प्रतिमानों से सम्पर्क स्थापित करने के लिए बाध्य कर दिए जाते है। इसका सामान्य अर्थ होता है निम्न सामाजिक प्रस्थिति, निकृष्ट निवासी दशाएँ, बुरा स्वास्थ्य एवं अन्य भौतिक तथा शारीरिक दशाओं में घृणित तुलनाएँ। इसका तात्पर्य यह हो सकता है कि माता-पिता बहुत अधिक समय तक अपने घर से अपने बच्चों को सोते हुए छोड़ कर बाहर रहते हैं। जब बच्चे जाग जाते हैं अपने को अकेले मानकर रो रो कर थक जाते हैं एवं चिड़चिड़े या क्रोधी हो जाते हैं। इसका सामान्यतः यह तात्पर्य होता है कि बच्चों को शिक्षा पूर्ण करने का अवसर प्राप्त नहीं होता है, उन्हें विद्यालय से अत्यन्त आरम्भिक प्रवेश आयु में ही बुला लिया जाता है और धनार्जन करने के उद्देश्य से नीरस अकुशल व्यवसाय में प्रवेश करा दिया जाता है। छोटे नगरों में निर्धनता के ये सहवस्तु होते हैं। इसके विपरीत मन्दी के कारण अनेक लोगों के साहचर्यों में महत्वपूर्ण रूप से परिवर्तन नहीं होता है, यद्यपि इसके परिणाम स्वरूप किराए कम हो जाते हैं एवं परिवार के लोग सामान्यतः उन्हीं मकानों के निवासी होते हैं तथा प्रथम पूर्ववर्ती पड़ोसियों के साथ ही रहते हैं। सदरलैण्ड का विचार है कि निर्धनता इसलिए महत्वपूर्ण हो सकती है क्योंकि दरिद्रता में सामाजिक सहवस्तु संलग्न होते हैं। उच्च सामाजिक-आर्थिक वर्गों के लोग भी कानूनों का उल्लंघन उस समय करते है जबकि वे आपराधिक प्रतिमानों के सम्पर्क में होते हैं। आवश्यकताएँ अनिश्चित रूप से विस्तार्य प्रतीत होती है। तथा तृतीय मोटरकार की आवश्यकता अपराध करने के लिए प्रेरक का कार्य ठीक उसी प्रकार कर सकती है जिस प्रकार कि भूख मिटाने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार अपराध में आर्थिक कारकों के अध्ययन यह नहीं प्रकट करते हैं कि आर्थिक आवश्यकताएँ शारीरिक रूपों में मापित तथा सामाजिक परिभाषाओं से पृथक अपराध के कारणत्व में महत्वपूर्ण

भूमिका अदा करती हैं।

यह निष्कर्ष कि निर्धनता अपराध के कारणत्व में महत्वपूर्ण हैं मुख्यतः अनेक प्रकार के अध्ययनों द्वारा प्रमाणित किया जाता है कि वह आपराधिक प्रतिमानों के साथ साहचर्य अथवा आपराधिक विरोधी प्रतिमानों से अलगाव निर्धारित करती है। सिएटेल में जापानी कालोनी में जापानी बच्चों में युद्ध पूर्व की अवधि में बहुत निम्न अपराध दर थी, यद्यपि ये आसपास के क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के समान ही निर्धन थे। इसके अतिरिक्त कुछ निश्चित ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोग अत्यन्त निर्धन हो सकते हैं किन्तु उनमें अपराध की घटना बिरले ही घटती है। शा ने मीनेसोटा के 87 प्रदेशों में सहायता प्राप्त जनसंख्या के प्रतिशत तथा कार्य की तलाश में रहने वाली जनसंख्या के प्रतिशत तथा अपराधी पदों के मध्य सहसम्बन्ध स्थापित किया तथा अपराध की दर केवल +.213 पाया। इसके विपरीत प्रदेशों में नगरीकरण के अंश एवं आपराधिक दरों के मध्य उसने +.717 का सहसम्बन्ध पाया । शेल्डन ने यह अन्वेषित किया कि जब अन्य कारण स्थिर हो तो सामाजिक विघटन की सूचियों तथा बाल अपराध के मध्य महत्वपूर्ण सम्बन्ध होते हैं। प्रतिरूपी अमेरिकन नगर में निर्धन क्षेत्रों में लड़कियाँ लड़कों के समान ही विपन्न हैं किन्तु उनके अपराध की दर लड़कों के अपराध की दर की अपेक्षा काफी निम्नतर है। इसी प्रकार विपन्नता बिरले ही अपराध का कारण होती है। इस अवस्था में हजारों माता-पिता भूख को सहन कर लेते हैं। अदम्य उत्साह, धैर्य तथा निष्ठा एवं नैतिक क्षमता का परिचय देते है। और इन्हीं गुणों को अपनी सन्ततियों में भी संचारित करते हैं, परन्तु अपराध को ग्रहण नहीं करते। उन क्षेत्रों में भी बहुसंख्यक लोग अपराधशील नहीं होते हैं जिनमें जीवन की न्यूनतम सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं रहती हैं। चरम विपन्नता में भी किसी समूह के सदस्य कानूनों का उल्लंघन करने की अपेक्षा मृत्यु का वरण कर लेते हैं। सन 1943 ई0 में बंगाल के अकाल से यह बात पुष्ट होती है जिस धैर्य से बंगाली लोगों ने इस आपत्ति को सहन किया वह इतिहास में अद्वितीय है और पाश्चात्य विश्लेषकों के लिए भी एक रहस्य हैं

हिंसाओं को छोड़कर कुछ छोटे छोटे परम्परागत अपराध अर्थाभाव के कारण घटित हो सकते हैं। उपेक्षित तथा साधन विहीन क्षेत्रों में दरिद्रता एवं मनोरंजन के साधनों के अभावों के कारण बालकों व वयस्कों में नैराशय उत्पन्न हो सकता है। परन्तु वेश्यावृत्ति अथवा मोटर यानों की चोरी में मात्र क्षुधा के लिए निर्धनता कार्यरत नहीं दीख पड़ी है, बल्कि ईर्ष्या, आकांक्षा आदि का ही सर्वाधिक योग रहा है। अतएव निर्धनता के शत प्रतिशत उन्मूलन कर देने से भी अपराध का उन्मूलन सम्भव नहीं है। यह सम्भव है कि कानून के अनुपालन में वैसे व्यक्ति दत्तचित हो जाये जो सामान्यतः विपन्नता की स्थिति में अपराधी होते, परन्तु व्यक्तित्व की समस्याएँ, हिसाएँ ऐसी हैं जिसका कोई आर्थिक आधार नहीं होता है।

सामान्यतया समृद्धि भी अपराध की जननी होती है यह एक विडम्बना है परन्तु सम्पन्नता और विपन्नता की स्थितियों में अपराध के प्रकारों में अन्तर आ पड़ता है। अर्थात हिंसा या घात-प्रतिघात की घटनाएँ बहुधा समृद्धि की स्थिति में घटित होती है और सम्पत्तिमूलक अपराध विपन्नता की स्थिति में। बोगर ने भी इंग्लैण्ड, इटली तथा आयरलैण्ड जो क्रमशः धनी, कम धनी और बिल्कुल ही धनी नहीं थे, इन देशों की तुलना कर दिखलाया है कि अपराध स्तर सबसे अधिक प्रथम में था और सबसे कम अन्तिम देश में। अपराध के प्रकार, अपराध के तथ्य से विपरीत रूप में, आर्थिक प्रस्थिति से बहुत महत्वपूर्ण ढंग से सम्बन्धित हो सकता है। आर्थिक संरचना में किसी की स्थिति अवसरों, सुविधाओं तथा विशिष्ट अपराधों के लिए आवश्यक पटुता या प्रवीणता को निर्धारित करती है। अधिक से अधिक निर्धनता को हम अपराध का सहवर्ती मान सकते हैं।

सामान्यतः यह विश्वास है कि बेरोजगारी की, अपराध की दरों में एक महत्वपूर्ण भूमिका है। किन्तु प्रमाण के रूप में ऐसे बहुत कम अध्ययन प्रतिपादित किए गये हैं। **मेरी वान क्लीक** ने सिंगसिंग कारावास में भेजे गये 300 बंदियों के कार्य प्रस्थिति के अध्ययन परिणामों के आधार पर यह दर्शाया था कि 52 प्रतिशत कैदी अपराध करने के पूर्व कार्यरत नहीं थे।

बहुत मन्दी के दौरान एक अध्ययन **डोनाल्ड क्लेमर** द्वारा 'इलिनाइस' बन्दीगृह में रखे गये कैदियों पर किया गया। 800 रोजगार अभिलेखों का अध्ययन किया गया तथा यह पाया गया कि उनके अपराधों के लिए गिरफ्तारियों में केवल 11 प्रतिशत बेरोजगार थे।

केन्ट राइस तथा **डेनियल ग्लेसर** ने **जेम्स प्लान्ट** के अध्ययन का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए बाल अपराध तथा वयस्क अपराध को बेरोजगारी से सम्बन्धित करके निम्नलिखित दो प्राक्कल्पनाओं को विकसित किया है -

(अ) बाल अपराधियों द्वारा किये गये अपराधों की संख्या बेरोजगारों की दर से विलोम क्रम से सम्बन्धित है, तथा

(ब) वयस्कों द्वारा किये गये सम्पत्ति सम्बन्धी अपराधों की संख्या बेरोजगारी की दस से प्रत्यक्षतः सम्बन्धित है।

जेम्स प्लान्ट की पहली प्राक्कल्पना का आधार यह दिया जाता है कि बेरोजगारी के कारण पिता अधिक समय तक घर पर रहता है एवं उनके व्यवहार को भी नियंत्रित करता है जिस कारण पिता की बेरोजगारी का बच्चों की अपराध दर पर उल्टा ही प्रभाव पड़ता है तथा जितनी बेरोजगारी अधिक होगी उतनी ही बाल अपराध की दर कम होगी। अतः बाल अपराध एवं बेरोजगारी का एक दूसरे से विलोम सम्बन्ध है। दूसरी

ओर वयस्क अपराध में बेरोजगारी का प्रभाव उलटा ही मिलता है। वयस्कों में जितनी बेरोजगारी होगी उतनी ही उनके अपराध की दर अधिक मिलेगी।

कुमारोस्की ने **जेम्स प्लान्ट** की पहली प्राक्कल्पना को स्वीकार किया है। उनके अनुसार बेरोजगारी से पिता का सत्ताधिकार अपने बच्चों पर बढ़ता नहीं, किन्तु घटता है। सत्ता के घटने के कारण बालक अधिक समय घर से दूर रहते है एवं उनमें अपराध अधिक मिलता है। तथापि केवल यह तथ्य कि अपराध करते समय व्यक्ति नियोजित (कार्यरत) था अथवा बेरोजगार सम्पूर्ण इतिहास को नहीं बताता है। वस्तुतः नियमित नियोजन तथा उस नियोजन में संतोष एवं तथ्य है जो व्यक्ति के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं

द्वितीयतः बेरोजगारी के सम्बन्ध में विशुद्ध वैज्ञानिक आँकड़ों की उपलब्धि कठिन है चूँकि विभिन्न समयों पर नियोजन की विभिन्न श्रेणियाँ होती हैं - अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन आदि और उनका जीविका रहित अपराधियों से क्या आनुपातिक सम्बन्ध रहता है यह स्थिर करना सहज नहीं होता है। यह एक तर्क है कि युवकों को सामान्यतः बेरोजगार या निरोद्योगी रहने पर अपराधोन्मुख रहते पाया गया है, यद्यपि सभी राष्ट्रों में समान-सी स्थिति नहीं दीख पड़ती है। कभी कभी कार्य पद्धति को ही यांत्रिक कर देने से बेरोजगारी की समस्या विकट हो जाती है, एक यन्त्र कई व्यक्तियों के स्थान पर कार्य करने लगता है। इसमें भी अपराध के स्तर पर कुप्रभाव पड़ता है।

तृतीय, जो केवल अनियोजित या बेरोजगार है वे ही आपराधिक कृत्य नहीं करते, बल्कि जो कार्यरत रहते हैं वे भी अपराध करते है। व्यावसायिक मनोविज्ञान तथा अपराधशास्त्र में भी सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। श्रमिक वर्ग विशेषतः अकुशल, चोरी, गृहभेदन के लिए अन्य वर्गों से अधिक उत्तरदायी हैं तो मध्यम वर्ग तथा उच्च वर्ग सफेदपोश अपराध के लिए प्रसिद्ध हैं। व्यक्ति कौन सा व्यवसाय करता है, उस व्यवसाय का उसके व्यक्तित्व पर कैसा व कितना प्रभाव पड़ता है, आदि तथ्यों पर भी उसके क्रियाकलापों की प्रकृति निर्भर करती है। उस व्यवसाय में जो उनके अधीनस्थ अथवा शीर्षस्थ होते हैं उसकी निजी क्षमताओं के अनुकूल दायित्व उसे दिया जाता है या नहीं, फ़िर भविष्य में उसकी उन्नति की सम्भावना रहती है अथवा नहीं, उसमें उसका चित लगता है अथवा नहीं। ये सभी पक्ष विचारणीय है। इसमें किसी भी प्रकार का वैषम्य, क्षोभ तथा समाज विरोधी अभिवृत्तियों को उत्पन्न कर सकता है। जहाँ पेशे व व्यवसायों को चुनने का अवसर प्राप्त होता है वहाँ व्यक्ति अपनी इच्छाओं और अनिच्छाओं के अनुरूप व्यवसाय अपना सकता है अथवा अपना लेता है, इन प्रवृत्तियों के अनुसार वे प्रत्यक्षतः अथवा परोक्षतः व्यवसाय ग्रहण कर लेते हैं।

स्वभावानुकूल व्यवसाय मिल जाने से मनुष्य की आपराधिकता कभी-कभी परिष्कृत भी जाती है। कोई-कोई व्यवसाय ही स्वतः अपराधमूलक होता है। विशेषकर

MASY 09 108

उन व्यवसायों में जिनमें विष या दूसरों की सम्पत्ति के दायित्वों का निर्वाह करना पड़ता है। चिकित्सक, औषधि क्रय करने वाले, सेविकाएँ, घरेलू, बैंक लिपिक आदि इनमें परिगणित होते हैं। अधिकांश गम्भीर अपराध इनके सहयोग या सूत्र बतलाए बिना कभी भी सम्पन्न नहीं हो सकते हैं। पुनः बहुत से व्यवसाय ऐसे होते हैं जिनमें अपराधशीलता का स्वतः विलयन हो जाता है। अतएव कारावासों में बंदियों को इनकी प्रशिक्षा दी जाती है। एकरसता का प्राबल्य हो जाता है। कार्य निष्पादन में ही व्यक्ति को कोई तुष्टि नहीं प्राप्त होती है वरन् कभी-कभी दूसरे व्यवसाय अधिक आकर्षक प्रतीत होते हैं। कार्य का एक प्रमुख प्रकार्य होता है, मनुष्य की हिंसात्मक ऊर्जा तथा कामुकता का उदारीकरण। दुर्भाग्यवश, आज के श्रम-विभाजन विधान में यह उदारीकरण संभव नहीं होता है और मनुष्य निष्प्राण कार्य करता है। इसी प्रकार व्यवसाय को सतत बदलते रहना भी आज प्रमुख हो चला है। अपराधशास्त्री इसे बाल्यावस्था में ही उत्पन्न विद्यालयों से पलायन करने की प्रवृत्ति से सम्बन्ध जोड़ते हैं अर्थात इन दोनों मनोवृत्तियों में आपराधिकता के प्रस्फुटन के अभिलक्षण प्रकट रहते है।

4.3 अपराध तथा आर्थिक स्थिति के सन्दर्भ में अरस्तू तथा प्लेटो के विचार

प्रायः सभी विधिवेत्ताओं ने यह स्वीकार किया है कि आर्थिक स्थिति का अपराधों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। यूनान के विख्यात विचारक अरस्तू (Aristotle) ने इस सम्बन्ध में कहा है कि गरीबी के कारण देश में क्रान्ति का संकट उत्पन्न होता है जिसके फलस्वरूप अपराधों की संख्या में असाधारण वृद्धि होती है। उनके मतानुसार व्यक्ति अपराध केवल अपनी दैनिक आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए ही नहीं.करता, वरन् धन लोलुपता उसे अपराधी बनाती है। उनका निश्चित मत था कि मनुष्य की अधिकाधिक अर्जन करने की प्रवृत्ति ही उसे आपराधिकता की ओर खींचती है और वह अधिक से अधिक धन एवं वस्तुएँ अर्जित करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। अरस्तू ने आर्थिक विषमताओं को आपराधिकता का कारण निरूपित करते हुए कहा कि "आपराधिक कृत्य के पीछे अपराधी का उद्देश्य किसी आवश्यकता विशेष की पूर्ति न होकर, बिना परिश्रम किए अधिक से अधिक धन कमाना होता है। उल्लेखनीय है कि वर्तमान समय में मानव की भौतिकवादी प्रवृत्ति को देखते हुए अरस्तू के विचारों की यथार्थता सिद्ध हो जाती है। आज का मानव अन्न और वस्त्र जैसी जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के बजाय समाज में प्रतिष्ठा प्राप्ति की झूठी लालसा में टी.वी., वी.सी.आर., कार, फ्रिज, स्कूटर आदि जैसी भोग विलास की वस्तुओं को जुटाने की ओर अधिक ध्यान देता है यदि वह इन्हें अपने वैध साधनों से जुटाने में असमर्थ रहता है तो वह इन्हें अवैध तरीकों से प्राप्त करने से भी नहीं हिचकिचाता, जिन्हें अपराध कहा

जाता है। यही कारण है कि वर्तमान में हेराफोरी, गबन, भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी, बेईमानी आदि जैसे आर्थिक स्वरूप के अपराधों में असीमित वृद्धि हुई है। इसीलिए डोनाल्ड टेफ्ट (Donald Taft) ने कहा है कि अपराध समृद्धि को दर्शाने वाली घटना है न कि दरिद्रता का प्रतीक।

प्लेटो के विचार

सुप्रसिद्ध यूनानी विचारक प्लेटो (Plato) ने भी मानव की प्रलोभन या लालच (Greed or Temptation) की प्रवृत्ति को ही आपराधिकता का मुख्य कारण माना है। कालान्तर में वोल्टेयर (Voltare), रूसो (Rousseau), बाकेरिया तथा बेन्थम (Bantham) आदि विद्वानों ने भी प्लेटो के इस विचार का समर्थन करते हुए आर्थिक दुःस्थिति को अपराध का कारण माना। उनके अनुसार दरिद्रता, भुखमरी, अकाल, बीमारियाँ, धनी वर्ग के विरूद्ध जन आक्रोश आदि के कारण मनुष्य निराश होकर अनिच्छा से अपराध करने के लिए विवश हो जाता है। यही कारण है कि आर्थिक मन्दी की अवधि में अपराधों में अत्यधिक वृद्धि होती है।

4.4 अपराधों सम्बन्धी मार्क्सवादी विचारधारा

जैसा कि कथन किया जा चुका है, मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार अपराध और आर्थिक स्थिति प्रतिलोभी अनुपात (inverse proportion)में बदलते रहते हैं, अर्थात आर्थिक सम्पन्नता के समय अपराध कम और आर्थिक मन्दी के समय अपराध अधिक होंगे। परन्तु इस विचार का खंडन प्रायः इस आधार पर किया जाता है कि गत अनेक वर्षों से आर्थिक प्रगति निरन्तर हो रही है फिर भी अपराधों की संख्या में कमी होने के बजाय वे बढ़ते ही जा रहे हैं। संभवतः इसका कारण यह है कि मनुष्य की अर्जन क्षमता में भी वृद्धि होती जा रही है और वह धन के बल पर स्वयं को पुलिस या न्यायालयी कार्यवाही से बचाने में सफल हो जाता है। इसके अतिरिक्त सफेदपोश अपराध, जालसाजी, गबन, भ्रष्टाचार आदि कुछ ऐसे अपराध है, जो प्रायः धन के बूते पर ही होते हैं तथा इनमें से अनेक के घटित होने का पता भी नहीं चलता है। सारांश यह है कि वर्तमान स्थिति में आर्थिक सम्पन्नता और अवनति, दोनों ही आपराधिकता के लिए बराबरी से कारणीभूत हैं।

मार्क्सवादियों ने इस बात पर बल दिया है कि समाज में पूँजीवादियों का वर्चस्व ही आपराधिकता का प्रमुख कारण है। उच्च वर्ग के सम्पन्न लोग कमजोर एवं गरीब वर्ग के लोगों का शोषण करते हैं तथा उनके मानवीय अधिकारों का निर्भीकता से हनन करते हैं। समाज में पूँजी और श्रम का असमान विभाजन अन्ततोगत्वा धनी और गरीब वर्ग के अन्तरर्विरोध की स्थिति निर्मित करता है और धनाढ्य लोगों से टक्कर लेने के उपक्रम

में साधनहीन लोग कभी-कभी अपराध कर बैठते हैं। रिचर्ड क्यूनी (Richard Quinney) ने इस मार्क्सवादी विचारधारा का समर्थन करते हुए कहा है कि पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था अपराधजन्य समाज को जन्म देती है और जब तक यह समाजवादी व्यवस्था में परिवर्तित नहीं हो जाती, अपराधों में कमी होना सम्भव नहीं है। क्योंकि लोगों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकार केवल समाजवादी तन्त्र में ही सुरक्षित रह सकते हैं। उनका मानना है कि जब तक धनहीन एवं गरीब वर्ग के लोग शोषित बने रहेंगे कोई भी विधिक या दाण्डिक व्यवस्था अपराधों के निवारण में सफल नहीं हो सकती है क्योंकि आर्थिक शोषण और गहन असन्तोष ही आपराधिकता के प्रमुख कारण हैं। अतः क्यूनी के अनुसार पूँजीवादी व्यवस्था का समापन ही आपराधिकता की समस्या के निवारण का एकमात्र कारगर उपाय है।

आर्थिक स्थिति के आपराधिकता पर प्रभाव के सम्बन्धों को स्पष्ट करते हुए हर्मन मेनहेम (Hermann Mannheim) ने लिखा है कि यातायात सम्बन्धी अपराधों को छोड़कर, आपराधिक न्याय प्रशासन से सम्बन्धित विभिन्न संस्थाओं का तीन-चौथाई समय और शक्ति आर्थिक अपराधों से निपटने में व्यतीत होता है। इससे यह स्पष्ट है कि आपराधिकता में आर्थिक स्थिति का प्रत्यक्ष या परोक्ष योगदान अवश्य रहता है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में अपराध और आर्थिक स्थिति के सम्बन्धों का उल्लेख करते हुए डॉ0 मॉरीसन (Dr. Morrison) ने कहा है कि पुरातन वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ थी तथा इसमें प्रत्येक वर्ण या जाति का सदस्य आर्थिक दृष्टि से स्वयं को पूर्णतः सुरक्षित समझता था इसलिए अपराध बहुत कम होते थे। उनके विचार से प्राचीन हिन्दू समाज में वर्ण व्यवस्था का प्रादुर्भाव मूलतः श्रम-विभाजन (Division of Labour) या कार्य विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित होने के कारण सामाजिक एकात्मकता सुदृढ़ थी और समाज का प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से पूर्णतः सुरक्षित अनुभव करने के कारण अपराध करने से विमुख रहता था।

4.5 बोंगर का अपराध सम्बन्धी आर्थिक सिद्धान्त (Bonger's Economic Theory of Crimes)

आर्थिक स्थिति तथा आपराधिकता के परस्पर सम्बन्ध के सन्दर्भ में बोंगर (W.A. Bonger) के विचार विशेष उल्लेखनीय है। बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में विभिन्न समाजवादी तथा पूँजीवादी देशों की आर्थिक स्थिति तथा अपराधों के विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था ही आपराधिकता को प्रोत्साहन देती है क्योंकि इस व्यवस्था में व्यक्ति की स्वार्थी प्रवृत्ति को

पनपने का समुचित अवसर मिलता है। यहाँ तक कि यूगोस्लाविया तथा चीन जैसी साम्यवादी अर्थ-व्यवस्था में भी यह अनुभव किया गया है कि आर्थिक समता का सिद्धान्त अपराधों को रोकने में विफल रहा है इसीलिए सन 1987 में तत्कालीन सोवियत यूनियन (अब रूस) के राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बाच्योव (Mikhail Gorbachev) ने 'ग्लासनोस्ट' अर्थात आर्थिक स्वतंत्रता तथा 'पेरेस्टोइका' (Perestroika)जैसी सामाजिक पुनर्गठन की प्रजातान्त्रिक नीतियाँ लागू की थी।

आर्थिक स्थिति और आपराधिकता में सम्बन्ध को दर्शाते हुए बोंगर ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले -

(1) सांख्यिकी रिकार्ड के अनुसार लगभग 79 प्रतिशत अपराधी अलाभकारी वर्ग के होते हैं इसलिए गरीबी और अपराधों में निकट का सम्बन्ध है। बोंगर ने अपने शोधकार्य द्वारा सिद्ध कर दिखाया कि चोरी, डकैती, लूट, गृहभेदन आदि सम्पत्ति से सम्बन्धित अपराधों में आर्थिक मन्दी के समय विशेष वृद्धि होती है, जब कीमतें बढ़ी होती है।

(2) बोंगर के अनुसार पूँजीवादी व्यवस्था में व्याप्त आर्थिक असमानता के कारण आपराधिकता को बढ़ावा मिलता है। पूँजीपति तथा उद्योगपति धन संचय करने में लगे रहते हैं जिसके कारण कीमतों में कृत्रिम वृद्धि होती है। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन पर रोक लगती है जिससे मजदूर बेकारी का शिकार हो जाते हैं और बेरोजगारी के कारण आवारागर्दी, हिंसा, चोरी आदि अपराध पनपने लगते हैं।

बेरोजगारी और आपराधिकता के बीच निकट का सम्बन्ध स्थापित करते हुए ग्रेब्रियल टार्डे (Gabriel Tarde) ने कहा कि रोजगार अपराध का कट्टर शत्रु है। सदैव कार्य में व्यस्त रहने वाले व्यक्ति को अपराध जैसे कुकृत्य के बारे में सोचने का समय ही नहीं मिलता। साथ ही रोजगार मिल जाने पर उसकी सुप्त सामाजिक दायित्व की भावना जागृत हो जाती है। अतः इसमें सन्देह नहीं कि बेकारी के कारण अपराधों की संख्या बहुत बढ़ जाती है।

(3) पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था में मुद्रास्फीति एवं अवस्फीति के चक्र (Cycles of inflation and deflation) प्रायः आते रहते है। मुद्रास्फीति के कारण दिवालियापन और दरिद्रता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिनके कुप्रभाव के कारण लोगों में असामाजिक कृत्यों व अपराध करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है और वे आपराधिकता के शिकार हो जाते हैं।

(4) पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था की एक विशेषता यह भी है कि इसके अन्तर्गत उद्यमियों में व्यापारिक स्पर्धा के कारण कम लागत पर अधिक उत्पादन तथा अच्छी किस्म की वस्तुओं का निर्माण होता है परन्तु जब यह व्यापारिक स्पर्धा उग्र रूप धारण

कर लेती है, तो इसके दुष्परिणाम सामने आते हैं और उत्पादन में गिरावट के साथ-साथ उद्यमी ट्रेड मार्क, पेटेंट या कॉपीराइट के नियमों का उल्लंघन, जमाखोरी, एकाधिकार आदि जैसे अवैध तरीके अपनाने के लिए उद्यत हो जाते हैं जो अपराध के ही प्रकार हैं।

(5) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का एक अन्य दोष यह है कि इसके अन्तर्गत उद्यमियों द्वारा महिलाओं और बच्चों को श्रम कार्य पर लगाया जाता है ताकि कम मजदूरी में काम होता रहे। यद्यपि बच्चों से श्रम कार्य लिया जाना विधि द्वारा प्रतिबन्धित है परन्तु उद्योगपति इस कानून का सरेआम उल्लंघन करते हुए बच्चों से काम लेते रहते हैं। उल्लेखनीय है कि जहाँ एक ओर बच्चों को काम पर लगाया जाना स्वयं में एक अपराध है वहीं दूसरी ओर यह अन्य अपराधों के लिए कारणीभूत भी होता है। अबोध बालक पारिश्रमिक के रूप में जो पैसा कमाते हैं, वे अल्हड़पन के कारण उसका सदुपयोग करना नहीं जानते। अतः उसे जुआ, सट्टा, बीड़ी-सिगरेट जैसी व्यर्थ बातों में खर्च कर देते हैं जो अपचारिता के ही प्रकार हैं और आगे चलकर आपराधिकता के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न करते है।

महिलाओं का घर से बाहर काम पर जाने का बच्चों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है क्योंकि वे स्वयं को असहाय और उपेक्षित अनुभव करने लगते हैं। उन्हें माता-पिता का संरक्षण और स्नेह नहीं मिल पाता और उचित नियन्त्रण के अभाव में वे स्वच्छन्द प्रकृति के हो जाते हैं और यदाकदा कुसंगति में पड़कर अपराधी बन जाते हैं। इसके अलावा धन के प्रलोभन में आकर कामकाजी महिलाएँ कभी कभी स्वयं अनैतिकता का शिकार हो जाती हैं। इस सम्बन्ध में गिलिन ने ठीक ही कहा है कि जहाँ पुरूषों की बेरोजगारी, आपराधिकता का कारण हो सकती वहीं महिलाओं और बच्चों की रोजगारी (नियोजन) स्वयं में आपराधिकता का कारण बन सकती है।

आपराधिकता सम्बन्धी बोंगर के सिद्धान्त की आलोचना

बोंगर के आपराधिकता सम्बन्धी उक्त विचारों का कोहेन और गैरीफेलो ने निम्नलिखित आधारों पर खण्डन किया है -

(1) चार्ल्स गोरिंग ने लगभग तीन हजार अपराधियों के व्यवसाय और आपराधिकता के आंकड़ें एकत्रित करके यह निष्कर्ष निकाला कि गरीबी और अपराधों की पुनरावृत्ति में विशेष सम्बन्ध नहीं है। उनके अनुसार सापेक्ष समृद्धि (relative prosperity) भी अपराध की दर में कमी का आधार नहीं है। गोरिग का मत था कि कृषक श्रमिक, नौसैनिक आदि प्रायः आगजनी, तोड़फोड़ या लैंगिक अपराध अधिकता से करते हैं जबकि उद्यमी और व्यापारी वर्ग के लोगों द्वारा ये अपराध प्रायः नहीं किये जाते । इनके अपराध बहुधा अर्जन की लालसा से सम्बन्धित होते हैं। कोहेन ने भी गरीबी को आपराधिकता का आवश्यक अंग नहीं माना है क्योंकि अनेक व्यक्ति धनहीन होने पर

भी सदाचारी और ईमानदार होते हैं और विभिन्न कष्ट झेलते हुए भी अपना सदाचरण नहीं त्यागते।

(2) ग्रेब्रियल टार्डे के मतानुसार अधिकांश अपराध व्यापारिक या औद्योगिक समृद्धि के कारण न होकर सम्पत्ति के असमान वितरण तथा मनुष्य की भोगविलास और ऐश्वर्य के प्राप्ति की लालसा के कारण होते है। मानव की अधिक धन अर्जित करने की लालसा उसे अपराध करने के लिए प्रेरित करती है लेकिन इसके साथ अन्य परिस्थितिजन्य कारण होने पर ही वह अपराध करता है।

(3) अनेक अपराधशास्त्रियों ने आपराधिकता सम्बन्धी बोंगर के आर्थिक सिद्धान्त (Bonger's Economic Theory of Crime) का खण्डन इस आधार पर भी किया है कि यदि केवल गरीबी ही अपराध का कारण होती तो धनवान और समृद्ध लोगों द्वारा आयकर या बिक्रीकर की चोरी, झूठे हिसाब, जमाखोरी आदि अपराध न किये जाते। अतः बोंगर का सिद्धान्त उचित प्रतीत नहीं होता है। निवेदित है कि गरीबी के कारण सभी व्यक्तियों की सच्चाई, ईमानदारी, न्याय आदि की भावनाएँ लुप्त नहीं हो जातीं, वस्तुतः ये ऐसे गुण है जिनका रूपये पैसे से कोई सरोकार नहीं होता है।

उक्त कथन की पुष्टि में मार्च 2001 में भारत के जाने माने शेयर दलाल हर्षद मेहता द्वारा किये करोड़ों रूपयों के स्टाक मार्केट घोटाले का उल्लेख किया जा सकता है जिसके परिणामस्वरूप शेयर बाजार में खलबली मच गयी और अनेक प्रतिष्ठित बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं को आर्थिक हानि भुगतनी पड़ी। इस घोटाले की जाँच हेतु संसद ने अप्रैल 2001 में एक तीस सदस्यीय संयुक्त संसदीय समिति (JPC) का गठन किया था जिसमें 20 लोकसभा एवं 10 राज्य सभा के सदस्य थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि अपराधों के लिए केवल गरीबी या धनाभाव कारणीभूत न होकर मानव की लोभी प्रवृत्ति ही इसका वास्तविक कारण है। यही कारण है कि बड़े-बड़े धनाढ्य एवं करोड़पति लोग भी धन कमाने की लालच में आपराधिकता में लिप्त रहते हैं। बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री श्री लालू प्रसाद यादव तथा डॉ. जगन्नाथ प्रसाद मिश्र का करोड़ों रूपये के चारा घोटाले (Fodder Scam) में कथित रूप से हाथ होना तथा सन 2001 के तहलका प्रकरण में भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष बंगारू लक्ष्मण तथा समता पार्टी नेता जया जेटली द्वारा सुरक्षा सम्बन्धी सौदे में भ्रष्टाचार की वारदात इसके अन्य उदाहरण हैं।

(4) पूँजीवाद और आपराधिकता के सम्बन्ध में भी बोंगर के विचार पूर्णतः सही नहीं हैं क्योंकि एकाधिकार जैसी बुराइयों को दूर करने के लिए समाजवादी नीतियाँ भी असमर्थ रही हैं। राष्ट्रीयकृत की नीति तथा आर्थिक और औद्योगिक क्षेत्र में सरकारी नियंत्रण भी इन क्षेत्रों में अधिकतर होने वाले अपराधों को रोकने में विफल रहे हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में बैंकों, रेलों तथा वित्तीय संस्थाओं के राष्ट्रीयकरण के दुष्परिणाम तथा

कार्यक्षमता में गिरावट से सभी परिचित हैं। यही कारण है कि इनके पुनः निजीकरण की संभावनाएँ बढ़ गई हैं। समाजवादी व्यवस्था में राष्ट्रीयकरण या सरकारी नियन्त्रण का अर्थ यह होता है कि प्रबन्धन का कार्य सरकारी तन्त्र को सौंप दिया जाए। लेकिन उल्लेखनीय है कि सरकारी अधिकारी भी तो आखिर व्यक्ति ही होते हैं। अतः यह कैसे कहा जा सकता है कि वे अपनी अर्जन की लालसा पर काबू पा लेंगे। दूसरे, सरकारी तन्त्र में लाभ का उद्देश्य पूर्णतः समाप्त हो जाने के कारण इससे सम्बन्धित लोगों में कार्य के प्रति लगाव या रूचि नहीं रहती, इसीलिए अधिकांश सरकारी उद्योग बहुधा घाटे में ही चलते है। इसके अतिरिक्त उत्तरदायित्व के अभाव में इन व्यक्तियों के कार्य-कलापों पर विशेष नियन्त्रण या अंकुश भी नहीं रहता है। तात्पर्य यह है कि पूँजीवादी व्यवस्था की भाँति समाजवादी व्यवस्था में भी अपराध उतने ही पनपते हैं, अन्तर केवल यह है कि इन दोनों व्यवस्थाओं में घटित होने वाले अपराधों के स्वरूप भिन्न भिन्न होते हैं। जहाँ पूँजीवादी व्यवस्था में आर्थिक अपराधों की बहुलता रहती है वहीं समाजवादी व्यवस्था में राजनैतिक, धार्मिक तथा राज्य विरोधी अपराधों की अधिकता रहती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मनुष्य द्वारा अपराध उसकी वैयक्तिक प्रवृत्तियों के कारण किये जाते हैं इसलिए राष्ट्रीयकरण या सरकारी नियन्त्रण द्वारा आर्थिक परिवर्तन करके इनका निवारण संभव नहीं है। यह ठीक है कि समाजवादी व्यवस्था में स्वार्थ-निहित अपराधों की गुंजाइश नहीं रहती, फिर भी यह सोचना कि इसमें आपराधिकता का पूर्ण अभाव है, गलत होगा, क्योंकि लाभ के अभाव में कार्य शिथिलता बढ़ेगी और अरूचि के कारण इसमें लगे हुए लोग धन कमाने के लिए अन्यत्र मार्ग खोज निकालेंगे जो अवैध भी हो सकते है।

सारांश यह है कि गरीबी और अपराध, ये दोनों ही समाज की अवश्यंभावी बुराइयाँ हैं। जिस प्रकार किसी भी प्रकार की अर्थ व्यवस्था में गरीबी को पूर्णतः नहीं मिटाया जा सकता, उसी प्रकार अपराधों को भी पूर्णतः समाप्त नहीं किया जा सकता। तथापि उन्हें कम अवश्य किया जा सकता है।

4.6 अपराध तथा आर्थिक स्थिति के सन्दर्भ में न्यायिक दृष्टिकोण

गरीबी और अपराधों में परस्पर सम्बन्धों के सन्दर्भ में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा निर्णीत इन रि मारगेथम का वाद उल्लेखनीय है। इस वाद के अभियुक्त पति-पत्नी थे जो दस दिनों तक बिना किसी आजीविका के साधन के भूख से व्यथित थे। अतः जीवन से त्रस्त होकर दोनों ने अपने डेढ़ वर्षीय नन्हीं पुत्री सहित रस्सी बांधकर कुएँ में कूदकर जाने देने का प्रयास किया। जैसे ही उन्होंने कुएँ में छलाँग लगाई, कुछ लोगों नें उन दोनों को बचा लिया लेकिन उनकी नन्हीं पुत्री की डूबने के कारण मृत्यु हो गयी।

दोनो अभियुक्तों को स्वयं की आत्महत्या तथा बालिका की हत्या के प्रयास के लिए धारा 307/309/34 (भा.द.सं.) के अधीन दोष सिद्धि की गयी तथा न्यायालय ने धनहीनता के कारण जीवन समाप्त करने के लिए विवश होने की उनकी दलील को अस्वीकार कर दिया।

श्री रंगी बनाम मद्रास राज्य के एक अन्य वाद में अभियुक्ता एक परिश्रमी लेकिन अभागिन महिला थी। उसे पति ने त्याग दिया था अतः वह अपने पाँच बच्चों सहित साधनहीन जीवन बिता रही थी और पूरी कोशिश करने पर भी उसे जीवन निर्वाह के लिए कोई काम या साधन उपलब्ध नहीं हुआ। उसके सबसे छोटे बच्चे की बीमारी तथा उसके इलाज हेतु डॉक्टर द्वारा बड़ी रकम की माँग के कारण उस महिला की आर्थिक दशा और बिगड़ गई तथा जीवन निर्वाह के सभी वैध प्रयास विफल होने के परिणामस्वरूप उसने अपने पाँच बच्चों को कुएँ में डुबोकर मार डाला तथा स्वयं कुएँ में कूद पड़ी लेकिन बचा ली गई। न्यायालय ने उसे धारा 302 (भारतीय दण्ड संहिता) के अधीन बच्चों की हत्या के लिए दोषी ठहराया तथा उसकी गरीबी की दलील अस्वीकार कर दी।

समाज के गरीब एवं साधनहीन वर्ग के लोगों के प्रति न्यायपालिका की संवेदना गौहाटी उच्च न्यायालय द्वारा निर्णीत बावदास बावरी बनाम असम राज्य के वाद में प्रतिबिम्बित होती है। इस प्रकरण में अपीलार्थी पिछड़े वर्ग का एक साधनहीन अपंग (disabled) व्यक्ति था जिसे भारतीय जिसे भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के अधीन सिद्धदोष पाया जाने के कारण आजीवन कारावास से दण्डित किया गया था। उसने एक शक्तिशाली विपक्षी (strong adversory) से जूझते समय अपनी प्रतिरक्षा में छोटे चाकू (Pen-knife) का प्रयोग किया था। विपक्षी व्यक्ति उस पर बाँस से हमले कर रहा था। दुर्भाग्यवश इस दौरान अपीलार्थी के चाकू के घाव के कारण विपक्षी की मृत्यु हो गई। गौहाटी उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी की प्रतिरक्षा की दलील को स्वीकार करते हुए अभिकथन किया कि अभियोजन द्वारा पूरे मामले को मंथरगति से हल किये जाने के कारण गरीब अपीलार्थी को त्वरित न्याय से वंचित रहना पड़ा। न्यायमूर्ति लाहोटी (बाद में देश के प्रधान न्याशधीश अब सेवानिवृत्त) ने अपने निर्णय में कहा कि अभियोजन को गरीबों के प्रति असंवेदनशील नहीं रहना चाहिए और यदि यह पाया जाता है कि अभियुक्त के विरूद्ध लगाये गये आरोप निराधार एवं वास्तविकता से परे है तो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 321 के अन्तर्गत प्रकण वापस ले लिया जाना चाहिए।

जगन्नाथ बनाम राज्य के वाद में अपीलार्थी पेराम्बूर का एक गरीब किसान था जिसे गाँव के एक झगड़े के सिलसिले में पुलिस हिरासत में लिया गया था। पुलिस

ने अपीलार्थी के विरूद्ध आरोप-पत्र दाखिल करने में एक वर्ष से अधिक समय लगाया जिस दौरान अपीलार्थी का जीवन दूभर हो गया और उसे अपने बचाव हेतु अपनी दो एकड़ भूमि तथा दूध के व्यवसाय से भी हाथ धोना पड़ा। इसके परिणामस्वरूप उसकी पत्नी तथा तीन बच्चे भी बेसहारा हो गये। अपीलार्थी को इन यातनाओं से मुक्ति तभी मिली जब उसके भाई ने उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण याचिका दायर की और वह न्यायालय द्वारा स्वीकार कर ली गई। इस गरीब अपीलार्थी के प्रकरण से न्यायाधीश महोदय इतने द्रवित हुए कि उन्होंने अपने निर्णय में पुलिस को निर्देश दिया कि ऐसे सभी मामले जिनमें पुलिस ने प्राथमिकी (FIR) को छः माह से अधिक अवधि तक लम्बित रखा है, तत्काल खारिज किये जायें।

4.7 निष्कर्ष

उल्लेखनीय है कि समाज के आर्थिक स्वरूप और आपराधिकता के परस्पर सम्बन्धों के विषय में विद्वानों में मतभेद होने के बावजूद इन्हें दूर करके एक सर्वमान्य हल ढूँढने का वास्तविक प्रयास अब तक नहीं किया गया है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आर्थिक स्थिति का अपराधों पर प्रभाव इतना निश्चित है कि इसके बारे में कोई एक निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि अपराध के विभिन्न कारणों में आर्थिक स्थिति भी एक कारण हो सकती है। जिसका थोड़ा बहुत प्रभाव आपराधिकता पर अवश्य पड़ता है। दूसरे शब्दों में, केवल प्रतिकूल आर्थिक स्थिति को अपराधों का कारण मानना अनुचित होगा। यह भी उल्लेखनीय है कि आर्थिक नीति एवं मान्यताएँ स्वयं परिवर्तनशील होने के कारण इनमें स्थिरता का अभाव है। यद्यपि समाज में मानव के आचरण पर आर्थिक नीतियों का गहरा प्रभाव पड़ता है। परन्तु ये नीतियाँ स्वयं सामाजिक व सांस्कृतिक कारकों पर निर्भर करती है। अतः इनका केवल सापेक्ष (Relative) महत्व है । आर्थिक गतिविधियों पर कानूनी नियन्त्रण अपराधों को कुछ सीमा तक प्रभावित अवश्य करेगा लेकिन इससे यह अपेक्षा करना व्यर्थ होगा कि आपराधिकता पूर्णतः समाप्त हो जायेगी।

ज्ञातव्य है कि वर्तमान भौतिकवादी आधुनिकीकरण के कारण अपराध की अवधारणा ही बदल गई है। अतः आज सामाजिक-आर्थिक अपराधों की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है जिनमें जमाखोरी, कालाधन, करों की चोरी, तस्करी आदि प्रमुख है। इन अपराधों को रोकने में सामाजिक विधायन (social legislations) असमर्थ रहे हैं। इसीलिए अब COFEPOSA तथा FERA आदि जैसे कानूनों को अधिक सख्ती से लागू किया जा रहा है तथा इनके उल्लंघन के लिए दण्ड की मात्रा भी बढ़ी दी गई है। इन अपराधों से देश की आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः यह आवश्यक है कि कानून के प्रवर्तन से सम्बन्धित सभी संस्थाएँ एकजुट होकर इन आर्थिक

अपराधों की रोकथाम के लिए संगठित प्रयास करें।

ज्ञातव्य है कि मार्च 2001 में केन्द्रीय जांच ब्यूरो ने करोड़ों रूपये के घोटाले में लिप्त एक ऐसे आपराधिक रैकेट का भण्डाफोड़ किया था जो कोलकाता, चेन्नई तथा पोर्ट ब्लेयर के अनेक सार्वजनिक बैंकों से सम्बन्धित था। इसमें यह पाया गया था कि भारतीय क्रिकेट टीम के कप्तान सौरव गांगुली, सुविख्यात मॉडल मिलिन्द सोमन, रिया पिल्लई, फिल्म निर्माता डेविड आजाद जैसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों के नाम बड़ी धनराशि की फर्जी फिक्स्ड डिपाजिट बनवा कर सार्वजनिक निधि को हड़पने की कोशिश की गई थी। जांच के बाद पता चला कि इस प्रकार हड़पे गये 7.75 करोड़ रूपये का फरवरी, 1997 से जुलाई 1997 की अवधि में दुर्विनियोग किया गया था। केन्द्रीय जांच ब्यूरो के अनुसार यह राशि कुल हड़पी गयी राशि का एक छोटा सा अंश मात्र थी, अतः इससे इस घोटाले के गम्भीर दुष्परिणामों का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

निवेदित है कि आधुनिकीकरण तथा बढ़ती हुई भौतिकवादी प्रवृत्ति ने अपराध सम्बन्धी धारणाओं को ही बदल दिया है। यही कारण है कि सामाजिक-आर्थिक अपराधों में भी असीमित वृद्धि हुई है। वर्तमान कम्प्यूटरीकरण के युग मे साइबर अपराधों के साथ-साथ व्यावसायिक एवं आर्थिक घोटालों की संख्या दिनोदिन बढ़ रही है। आज बड़े बड़े व्यवसायियों, करोड़पतियों, उच्चाधिकारियों तथा राजनेताओं एवं मंत्रियों को आपराधिकता में लिप्त देखते हुए यदि यह कहा जाए कि बोंगर के सिद्धान्त के अन्तर्गत इनका कोई सटीक उत्तर उपलब्ध नहीं है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगा। इन लोगों के पास धन की कोई कमी नहीं होने पर भी वे भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, लेनदेन, में धोखाधड़ी आदि जैसे आर्थिक अपराधों में लिप्त क्यों हैं यह प्रश्न आज भी अनुत्तरित है। यह सर्वविदित है कि भारत में भ्रष्टाचार राष्ट्रीय स्तर पर फैल चुका है और लोगों में इसके प्रति गम्भीरता समाप्त प्राय हो चुकी है । वस्तुस्थिति यह है कि यह आम धारणा बन गई है कि अपना काम बिना कठिनाई के शीघ्रता से करा लेने हेतु भ्रष्टाचार जैसा कोई सुलभ मार्ग नहीं है। केवल यही नहीं, इसमें उभय पक्षों का हित अन्तर्निहित होने के कारण पकड़े-पकड़ाये जाने का डर भी नहीं रहता है और यदि यदाकदा पकड़े भी जायें तो पर्याप्त साक्ष्य के अभाव में दोषमुक्त होकर छूटने की शत प्रतिशत सम्भावना रहती है। यही कारण है कि सन 1988 में भ्रष्टाचार निवारक कानून को अधिक कठोर बना दिये जाने के बावजूद भ्रष्टाचार का निवारण नहीं हो सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस प्रकार के आर्थिक एवं सामाजिक अपराध केवल दण्डात्मक कानून पारित कर देने मात्र से नियन्त्रित नहीं किये जा सकते हैं जब तक कि इनके विरूद्ध जन चैतना जागृत न की जाए। इसीलिए प्लेटो और अरस्तू जैसे

महान दार्शनिकों ने सदियों पूर्व कहा था कि लालच और प्रलोभन मानव स्वभाव के अन्तर्निहित लक्षण है। जो व्यक्ति को आपराधिकता की ओर आकर्षित करते हैं, अतः इन्हें कानूनों की बजाय नैतिक शिक्षा के प्रसारण से ही नियन्त्रण में लिया जा सकता है।

4.8 प्रश्न

वस्तुनिष्ठ

1. अपराध के मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार अपराध और आर्थिक स्थिति प्रतिलोभी अनुपात में बदलते रहते हैं? सत्य/असत्य

2. प्लेटो ने मानव की लालच को ही अपराध का प्रमुख कारण माना है? सत्य/असत्य

लघु उत्तरीय

1. आर्थिक मंदी और अपराध पर एक टिप्पणी लिखें?

2. आर्थिक कारण तथा अपराध के विषय पर प्लेटो तथा अरस्तू के विचार बतायें।

दीर्घ उत्तरीय

1. अपराध के आर्थिक सिद्धान्त में बोंगर के योगदान की आलोचनात्मक व्याख्या करें।

2. अपराध तथा आर्थिक स्थिति एक दूसरे के पूरक है। इस कथन की आलोचनात्मक व्याख्या करें।

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. W.A. Bonger (1916), Criminology and Economic Conditions, Little Brown, Boston.

2. William Llyod Warner and Paul S. Lunt (1941). The Social life of a Modern Community. Yale University Press, New Haven.

3. Preven Wolf (1968). Quoted in Principles of Criminology, E.H. Sutherland and D.R. Cressey. The Times of India Press, Bombay.

4. Cyril Burt (1938), The young Delinquent, University of London Press, London.

5. W.F. Ogburn, "Factors in the Variation of crime Among cities," Journal of the American Statistical Association, 1935. March , Vol. 30 pp. 12-34 see also James E. Mokeown "Poverty, Race and Crime" Journal of Criminal law and Criminology, 1948, Nov.-Dec. Vol. 39.

6. Clifford R. Shaw and Henry D. Mckay (1942), Juvenile Delinquency and Urban Areas, University of Chicago Press, Chicago.

7. Edwin H. Sutherland and Donald R. Cressey (1968), Principles of Criminology, the times of India press, Bombay.

8 Talcott Parsons (1979), The Social System, Amerind, New Delhi.

9. Robert G. Caldwell (1956), Criminology, Ronald Press, New York.

10. Jones, Stephen (2009), Criminology, Oxford university Press, NewYork.

11. Singh, Shyamdhar (2008), Theories of Criminology, Sapna Ashok Prakashan, Varanasi.

12. Raranjape, N. V (1999), Criminology and Penology, Central Law Publications, Allahabad.

इकाई -5 : अपराध का समाजशास्त्रीय तथा सांस्कृतिक सिद्धान्त

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 अपराध की व्याख्या का सामाजिक संरचना का सिद्धान्त : दुर्खीम, मर्टन

5.3 सदरलैण्ड का विभेदक साहचर्य का सिद्धान्त

5.4 अपराध का सांस्कृतिक सिद्धान्त

5.4.1 अपराध का सांस्कृतिक संघर्ष का सिद्धान्त

5.4.2 अपराधी उपसंस्कृतिक का सिद्धान्त

5.5 प्रश्न

5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त

- अपराध के समाजशास्त्रीय तथा सांस्कृतिक सिद्धान्तों के बारे में जान सकेंगे।
- दुर्खीम, मर्टन तथा सदरलैण्ड के सिद्धान्तों के साथ-साथ सांस्कृतिक सिद्धान्तों के बारे में भी समझ सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

अपराध का समाजशास्त्रीय सिद्धान्त अपराध के अन्य सिद्धान्तों से पूर्णतया भिन्न है। इस सिद्धान्त का प्रस्फुटन समाजशास्त्रीय चिन्तन धारा के विकास द्वारा हुआ है। इस सिद्धान्त की मान्यता है कि अपराध का प्रमुख उदगम स्रोत सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण है। सामाजिक सांस्कृतिक पर्यावरण ही मनुष्य को अपराधोन्मुख करता है। सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण में ही आपराधिक व्यवहार अर्जित किया जाता है और यह संचार प्रक्रिया के संदर्भ में अन्य व्यक्तियों के साथ अन्तर्क्रिया के माध्यम से सीखा जाता है। रूथ एस. कैवेन का मत है कि - "समाजशास्त्री, ... प्रारूपिक अपराधी और गैर अपराधी की अपेक्षा भावात्मक ढंग से अधिक या कम विघटित नहीं मानता है आपराधिक व्यवहार सामूहिक साहचर्य द्वारा उसी प्रकार सीखा जाता है जिस प्रकार नम्रता, टेनिस अथवा साहूकारी साहचर्य के अन्य प्रकारों द्वारा सीखी जाती है, तथा उन्हीं कारणों के लिए सहचारिता, सहभागिता एवं स्वीकृति के लिए सामान्य इच्छा होती है। प्रो.

वाल्टर सी रेकलेस का विचार है कि "अपराध प्रजातिगत व्यवहारिक प्रघटना नहीं है।" प्रत्युत इसकी व्याख्यां केवल "व्यवहार के विभिन्न अनुक्रमों के रूप में" की जा सकती है। रेकलेस का मत है कि आपराधिक व्यवहार दोषपूर्ण सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम है।

अपराध के समाजशास्त्रीय सैद्धान्तीकरण के क्षेत्र में उन चिन्तकों का सबसे अधिक प्रभाव रहा है जो यद्यपि पेशेवर समाजशास्त्री नहीं थे किन्तु जिन्हें इस विचारधारा का पोषक कहा जा सकता है विवेचना से पता चलता है कि उन्नीसवी शताब्दी के अनेक यूरोपीय चिन्तक यद्यपि जो वास्तव में किसी सिद्धान्त विशेष से सम्बन्धित नहीं थे, तथापि उन्होंने अपराध को सामजिक पर्यावरण का प्रकार्य माना है। जर्मनी में वान लिस्ज (Liszt), बेल्जियम में प्रिंस (Prins), हालैण्ड में वान हैमेल (Van Hamel) और रूस में फ्वान्टस्की (Fointsky) ऐसे ही चिन्तक थे। लोम्ब्रोसा के समकालीन फ्रेंच समाज मनोवैज्ञानिक टार्डे ने इन चिंतकों की चिंतनविधा को समाजशास्त्रीय स्वरूप प्रदान करते हुए अपराध के कारणों की व्याख्या में जैविकीय सिद्धान्त की चिंतनविधा को समाजशास्त्रीय स्वरूप प्रदान करते हुए तथा अपराध के कारणों की व्याख्या में जैविकीय सिद्धान्त का खण्डन करते हुए "अनुकरण" के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। उनका मत था कि मनुष्य का व्यवहार उसके समाज की प्रथाओं के अनुरूप होता है। यदि कोई चोरी अथवा हत्या करता है तो वह मात्र किसी अन्य का अनुकरण ही करता है।

टार्डे वह प्रथम अपराधशास्त्री माना जा सकता है जिसने कि कारणता की व्याख्या सामाजिक हेतुकों के सन्दर्भ में की थी, जबकि उनके समकालीन अध्येता अपराधियों के शारीरिक लक्षणों के आधार पर अपराध की कारणता का स्पष्टीकरण कर रहे थे। सीजर लोम्ब्रोसो को जिस प्रकार वैज्ञानिक अपराधशास्त्र का जनक माना जाता है उसी प्रकार टार्डे को सामाजिक मनोविज्ञान का पिता माना जाता है। टार्डे का अभिमत था कि सामाजिक दृष्टिकोण से अपराध एक राक्षसी-कृत्य हो सकता है, किन्तु वह वैयक्तिक अथवा आवयविक (आंगिक) दृष्टिकोण से ऐसा नहीं है, क्योंकि समाज के रोधकों (Brakes) पर अहंवाद (Egoism) तथा शारीरिक-संरचना अथवा जीवन (Organism) की यह एक विशुद्ध विजय है। वह व्यक्ति जो वास्तविक अर्थों में एक जन्मजात अपराधी है एक उत्तम कोटि के पशु से कुछ भी अधिक नहीं है, वह अपने मूल-वंश अथवा प्रजाति का एक नमूना है। टार्डे का मत था कि अपराधी और गैर-अपराधी के बीच कोई विधि नहीं होती है। आपराधिक व्यवहार अनुकरण ही प्रक्रिया का परिणाम है। कोई व्यक्ति उसी प्रकार आपराधिक आचरण सीखता है जिस प्रकार बाल्यावस्था में वह अन्य बातों को सीखता है। उनका विचार था कि व्यक्ति सामाजिक

रीति-रिवाजों के अनुसार व्यवहार करता है। यदि एक व्यक्ति कुछ चुराता है या हत्या करता है तो किसी का अनुकरण करने के पश्चात ही करता है।

अपराध की कारणता की समाजशास्त्रीय व्याख्या की लोकप्रियता को बढ़ाने का श्रेय अमेरिकी समाजशास्त्रियों को है जिनका मत था कि आपराधिक व्यवहार उन्हीं प्रक्रिया के परिणाम है। जिनमें अन्य सामाजिक व्यवहार होते हैं (Criminal behaviour results from the same processes as other social behaviour)

इन प्रक्रियाओं से सम्बन्धित अपराधियों का विश्लेषण दो प्रकार से किया गया है। प्रथमतः समाजशास्त्रियों ने अपराध-दर की विविधता (Variation) को सामाजिक संरचना व संगठनों की विविधताओं से सम्बन्धित करने का प्रयास किया है। निम्नलिखित कुछ सामाजिक दशाओं की विविधताओं को समाजों व उप समाजों की अपराध दर की विविधताओं से सम्बन्धित करने का विषय बनाया गया है गतिशीलता की प्रक्रियाएँ, सांस्कृतिक संघर्ष, प्रतियोगिता, स्तरीकरण, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक वैचारिकी, जनसंख्या का घनत्व तथा बनावट तथा धन, आय एवं रोजगार वितरण। इधर हाल के वर्षों में इस प्रकार के विश्लेषण को महत्व नहीं प्राप्त हो रहा है, क्योंकि अपराधशास्त्री सांख्यिकी की आवश्यक अविश्वसनीयता से भली भाँति परिचित हो गये हैं। अपराध दर की विभिन्नता, चूँकि सांख्यकीय प्रक्रिया की भिन्नता मात्र को प्रदर्शित करती है न कि अपराधों की आवृत्ति की सही विभिन्नता को, अतः इन विभिन्नताओं का समाजशास्त्रीय विश्लेषण अत्यन्त खतरनाक है।

द्वितीयतः समाजशास्त्रियों ने उन प्रक्रियाओं को परिभाषित करने का प्रयास किया है जिनसे कोई व्यक्ति अपराधी हो जाता है। ये विश्लेषण सामाजिक अध्ययन के सामान्य सिद्धान्तों से सम्बन्धित है और अनुकरण (Imitation), अभिवृत्तिमूल्य (Attitude value), विभेदक साहचर्य (Differential Association), क्षतिपूर्ति (Compensation), एवं नैराश्य- आक्रमण (Frustration-Assession) की अवधारणाओं को व्यक्त करते हैं। जान डेवी, जार्ज मीड, चार्ल्स कूले एवं डब्ल्यू.आई. थामस जैसे प्रसिद्ध समाज मनोवैज्ञानिकों ने इन अवधारणाओं को आगे बढ़ाया है।

अपराध की कारणता की व्याख्या के प्रति आधुनिक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के मूल स्रोत उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध काल के अध्येताओं, यथा दुर्खीम (1858-1917), टार्डे (1843-1904)एवं बोगर (1876-1940) आदि की रचनाओं में गोचर होते हैं। परन्तु इन अध्येताओं के सामान्य सिद्धान्त तर्कसंगत प्रमाणों पर आधारित नहीं थे। परिणामतः बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध काल में ही समाजशास्त्र के वैज्ञानिक सम्प्रदाय के उद्भव के साथ ही पार्क एवं वर्गेस, शा एवं मैके, वार्नर एवं लुण्ट, एडविन एच. सदरलैण्ड और डोनाल्ड आर. क्रेसी, डोनाल्ड

आर. टैफ्ट, राबर्ट एच, काल्डवेज, जार्ज बी, वोल्ड, वाल्टर सी रेकलेस, मार्शल बी, क्लिनार्ड; रूथ कैवेन, थास्टर्न सेलिन एवं अल्बर्ट के, कोहेन आदि समाजशस्त्रियों व अपराधशास्त्रियों ने समाजशास्त्रीय उपागम के आधार पर अपराध की कारणता के नये सिद्धान्तों का सृजन व आविष्कार किया। यद्यपि इन सभी अध्येताओं ने अपराध को सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण का उत्पाद माना है, परन्तु जिन सामाजिक व सांस्कृतिक कारणों से अपराध की उत्पत्ति होती है, इस सम्बन्ध में इन अध्येताओं में एकमतता नहीं है। परन्तु कुल मिलाकर इन अध्येताओं ने दो भिन्न उपागमों व दृष्टिकोणों से अपराध की कारणता की व्याख्या करने का प्रयास किया है। प्रथम उपागम की मान्यता है कि अपराध अन्य सामाजिक प्रघटनाओं की ही भाँति, एक सामाजिक प्रघटना है। इस सन्दर्भ में समाजशास्त्र के अध्येता यह पता लगाने का प्रयास करते हैं कि अपराध सामाजिक संरचना तथा संस्थाओं से किस तरह और किस सीमा तक सम्बन्धित है? सामाजिक व्यवस्था में इसका क्या स्थान है? किसी स्थान विशेष पर अपराध कैसे उत्पन्न होता है तथा सामाजिक व्यवस्था के प्रकार्यान्वयन में इसका क्या अस्तित्व है?

द्वितीय उपागम यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि किस प्रकार व्यक्ति आपराधिक व्यवहार प्रतिमानों को अर्जित करता है। ये प्रतिमान कैसे सीखे जाते हैं, वे किस प्रकार संचारित होते हैं तथा वे किस प्रकार भिन्न होते हैं? इस प्रकार जबकि प्रथम उपागम वह प्रश्न उठाता है कि किस प्रकार अपराध घटित होता है? ... किस प्रकार समाज अपराध अर्जित करता है? द्वितीय उपागम यह प्रश्न करता है कि किस प्रकार अपराधिता को अर्जित करता है? ... किस प्रकार व्यक्ति अपराधी बन जाता है?

यद्यपि परम्परागत समाजशास्त्रीय पदों में प्रथम अनुक्रम के प्रश्नों का उत्तर देना सम्भव है, किन्तु द्वितीय अनुक्रम के प्रश्नों का उत्तर देना एक गम्भीर कठिन कार्य है। इसके अन्तर्गत समाजशास्त्रियों को सापेक्षिक अमूर्त सम्प्रत्ययों को परिवर्त्यों के परिप्रेक्ष्य में अवलोकित करना पड़ेगा जो वैयक्तिक प्रेरणा के स्तर पर अर्थपूर्ण हो सके। किस प्रकार "सामाजिक विघटन" जैसे कारक व्यक्ति को प्रभावित करते हैं तथा उनके व्यवहार को निर्धारित करते हैं? पुनश्च, किस प्रकार समाजशास्त्रीय मनोविज्ञान के क्षेत्र में परम्परागत रूप से बिना परिवर्त्यों के साथ विचार किये इन प्रक्रियाओं का वर्णन कर सकते हैं?

इन प्रश्नों के स्पष्टीकरण के सन्दर्भ में समाजशास्त्रियों के योगदान इतने समृद्ध तथा इतने भिन्न है कि उनको किसी व्यवस्थित क्रम में प्रस्तुत करना कठिन है। अतः अधिक स्पष्टता के उद्देश्य से एवं विवेचनागत अध्ययन की सुगमता हेतु विचार-विमर्श को दो विस्तृत खण्डों में विभक्त किया गया है। प्रथम खण्ड में उन सिद्धान्तों को प्रस्तुत

किया गया है जिनमें अपराध की व्याख्या सामाजिक संरचना के आधार पर की गई है तथा द्वितीय खण्ड में उन सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया है जिनमें व्यक्तियों के अपराधीकरण की प्रक्रिया की व्याख्या की गई है। इस रूपरेखा का अनुकरण करते हुए विभिन्न सिद्धान्तों को एक दूसरे के कालक्रमिक सम्बन्ध की अपेक्षा उनको तार्किक रूप में प्रस्तुत करना अवश्यक प्रतीत होता है।

5.2 अपराध की व्याख्या का सामाजिक संरचना का सिद्धान्त : दुर्खीम, मर्टन

अपराध किसी समाज में किस प्रकार उत्पन्न होता है? इसका अस्तित्व क्या सूचित करता है? क्या अपराध यह सूचित करता है कि समाज एक सीमा तक रोगग्रस्त अथवा दुष्प्रकार्यकारी है? किस प्रकार अपराधियों के लक्ष्य तथा क्रियाकलाप अनपराधियों से सम्बन्धित है क्या वे तत्वतः समानान्तर अथवा भिन्न है? क्या अपराधियों तथा उनकी क्रियाएँ उनकी संस्कृति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सापेक्षतः "सामान्य" अथवा सापेक्षतः "असामान्य" है?

(क) इमाइल दुर्खीम का योगदान

एनामी के सम्प्रत्यय के आदि प्रवर्तक फ्रेंच समाजशास्त्री दुर्खीम हैं। दुर्खीम ने 'दि डिविजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी' तथा 'स्यूसाइड : ए स्टडी इन सोशियालॉजी' नामक ग्रंथों में 'एनामी' पद का सर्वप्रथम प्रयोग किया था। दुर्खीम के द्वारा इस प्रयोग के उपरान्त अधिकांश समाजशास्त्रियों ने इस पद का प्रयोग आदर्शहीनता, आदर्श शून्यता, प्रतिमानविहीनता, मानकहीनता व विचलनकारी व्यवहार के लिए किया। मर्टन, पारसंस तथा अन्य आधुनिक समाजशास्त्रियों ने भी अपने ग्रन्थों में दुर्खीम द्वारा प्रयुक्त फ्रेंच शब्द एनामी का ही प्रयोग किया है। इस प्रकार एनामी पद आदर्श-शून्यता, प्रतिमानविहीनता, मानकविहीनता व विचलनकारी व्यवहार आदि के लिऐ समाजशास्त्रीय साहित्य में प्रस्थापित हो गया है। हिन्दी लेखकों ने इस पद के प्रयोग के लिए किसी एक समान पद का प्रयोग न करके भिन्न भिन्न पदों का प्रयोग किया है।

दुर्खीम के अनुसार "एनामी" आदर्श-शून्यता (Normlessness), सामान्य-शून्यता (Normal Vaccums), नियमों का निलम्बन (Suspension of Rules), की एक ऐसी अवस्था या स्थिति है जिसे प्रायः अनियमन या अनियन्त्रण (Deregulation) कहा जाता है। "Anomie is a condition of normlessness, a normal vaccum, the suspension of rules, a state sometimes reffered to as deregulation." दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि एनामी वह स्थिति है जिससे समाज के सामूहिक नियमों तथा नियिन्त्रण मानकों की नियामक संरचना ढीली पड़ जाती है तथा सामूहिक

नियम (Collective order) लोगों के व्यवहार को नियन्त्रित करने में पूर्णतया असमर्थ होते हैं।

दुर्खीम का मत है कि मनुष्य की आकांक्षाएँ इच्छाएँ व आवश्यकताएँ असीमित व अनन्त होती है। इन चिर अतृप्त इच्छाओं व आवश्यकताओं पर नियन्त्रण करने के लिए समाज में सामूहिक नियमों की व्यवस्था होती है। किन्तु जब कभी भी समाज की नियामक या नियन्त्रक शक्तियों में ह्रास होता है, तो व्यक्ति की आकांक्षाएँ व इच्छाएँ अदम्य रूप से बढ़ने लगती हैं और वह उनकी पूर्ति के हेतु सामाजिक आदर्शों या प्रतिमानों के विपरीत स्वच्छन्द व्यवहार करने लगता है। दुर्खीम इसी व्यवहार को एनामी की संज्ञा देते हैं।

दुर्खीम ने मनुष्य की आवश्यकताओं को दो भागों में बाँटा है।

1. भौतिक, एवं 2. नैतिक व सामाजिक

भौतिक आवश्यकताएँ परिसीमित होती हैं और उनकी परितृप्ति की जा सकती है, जैसे भूख, प्यास आदि। इनको नियन्त्रित किया जा सकता है। इसके विपरीत मनुष्य की नैतिक एवं सामाजिक आवश्यकताएँ असीमित एवं अनन्त होती हैं जिनकी परितृप्ति कभी भी नहीं की जा सकती है, जैसे शक्ति वैभव एवं सम्मान की आकांक्षाएँ। मनुष्य की चिर अतृप्त तृष्णा को रोकने के लिए कोई शक्ति नहीं है। जब समाज में सामूहिक नियमों और नियन्त्रक शक्तियों का प्रभाव क्षीण होने लगता है तो मनुष्य की सीमाएँ बढ़ने लगती हैं। परिणामस्वरूप शक्ति विवेकहीनता की ओर बढ़ने लगता है। ऐसी स्थिति में अनियमन या अनियन्त्रण तथा आदर्श शून्यता की क्रिया समाज में छा जाती है और लोग सामाजिक आदर्शों का उल्लंघन कर विचलनकारी व्यवहार करने लगते हैं।

जहाँ तक समाज में एनामी की स्थिति उत्पन्न होने के कारणों का प्रश्न है, दुर्खीम ने एकाएक परिवर्तन, एकाएक कोई उन्नति या अवनति आदि का महत्वपूर्ण उत्तरदायी कारण माना है। ऐसी प्रत्येक स्थिति में व्यक्ति में स्थिति भ्रान्ति की भावना उत्पन्न हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप उसे उचित और अनुचित गलत और सही का बोध नहीं रह जाता। दुर्खीम के ही शब्दों में जब कोई अचानक परिवर्तन होता है तो समाज के नियन्त्रक मानकों की नियामक संरचना (Normative structure) ढीली पड़ जाती है। इसलिये व्यक्ति को यह बोध नहीं होता कि क्या गलत है अथवा क्या सही है। उसके आवेग अत्यधिक हो जाते हैं, उनकी सन्तुष्टि के लिए वह एनामी (आदर्श-शून्यता) की ओर अभिमुख हो जाता है।''

When there is sudden change, the normative structure of regulating norm of society is slackened, hence man does not know what is

wrong or what is right, his impulses are excessive; to satisfy them he seeks anomic."

दुर्खीम का मत है कि एकाएक या अचानक बड़ा परिवर्तन हो जाने से और समाज में उसका सामना करने की असमर्थता से जो स्थिति उत्पन्न होती है उसे अनियमन या अनियंत्रण (deregulation) की स्थिति कहते हैं। इसे अनियमन या अनियन्त्रण इसलिए कहते हैं क्योंकि इस स्थिति में समाज अपने सदस्यों के व्यवहारों पर किसी प्रकार का नियन्त्रण रखने में असमर्थ होता है। जब आर्थिक संकट आता है तो एक प्रकार की वर्गीकरणहीनता (declassification) उत्पन्न हो जाती है अर्थात किसी व्यक्ति की पहले जो स्थिति थी वह नहीं रहती, उससे निम्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपने ऊपर अधिक आत्मनियन्त्रण नहीं रख पाता तब वह स्वाभाविक रूप से एनोमी की स्थिति को उत्पन्न करता है। यदि वह संकट शक्ति अथवा धन का हो तब भी यही स्थिति उत्पन्न होगी।

दुर्खीम का मत है कि जब समाज में एक बार एनोमी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो जब तक एनोमी की स्थिति विद्यमान रहेगी तब तक सामाजिक सीमा नहीं है। इस स्थिति में अधिकांश व्यक्ति अपनी आकांक्षाओं और अभिलाषाओं को अपने मनचाहे तरीके से पूरा करना चाहते हैं। वे किसी प्रकार के नियन्त्रण को स्वीकार करना नहीं चाहते हैं वे अपने व्यक्तिगत आदर्शमानकों एवं व्यक्तिगत मूल्यमानकों को ही सर्वोपरि समझने लगते हैं। ऐसी स्थिति में होता यह है कि व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सामाजिक नियमों एवं आदर्शमानकों का खुलकर विरोध एवं उल्लंघन करने लगते हैं। परिणामस्वरूप संस्थागत संरचना एवं प्रकार्य के बीच संघर्ष छिड़ जाता है। राज्य व्यवस्था पंगु होकर एक यान्त्रिक ढाँचे की तरह किन्हीं निश्चित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए केवल साधन मात्र बनकर रह जाती है। परिणामतः व्यक्ति व्यक्ति के बीच, व्यक्ति और समाज के बीच, तथा समूह और समूह के बीच सम्बन्धों का जो पवित्र सम्बन्ध होता है, वह समाप्त हो जाता है और व्यक्ति किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। व्यक्ति, समूह और समाज इन तीनों को यह मालूम नहीं होता है कि उसे किस प्रकार का व्यवहार करना है क्योंकि उसे नहीं मालूम कि उससे क्या अपेक्षाएँ की जाती हैं। दुर्खीम के शब्दों में - "A thirst arises for novelties, unfamiliar pleasures, nameless sensation which loose their savionor" ऐसी स्थिति में सामाजिक विचलन, सामाजिक विघटन एवं अराजकता तथा अपराध का जन्म होता है।

उदाहरण स्वरूप, एकाएक आर्थिक संकट आ जाने पर अनेक उच्चस्थ सामाजिक-आर्थिक प्रस्थिति (status) वाले व्यक्तियों की प्रस्थिति एकाएक निम्नस्थ हो सकती है। ऐसी स्थिति में उनमें निराशा, असंतोष, प्रतिशोध एवं विद्रोह की भावनाएँ विकसित होती

हैं और सामाजिक नियमों के प्रति उनका विशवास समाप्त होने लगता है। पुनः ऐसी दशा में उन्हें सामाजिक आदर्श, मूल्य, मानक, प्रतिमान, नियम आदि थोथे लगते हैं और उनका उनके प्रति विशवास डिग जाता है। व्यक्ति ऐसी स्थिति में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अपने ढंग से, जो सामाजिक मानदण्डों व नियमों के अनुसार नहीं होते हैं, करने लगते हैं। यह स्थिति एनामी की है।

दुर्खीम का विचार है कि आदिकालीन समाज, जिसमें यान्त्रिक एकता एकमनस्कता, एकात्मकता रहती है, में आकांक्षाओं या इच्छाओं को कम उचित माना जाता था। किन्तु आधुनिक समाज जो श्रेम-विभाजन के कारण विकसित हुआ है तथा जिसमें तत्कालीन समाज की यांत्रिक, एकमनस्कता, एकात्मकता नहीं है, बल्कि श्रम विभाजन के कारण अनेकता तथा अनेकात्मकता पैदा हो गयी है, में असीमित आकांक्षाओं व इच्छाओं को ही माना जाता है। दुर्खीम के अनुसार इस समय समाज का जिस प्रकार विकास हो रहा है उसमें समाज को धकेल कर व्यक्ति आगे आता जा रहा है। सामाजिक एकता नष्ट होती जा रही है, सामाजिक स्थिरता समाप्त हो रही है, सामाजिक नियंत्रणकारी बन्धन टूटते जा रहे हैं। व्यक्ति अपनी स्वतंत्र सत्ता की मांग कर रहा है, व्यक्तिवाद का जोर होता जा रहा है व्यक्ति की असीमित आकांक्षाएँ शून्य होती जा रही हैं, धर्म सबसे अधिक निष्प्रभावी होता जा रहा है। इसके बन्धन ढीले पड़ते जा रहे हैं और राजसत्ता अर्थ के अधीनस्थ होती जा रही है। आत्म हत्या और परहत्या का अभुदय होता जा रहा है।

इस प्रकार दुर्खीम का कथन है कि कोई भी व्यक्ति तब तक सुखी अथवा सन्तुष्ट नहीं रह सकता जब तक अपनी आवश्यकताओं को अपनी क्षमताओं, साधनों के अनुपात में समजित नहीं कर लेता है। इसे नैतिक बल के द्वारा ही संगत और नियमित किया जा सकता है और जनमत तथा समाज इस नैतिक बल को पूरा कर सकता है।

दुर्खीम के अनुसार सामाजिक-व्यवस्था में अपराध की परिभाषा एवं प्रकार्य (..... Meaning and Functions of Crime in the Social Order according to Durkheim)

दुर्खीम की सैद्धान्तिक विवेचना तत्कालीन उदविकासीय सन्दर्भ से यद्यपि मुक्त नहीं है तथापि उनकी प्राथमिक विचारधारा सामाजिक तथ्यों एवं सामाजिक प्रघटनाओं को समझने में अभिव्यक्त होती है। सामाजिक तथ्य सामूहिक प्रतिनिधान (Collective representation)है जिसमें विचार, स्थायीभाव, आदतें,मानदण्ड जैसी धारणाएँ हैं। इनको जनसमूह की सामूहिक स्वीकृति प्राप्त होती है तथा इसी आधार पर ये व्यक्तियों के व्यवहारों को नियमित व नियन्त्रित करते हैं। समाज व्यक्तियों का मात्र संकलन नहीं है प्रत्युत इसकी विशेषता समान जीवन शैली तथा सामाजिक एकात्मकता (Social

solidarity) से है। आदिम समाज में सामाजिक जीवन का स्वरूप मात्र यान्त्रिक था, अर्थात वह नातेदारी, मित्रता इत्यादि पर आधारित था। आधुनिक समाज में एकात्कता का स्वरूप सावयवी (organic) होता जा रहा है। यह मूलतः श्रम विभाजन पर आधारित है। परन्तु कभी कभी श्रम विभाजन स्वयं सामाजिक एकात्मकता के विपरीत कार्य करता है। उदाहरण के लिए, श्रम विभाजन अपराधी संगठनों को भी अधिक दृढ़ और प्रभावी बनाता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के सामाजिक एवं औद्योगिक संकट जैसे वर्ग विभेद, श्रम संघर्ष आदि इस बात की ओर संकेत करते हैं कि किस प्रकार वस्तुओं की उपयोगिता बदल जाती है। लेकिन दुर्खीम ने इन सभी प्रकार की कठिनाइयों का स्रोत सामूहिक स्थायी भाव, मानदण्डों के अन्तर्गत ढूँढ निकाला है जो कि समाज व सामाजिक एकात्मकता के मूल आधार हैं। जैसा कि (1947:368) के इस कथन से सुस्पष्ट है "यदि श्रम विभाजन से एकात्मकता का जन्म नहीं होता है तो ऐसा इस कारण से है कि सावयवों के सम्बन्ध नियमित नहीं हैं क्योंकि वे आदर्शशून्य या एनोमी की स्थिति है ("If the division of labour does not produce solidarity.... it is because the relations of orgnaisms are not regulated, because they are in a state of anomie") इस प्रकार दुर्खीम के सावयवी समाज में अपराध का मूलस्रोत आदर्शशून्यता या एनोमी की स्थिति या दशा है। दुर्खीम ने अपराध को एक सामाजिक तथ्य माना है तथा आपराधिक प्रघटनाओं को सामाजिक प्रघटनाओं के रूप में वर्णित किया है।

समाज में जहाँ कानून सरल थे, सामाजिक सम्बन्धों का दायरा छोटा था और संस्थागत संरचना जनहित की प्राप्ति के लक्ष्य से बनी थी, अपराध का न तो बाहुल्य ही था और न आपराधिक घटनाएँ आज जैसी जटिल ही थीं। आधुनिक समाज अपनी उस ऐतिहासिक दशा को कहीं पीछे छोड़ चुका है और उस परिवर्तन में फँसकर उन शक्तियों को आत्मसात कर चुका है जिसके प्रभाववश व्यक्तिवादिता अपनी चरमसीमा पर पहुँच गई है तथा लोभ, ईर्ष्या, दम्भ और प्रतिस्पर्धा जीवन के अभिन्न अंग बन चुके हैं। आधुनिक समाज में व्यक्ति उन मूल्यों और आदर्शों को खो चुका है जो सामाजिकता को बढ़ावा देते हैं और कानून के प्रति आदर उत्पन्न करते हैं। आधुनिक समाज की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में अपराध अन्तर्विष्ट है। आज का आधुनिक मानव दिग्भ्रमित है और उसी भ्रम का परिणाम है अपराध।

अपराध को परिभाषित करने हुए दुर्खीम ने कहा है कि "अपराध वह कार्य है जो किन्हीं बहुत सशक्त सामूहिक भावनाओं पर आघात करता हैं।"

दुर्खीम अपराध को एक सामान्य एवं सार्वभौमिक प्रघटना मानते हैं। उनका मत है कि विश्व का कोई भी समाज अपराध से मुक्त नहीं हो सकता। उन्हीं के शब्दों में

अपराध मात्र एक विशिष्ट जाति के समाजों के बहुमत में ही नहीं अपितु सभी प्रकार के समाजों में व्याप्त है। कोई भी ऐसा समाज नहीं है जिसके सम्मुख अपराध की समस्या नहीं रही हो। यद्यपि इसका स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। इस प्रकार की विशेषता वाले लक्ष्य सब जगह एक ही प्रकार नहीं हैं किन्तु सब जगह और सर्वदा ऐसे मनुष्य अवश्य रहे हैं जो दण्ड पाने योग्य व्यवहार करते हैं। दुर्खीम अपराध को सामान्य इसलिए मानते हैं क्योंकि किसी भी समाज को इससे रहित पाना पूर्णतया असभ्मव है। यहाँ तक कि संत समाज भी अपराधविहीन समाज नहीं है। इसके अतिरिक्त ऐसी कोई प्रघटना नहीं है जो इतने स्पष्ट रूप से अपने सामान्य स्वरूप को प्रस्तुत करती हो, क्योंकि यह सामाजिक जीवन की सभी अवस्थाओं से निकट रूप से सम्बन्धित दृष्टिगोचर होती है। किसी अपराध को एक सामाजिक रोगग्रस्तता का स्वरूप मानना इस बात को स्वीकार करना होगा कि रोगावस्था कोई आकस्मिक घटना नहीं है। अपितु इसके विपरीत किन्हीं अवस्थाओं में तो यह जीव की मूल संरचना में से ही उत्पन्न होती है।

स्पष्टतया आवश्यक रूप से अपराध सामाजिक जीवन की मूल अवस्थाओं से सम्बन्धित है और इसलिए यह उपयोगी है क्योंकि वे अवस्थाएँ, जिनका यह एक भाग है, स्वयं नैतिकता तथा कानून के स्वाभाविक विकास के लिए अपरिहार्य है।

इस प्रकार जबकि सभी अपराधशास्त्री अपराध को एक व्याधिकीय (Pathological) प्रघटना मानते हैं, दुर्खीम इसे सामान्य प्रघटना के साथ ही साथ प्रकार्यात्मक (Functional) प्रघटना भी मानते हैं। अपराध के प्रकार्यात्मक पक्ष को उजागर करते हुए उन्होंने कहा है कि अपराध सामाजिक जीवन की अवस्थाओं में रूपान्तरण या परिवर्तन लाने के लिए अथवा संशोधन करने के लिए पूर्वापेक्षित (Prerequisite) दशा है। उनका मत है कि "अपराध अपरिहार्य है यद्यपि लोगों की असुधारयोग्य दुष्टता के कारण यह खेदजनक प्रघटना है तथापि यह दृढ़ता से कहा जा सकता है कि यह एक सार्वजनिक स्वास्थ्य का कारक है और सभी स्वस्थ समाजों का एक अभिन्न अंग है। वास्तव में अपराध सामाजिक जटिलता तथा वैयक्तिक स्वतंत्रता का एक अपरिहार्य परिणाम है, यह स्वतंत्रता के लिए चुकाया हुआ मूल्य है। इसके अतिरिक्त यह वह तरीका है जिसमें वैयक्तिकता स्वयं ही अभिव्यक्त होती है। यदि सामूहिक मनोभाव नैतिकता के आधार पर बहुत अधिक शक्तिशाली या प्रभावशाली हो जाते हैं तो परिवर्तन की किरण सम्भव नहीं हो सकती तथा इसलिए प्रगति अथवा नैतिक उदविकास की प्रक्रिया अवरुद्ध हो जायेगी। दुर्खीम का मत है कि कोई भी वस्तु असीमित तथा अनिश्चित सीमा तक शुभ नहीं होती है। अतः नैतिक अन्तश्चेतना की सत्ता भी अत्यधिक नहीं होनी चाहिए अन्यथा कोई भी उसकी आलोचना करने का साहस नहीं कर पायेगा और यह सहज ही अपरिवर्तनीय रूप धारण कर लेगी। उन्नति करने के लिए व्यक्ति को अपने मौलिकता को

प्रकट करने के अवसर मिलने चाहिए। एक आदर्शवादी जिसके स्वप्न उस शताब्दी के बहुत परे है जो अपनी मौलिकता को प्रकट कर सकता है, यह आवश्यक है कि एक अपराधी भी जो, अपने समय के स्तर से नीचे है, अपनी मौलिकता को प्रकट करने योग्य हो सके। एक के अभाव में दूसरे का घटित होना सम्भव नहीं है।

इस प्रकार अपराध उस प्रवृत्ति जो समाज के लिए अत्यधिक वांछनीय है की प्रायः एक अवांछनीय अभिव्यक्ति है। वह स्वतन्त्रता का मात्र मूल्य नहीं है प्रत्युत सामाजिक परिवर्तनों का मूल्य है जो स्वतन्त्रता को सम्भव बनाता हैं।

दुर्खीम के अनुसार अपराध न केवल आवश्यक परिवर्तनों के लिए मार्ग खोलता है अपितु कुछ मामलों में यह इन परिवर्तनों की प्रत्यक्षतः तैयारी करता है जहाँ अपराध होता है वहाँ की सामूहिक भावनाएँ नया रूप लेने के लिए पर्याप्त लोचपूर्ण ढंग से तत्पर रहती हैं, तथा अपराध उनके नये आकार के निर्धारण में सहायता करता है। कई बार वस्तुतः कभी अपराध भविष्य की नैतिकता का पूर्व रूप होता है - भविष्य में क्या होगा इसके प्रति एक कदम होता है। दुर्खीम इसी सन्दर्भ में सुकरात (Socrates) का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जिसका अपराध उसकी विचार की स्वतंत्रता (Independence of Thought) थी। युनानी कानून के अनुसार सुकरात एक अपराधी थे तथापि उनका अपराध अर्थात विचारों की स्वतन्त्रता उनके देश के लिये ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए उपयोगी सिद्ध हुई। इसने एथेंसवासियों के लिए आवश्यक एक नई नैतिकता तथा विश्वास को सम्भव बनाया क्योंकि जिन परम्पराओं में वे तब रह रहे थे वे तत्कालीन जीवन के आवश्यक अवस्थाओं से मेल नहीं खाती थी। सुकरात का उदाहरण अकेला (अपूर्व) नहीं है। इतिहास में समय समय पर ऐसी घटनाएँ पुनरावृत्त हुई हैं। विचार स्वातन्त्र्य की भावनाएँ जिसका हम अब उपभोग करते हैं पूर्णतया असम्भव हुई होती यदि समय-समय पर इसका निषेध करने वाले प्रतिबन्धों को पूर्णतया समाप्त करने से पहले उनका विरोध नहीं किया गया होता। निस्संदेह उस समय यह अपराध था क्योंकि उस समय तक भी औसत चेतना में ये भावनाएँ बड़ी गहराई तक पहुँची हुई थी। इस प्रकार यह अपराध सुधारों के लिए उपयोगी था जो दिन पर दिन आवश्यक होते जा रहे थे।

इस दृष्टिकोण से अपराध के मौलिक तथ्य हमारे सम्मुख पूर्णतया नये प्रकाश में प्रस्तुत होते है। अर्वाचीन विचारों के विपरीत अब अपराधी एक पूर्णतया असामाजिक जीव, एक समाजभक्षी तत्व, एक विचित्र तथा आत्मसात्करण क्षमताहीन व्यक्ति जो समाज के बीच उत्पन्न हुआ हो, प्रतीत नहीं होता है। इसके विपरीत वह सामाजिक जीवन में एक निश्चित भूमिका अदा करता है। परिणामस्वरूप अपराध को ऐसा दोष नहीं समझा जाना चाहिए जिसका दमन अब नहीं किया जा सकता है।

सामान्य तथा प्रकार्यात्मक रूप में अपराध की अवधारणा दुर्खीम की एक अनुपम

देन है। अपराध के अध्ययन के सन्दर्भ में समाजशास्त्रीय साहित्य में दुर्खीम की इस देन को विस्मृत नहीं किया जा सकता है।

(ख) मर्टन का योगदान

दुर्खीम द्वारा प्रतिपादित एनामी की अवधारणा का मर्टन ने सम्यक रूप से विश्लेषण किया है। ज्ञातव्य है कि मर्टन ने विचलनकारी व्यवहार का विश्लेषण पृथक रूप से नहीं किया प्रत्युत आदर्श शून्यता या एनामी के सन्दर्भ में ही प्रस्तुत किया है। उनका मत है कि एनामी की स्थिति के परिणामस्वरूप ही विचलनकारी व्यवहार की सृष्टि होती है । मार्टन का सिद्धान्त यह सूचित करता है कि एक समाज में सामाजिक संरचना कुछ व्यक्तियों पर सामाजिक आदर्शों के अनुरूप व्यवहार करने के स्थान पर विचलनकारी व्यवहार करने के लिए एक निश्चित दबाव डालती है। यह दबाव संस्कृति द्वारा निर्धारित आदर्शों व लक्ष्यों तथा समाज द्वारा अनुमोदित मानदण्डों या साधनों में एकीकरण के अभाव का परिणाम होता है। मर्टन इसी सामाजिक प्रघटना को आदर्श शून्यता या एनामी की संज्ञा देते हैं। मर्टन के ही शब्दों में एनामी को सांस्कृतिक संरचना के टूट जाने के रूप में समझा जाता है। यह स्थिति विशेषतया उस समय घटित होती है जबकि सांस्कृतिक आदर्शों एवं लक्ष्यों तथा समूह के सदस्यों की सामाजिक रूप से संचरित क्षमताओं के बीच तीव्र अलगाव हो जाता है। सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि सांस्कृतिक लक्ष्यों तथा संस्थागत मानदण्डों या साधनों के बीच का असंतुलन ही आदर्श शून्यता या एनामी है। अर्थात जब किसी समाज में सांस्कृतिक लक्ष्यों तथा संस्थागत मानदण्डों में समन्वय नहीं होता है तब एनामी प्रकट हो जाती है।

मर्टन विचलनकारी व्यवहारों के कारण व्यक्ति के शारीरिक अथवा मनोवैज्ञानिक दशाओं में नहीं ढूँढते बल्कि सामाजिक संरचना में ढूँढते हैं। उनका यह विचार पूर्णतया समाजशास्त्रीय है। क्योंकि विचलनकारी व्यवहारों का दायित्व उन्होंनें सामाजिक संरचना पर रखा है। मर्टन से पहले कुछ चिन्तकों ने व्यक्ति के "अन्दर" कुछ ऐसे मनोवैज्ञानिक स्त्रोत खोजने का प्रयास किया है जिनसे मनोवैज्ञानिक क्रियाओं की व्याख्या हो सके। फ्रायड की कामवासना (Libido) और मूल प्रवृत्तियों का सिद्धान्त विचलन के आंतरिक स्त्रोत का अच्छा नमूना है। इसके विपरीत, मर्टन ने व्यक्ति से बाहर सामाजिक संरचना के अवसरों को विचलनकारी व्यवहार का उत्तरदायी कारक माना है।

सांस्कृतिक लक्ष्य तथा संस्थागत मानदण्ड या साधन (Cultural Goals and Institutionalized Norms or Means)

मर्टन के अनुसार सामाजिक संरचना की दो ऐसी विशेषताएँ हैं जिनमें वह अन्तर स्थापित करते हैं। प्रथम विशेषता सांस्कृतिक लक्ष्य है तथा द्वितीय संस्थागत

मानदण्ड या साधन । मर्टन के अनुसार प्रत्येक सामाजिक संरचना के कुछ सांस्कृतिक लक्ष्य होते हैं जिनकी प्राप्ति के लिए समाज द्वारा मान्य कुछ संस्थागत मानदण्ड या साधन होते हैं । यदि व्यक्ति सांस्कृतिक लक्ष्यों की प्राप्ति समाज द्वारा मान्य संस्थागत मानदण्डों या साधनों के आधार पर करता है तो उसका यह व्यवहार अनुरूपकारी व्यवहार कहलाता है। अनुरूपकारी व्यवहार समाज में संतुलन बनाये रखने में सहायक होता है किन्तु यदि व्यक्ति सांस्कृतिक लक्ष्यों तथा संस्थागत साधनों में से किसी एक को स्वीकार अथवा अस्वीकार करके अथवा दोनों को अस्वीकार करके व्यवहार करता है तो उसका वह व्यवहार विचलनकारी व्यवहार कहलाता है।

सामाजिक संरचना में मर्टन एक संतुलन बिन्दु की परिकल्पना करते हैं। संस्कृति द्वारा परिभाषित लक्ष्यों को संस्थागत साधनों से प्राप्त करने की दशा संतुलन है। किन्तु ऐसा होता नहीं है। सन्तुलन की स्थिति में असंतुलन उत्पन्न होता रहता है । असन्तुलन उत्पन्न होने के कुछ कारण भी होते हैं। जब लक्ष्यपूर्ति पर अधिक बल दिया जाता है किन्तु उसी अनुपात में संस्थागत साधनों पर बल नहीं दिया जाता है तो संरचनात्मक असन्तुलन उत्पन्न होता है। इन दोनों पर अनुपाततः कम या अधिक बल समाज की संस्कृति द्वारा दिया जाता है। अतः असन्तुलन उत्पन्न करने का दायित्व समाज पर होता है। मर्टन ने अमेरिकी समाज के उदाहरण से स्पष्ट किया है कि वहाँ सफलता के लक्ष्य पर अत्यधिक बल दिया जाता है। ऐसे समाज में कहा जाता है कि "सफल बनो, साधन चाहे उचित हो या अनुचित।" जिन गैर संस्थागत साधनों से सफलता प्राप्त होती है, उन्हें मर्टन तकनीकी कुशल साधन (Technically Efficient Means) कहते हैं। ऐसे कुशल साधन संस्थागत साधन से भिन्न होते हैं। इन्हें नवाचार (Innovations) कहते हैं। धनार्जन करने के लिए काला धन्धा करना, जाली नोट छापना, जाली दवाएँ बेचना, तस्करी करना इत्यादि तकनीकी के कुशल साधन हैं। जब व्यक्ति ऐसे साधनों का चुनाव करता है तो उसका व्यवहार एनोमिक (Anomic)व्यवहार होता है।

मर्टन का मत है कि जिस समाज के लोगों में सांस्कृतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए मान्य संस्थागत साधनों की कमी के कारण, मनोवैज्ञानिक असंतोष व्यापक रूप से पाया जाता है। वहाँ एनोमिक व्यवहारों की संभावना अधिक होती है। लक्ष्यों की प्राप्ति पर सांस्कृतिक बल जितना अधिक दिया जायेगा तथा उचित संस्थागत साधन जितने ही कम होंगे, वहाँ विचलनकारी व्यवहारों की सम्भावना उतनी ही अधिक होगी।

वस्तुतः मर्टन का सैद्धान्तिक कथन यह है कि लोग "असन्तुलन से अनुकूलित" हो जाते हैं। इस अनुकूलन के द्वारा लोगों की भूमिका विचलनकारी हो जाती है। मर्टन ने विचलनकारी अनुकूलन का प्रारूप विज्ञान (Typology) भी प्रस्तुत किया है।

वैयक्तिक विचलनकारी अनुकूलन : प्रारूप सारणी

(A Typology of Modes of Individual Adaptation)

	अनुकूलन के प्रकार	सांस्कृतिक साधन	संस्थागत साधन
1.	अनुरूपता (Conformity)	+	+
2.	नवाचार (Innovation)	+	-
3.	कर्मकाण्डवाद (Ritualism)	-	+
4.	अपवर्तनवाद (Retrealism)	-	-
5.	विद्रोह (Rebellian)	±	±

सांकेतिक चिन्हों के अर्थ :

+ स्वीकार करना

- अस्वीकार करना

± प्रचलित लक्ष्यों तथा साधनों के स्थान पर नये लक्ष्यों तथा साधनों को स्थापित करना

1. अनुरूपता (CONFORMITY): अनुकूलन का यह एक तरीका है जो विचलन के विपरीत होता है। यदि कोई व्यक्ति अपने सांस्कृतिक लक्ष्यों की पूर्ति संस्थागत साधनों के आधार पर करता है तो उसका यह व्यवहार अनुरूपवादी व्यवहार कहलाता है। सिद्धान्ततः सांस्कृतिक लक्ष्य तथा संस्थागत साधन जितने ही अधिक उपलब्ध होंगे अनुरूपतावादी व्यवहार उतना ही अधिक बढ़ेगा और विचलनकारी व्यवहार की सम्भावना उतनी ही घटेगी।

2. नवाचार (INNOVATION) : अनुकूलन के इस तरीके के अन्तर्गत यद्यपि सांस्कृतिक लक्ष्यों को स्वीकार कर लिया जाता है किन्तु संस्थागत साधनों को अस्वीकार कर दिया जाता है। मान्य संस्थागत साधनों के स्थान पर ऐसे कुशल तकनीकी साधनों का आविष्कार कर लिया जाता है जिनसे लक्ष्यों को सरलता से प्राप्त किया जा सके। मर्टन ने विचलनकारी या आविष्कारी अनुकूलन के कुछ कारकों का उल्लेख किया है।

(क) प्रारम्भिक समाजीकरण के अनुभव यदि व्यक्ति को अनुचित मार्ग ढूँढने के लिए प्रेरित करते हैं तो वह सरलता से उनका आविष्कार करेगा। अनुचित साधनों को अपनाने में उसे मनोवैज्ञानिक कष्ट नहीं होगा। इस प्रकार के समाजीकरण में परिवार की विशेष भूमिका होती है।

(ख) कुछ समाज सामूहिक सफलता पर बल देते है। तथा कुछ वैयक्तिक सफलता पर बल देते हैं। वैयक्तिक सफलता पर जो समाज अधिक बल देता है उसमें विचलनकारी प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिलता है। असफलता को कलंक माना या समझा जाता है। सफलता प्राप्त करने पर इतना अधिक जोर दिया जाता है कि व्यक्ति अनुचित साधनों के आधार पर भी सफलता प्राप्त करने का प्रयास करने लगता है। सिद्धान्ततः इस अनुकूलन को इस प्रकार प्रकट किया जाता है कि जिन लोगों को सांस्कृतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए संस्थागत साधन के सुअवसर कम मिलते हैं। वे विचलनकारी अनुकूलन के प्रति अधिक झुकाव रखते हैं। ऐसा तभी सम्भव है जब वैयक्तिक सफलता पर अधिक बल दिया जाये, और अनुचित साधन सरलता से उपलब्ध हो तथा अतीत में भी लोग अनुचित साधनों का प्रयोग करते आये हैं।

संस्थागत साधनों को अस्वीकार कर जब कुछ व्यक्ति सांस्कृतिक लक्ष्यों की प्राप्ति में सफल होते हैं, तो वह सफल व्यवहार अन्य अनेक लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है और वे भी उसी रूप में व्यवहार करना प्रारम्भ कर देते हैं। परिणामतः विचलनकारी व्यवहार समाज में जहर के समान फैलने लगता है।

3. कर्मकाण्डवाद (RITUALISM) : कर्मकाण्डवाद एक ऐसे प्रत्युत्तर के प्रतिमान की ओर संकेत करता है जिसमें सांस्कृतिक परिभाषित आकांक्षाओं को त्याग दिया जाता है।जबकि व्यक्ति प्रायः अनिवार्यतः संस्थागत मानदण्डों द्वारा निरन्तर आबद्ध रहता है। सरल शब्दों में, जब लक्ष्यों को अस्वीकार कर संस्थागत साधनों को स्वीकार कर लिया जाता है तो उसे कर्मकाण्डवाद कहते हैं। उदाहरणस्वरूप विश्व के प्रायः सभी महान धर्मों के अनुयायियों में यद्यपि ऐसे बहुत लोग हैं जो यह नहीं मानते हैं कि स्वर्ग और नरक जैसा कोई भौगोलिक स्थान है जहाँ मृत्यु के उपरान्त आत्मा को अपने कर्मों के अनुसार कुछ दिनों या समय तक रहना पड़ता है । तथापि वे अपने जीवन में परम्परागत धार्मिक कृत्यों को सम्पादित करते हैं। इसी तरह अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के अधिकांश सदस्य यद्यपि परम्परागत हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के मूल्यों में विश्वास नहीं करते हैं तथापि वे परम्परागत जाति व्यवस्था की प्रथाओं, कर्मकाण्डों, वैचारिकी तथा जीवन के तरीकों को स्वीकार कर वैसा ही व्यवहार करने का प्रयास करते है।

सिद्धान्ततः जिस समाज में सफलता प्राप्त करने पर जितना ही अधिक बल दिया जायेगा, वहां असफलता का भय उतना ही अधिक होगा और कुछ लोग कर्मकाण्डीय अनुकूलन करना पसंद करेंगे।

4. अपवर्तनवाद (RETREATISM) : इस प्रकार के व्यवहार प्रतिमान के अन्तर्गत समाज द्वारा मान्य सांस्कृतिक लक्ष्यों एवं इन लक्ष्यों के प्रति निदेशित संस्थागत

साधनों, दोनों का ही परित्याग कर दिया जाता है ऐसा व्यवहार करने वाले समाज में लोग उपेक्षित जीवन व्यतीत करते हैं। इनमें अनुचित साधनों का प्रयोग न करने की प्रबल प्रवृत्ति होती है। सफलता के अवसर दुर्लभ होने के कारण, ऐसे लोग सांस्कृतिक लक्ष्य तथा संस्थागत साधन दोनों को ही त्याग देते हैं।

सिद्धान्ततः वे लोग जो अनुचित साधनों का प्रयोग बिल्कुल ही नहीं करना चाहते और सफलता के सुअवसर नहीं पाते, अपवर्तनवादी हो जाते है।

5. **विद्रोह (REBELLION) :** समाज द्वारा मान्य सांस्कृतिक लक्ष्यों तथा संस्थागत साधनों के स्थान पर नये लक्ष्यों तथा साधनों को स्थापित करना विद्रोह कहलाता है। जिस समाज में सफलता से लोग जितना ही अधिक वंचित रहेंगे, वहां विद्रोह की सम्भावनाएँ उतनी ही अधिक होंगी। सिद्धान्ततः जहाँ सफलता से वंचित रहने वाले वैचारिकीय स्तर पर व्यवस्था की जितनी अधिक आलोचना करेंगे, वहां विद्रोह की सम्भावनाएँ उतनी ही अधिक होंगी।

5.3 अपराधीकरण की प्रक्रिया से सम्बन्धित समाजशास्त्रीय सिद्धान्त (Sociological Theories of the Criminalization Process)

अपराधीकरण की प्रक्रिया से सम्बन्धित समाजशास्त्रीय सिद्धान्त के अन्तर्गत अपराधी को एक प्रक्रिया के रूप में जहाँ एक ओर अपराधी प्रकार से भिन्न माना जाता है वहीं दूसरी ओर इसे अपराधी अभिप्रेरकों से भी भिन्न स्वीकार किया जाता है। इसके अन्तार्गत एक व्यक्ति क्या करता है तथा कैसे करता है, से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया जाता है न कि यह ढूँढने का प्रयास किया जाता है कि वह क्यों करता है अथव वह किस प्रकार का व्यक्ति है। सामाजिक संरचना से सम्बन्धित अपराध के समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों में यह स्वीकार किया जाता है कि अपराधिता एक दशा (Condition) है, प्रक्रिया नहीं। अपराधीकरण की प्रक्रिया से सम्बन्धित अपराध के समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों में अपराधिता को एक दशा के रूप में नहीं बल्कि एक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसमें यह स्वीकार किया जाता है कि अपराधियों के जीवन इतिहास में अपराधियों तथा सामान्य जनता की अन्तर्क्रियाओं में तथा अपराधियों की अन्तर्क्रियाओं में वे ही प्रक्रियाएँ देखी जाती है जो सामान्य सामाजिक जीवन में अवलोकित की जाती है। अपराध को समझने के लिए इनमें से कुछ प्रक्रियाएँ अन्य प्रक्रियाओं की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है। अपराधी के जीवन इतिहास में एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया परिपक्वता (Maturation) है। पृथक्करण, संघर्ष तथा अपराध के विरूद्ध संरक्षण की तकनीकी में प्रतियोगात्मक विकास अपराधी तथा जनता के बीच की अन्तर्क्रिया में प्रकट होता है। फैशन, संगठन तथा व्यवसायीकरण

स्वयं अपराधियों के बीच की अन्तर्क्रिया की प्रक्रिया है।

5.3.1 सदरलैण्ड के विभेदक साहचर्य का सिद्धान्त (Sutherland's Differential Association Theory)

अमेरिकी समाजशास्त्र में अपराधी व्यवहार की व्याख्या करने के सन्दर्भ में जिस प्रथम सिद्धान्त का प्रतिपादन सदरलैण्ड ने लगभग सन् 1940 ई. में किया,उस सिद्धान्त को विभेदक साहचर्य के नाम से जाना जाता है। सदरलैण्ड के अनुसार अपराधशास्त्र को वैज्ञानिकता प्रदान करने की दृष्टि से यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि अपराध तथा अपराधवृत्ति से जुड़े बहुकारकीय उपागम का एकीकरण एक विवेचनात्मक सिद्धान्त के आधार पर किया जाय। अन्य शब्दों में एक ऐसे सिद्धान्त का विकास किया जाय जो स्पष्ट रूप से व्याख्या करे कि किन दशाओं में अपराध घटित होते है। और किन दशाओं के अभाव में अपराध की सम्भावनाएँ नहीं होती है।

आपराधिक व्यवहार के कारणात्मक सिद्धान्त के विकास के लिए दो क्रियाविधियों (Procedures) का उपयोग किया जा सकता है। प्रथम क्रियाविधि तार्किक अमूर्तिकरण (Logical Abstraction) की है। अर्थात विभिन्न अपराधों के पीछे मूल या सामान्य कारण क्या है? इनको ज्ञात करना। आपराधिक व्यवहार में कारणत्व के सन्दर्भ में किये गये शोध अध्ययनों के परिणामों से ज्ञात होता है कि निर्धनता, बुरी आवासीय व्यवस्था, गन्दी बस्तियाँ, मनोरंजन का अभाव, अनैतिक परिवार, मन्दबुद्धिता, संवेगात्मक अस्थिरता तथा अन्य गुण एवं दशाएँ इत्यादि कम या अधिक मात्रा में सामाजिक एवं व्यक्तिगत व्याधियों के रूप में अपराधी व्यवहार से जुड़ी रहती है। इसके साथ ही साथ शोध अध्ययनों की उपलब्धियां यह भी दर्शाती हैं कि बहुत से व्यक्ति जो पूर्वोक्त सामाजिक एवं व्यक्तिगत व्याधियों के शिकार होते हैं, सामान्यतः अपराध नहीं करते हैं और उच्च सामाजिक, आर्थिक स्तर के लोग बहुधा कानूनों का उल्लंघन करते हैं, जिनमें प्रायः पूर्वोक्त व्याधिक दशाओं का अभाव होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि ये व्याधिक दशाएं स्वयं अपराध उत्पन्न नहीं करती है। अपराध उत्पन्न करने वाली दशाओं के निर्धारण के लिए आवश्यक हो जाता है कि निर्धन एवं समृद्ध दोनों के लिए जो दशाएँ सामान्य हों उनका ही केवल अमूर्तीकरण किया जाये। अपराध सिद्धान्त की द्वितीय क्रियाविधि आपराधिक ज्ञान का विभिन्न स्तरों पर विश्लेषण (Analysis of Criminological knowledge at different level of analysis) की है। अर्थात किस समय अपराध के लिए कौन से कारक उत्तरदायी होते हैं इसको ज्ञात कर समयानुसार अपराध हेतु प्रेरक कारकों की व्याख्या प्रस्तुत की जाय। सदरलैण्ड का मत है कि आपराधिक व्यवहार की वैज्ञानिक व्याख्या दो प्रकार से की जा सकती है।

पहली व्याख्या उन प्रक्रियाओं के सन्दर्भ में की जा सकती है जो अपराधों के घटित होने के समय क्रियाशील रहती है तथा दूसरी व्याख्या उन प्रक्रियाओं के संदर्भ में की जा सकती है जो अपराधी के आरम्भिक इतिहास में क्रियाशील रहती है। पहली व्याख्या को यंत्रवादी (Mechanistic) परिस्थितिजन्य अथवा गत्यात्मक (Situational) तथा दूसरी व्याख्या को ऐतिहासिक (Historical) अथवा उत्पत्तिमूलक (Genetic) कहा जा सकता है। दोनों प्रकार की व्याख्याएँ वांछनीय है। यंत्रवादी व्याख्या विशेषकर भौतिक (Physical) तथा जैविक (Biological) वैज्ञानिकों द्वारा अनुमोदित रही है। एवं आपराधिक व्यवहार की यह व्याख्या सम्भवतः अधिक सरल प्रकार की व्याख्या मानी जाती है। तथापि यंत्रवादी प्रकार की अपराध-शास्त्रीय व्याख्याएँ असफल रही है। क्योंकि उनका सूत्रपात अपराधियों में व्यक्तिवाद तथा सामाजिक व्याधिकियों को पृथक करने के प्रयास के सम्बन्ध में किया गया है। इस प्रकार के कार्यों से सामान्यतया यह निष्कर्ष प्रतिपादित हुआ है कि आपराधिक व्यवहार के तात्कालिक व निकटवर्ती निर्धारक व्यक्ति-परिस्थिति संकुल (Person situations complex) में स्थित होते हैं।

अपराधिता के सन्दर्भ में वैषयिक, परिस्थिति अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह आपराधिक कार्य के लिए एक अवसर प्रदान करती है। उदाहरणस्वरूप, एक चोर किसी दुकान से कोई वस्तु उस दुकान के मालिक की अनुपस्थिति में चुरा सकता है, किन्तु दुकान के मालिक की उपस्थिति में वह ऐसा कार्य नहीं कर सकता है। इसी प्रकार वह निगम जो मोटर या कार का उत्पादन करता है परिशुद्ध भोजन तथा औषधि कानून का उल्लंघन कदापि नहीं कर सकता है, किन्तु एक मांस पैकिंग करने वाले निगम में इस कानून का उल्लंघन करने की अधिक आवृत्ति पाई जा सकती है। किन्तु दूसरे अर्थ में जैसे मनोवैज्ञानिक अथवा समाजशास्त्रीय अर्थ में परिस्थिति, व्यक्ति के अतिरिक्त नहीं होता है, परिस्थिति के लिए आवेष्ठित व्यक्ति द्वारा परिभाषित परिस्थिति ही महत्वपूर्ण होती है। अर्थात कुछ व्यक्ति उस स्थिति को अपराध घटित होने वाली परिस्थिति के रूप में परिभाषित करते हैं जिससे दुकान का मालिक अनुपस्थित रहता है, जबकि अन्य इसे इस रूप में नहीं परिभाषित करते है। पुनः व्यक्ति परिस्थिति संकुल में घटित होने वाली घटनाएँ अपराधी के पूर्ववर्ती जीवन अनुभवों से पृथक नहीं की जा सकती है। इसका तात्पर्य है कि परिस्थिति को व्यक्ति की उन प्रवृत्तियों तथा योग्यताओं के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया जाता है जिन्हें व्यक्ति अद्यतन (Up to date) उपार्जित किया है। उदाहरणस्वरूप, कोई व्यक्ति परिस्थिति को इस रूप में परिभाषित करता है कि आपराधिक व्यवहार परिस्थिति का अपरिहार्य परिणाम है।

इससे स्पष्ट है कि परिस्थिति किसी अपराध के लिए अपराध करने की उत्प्रेरक स्थिति हो सकती है और अपराधी की आपराधिकता की व्याख्या में सहायक हो सकती

MASY 09 12A

है किन्तु इससे अपराधिकता के अन्य अधिक महत्वपूर्ण पक्ष अर्थात अपराधी के भूतकालीन अनुभवात्मक पक्ष को परिस्थितिजन्य व्याख्या के द्वारा बिलगाया नहीं जा सकता है। ऐसे भूतकालीन अनुभवों के संदर्भ में आपराधिक व्यवहार की व्याख्या ऐतिहासिक अथवा उत्पत्तिमूलक व्याख्या कहलाती है।

उपर्युक्त देनों व्याख्याओं में से सदरलैण्ड आपराधिक व्यवहार की अपनी व्याख्या में उत्पत्तिमूलक व्याख्या को ही स्वीकार करता है। उसकी उत्पत्तिमूलक व्याख्या व्यवहारवादी व्याख्या है जो सीखने के सिद्धान्त पर आधारित है। वास्तव में सदरलैण्ड का आपराधिक व्यवहार का उत्पत्तिमूलक सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि आपराधिक कार्य तभी घटित होता है जबकि उसके लिए व्यक्ति द्वारा परिभाषित एक उपयुक्त परिस्थिति उपस्थित रहती है। इस सिद्धान्त के अनुसार आपराधिक व्यवहार व्यक्तियों के बीच होने वाली उस अन्तर्क्रिया का परिणाम है जिसे वे घनिष्ठ व्यक्ति समूहों में एक दूसरे के प्रभाव मे आकर सीखते है। इस अर्थ में हम यह कह सकते हैं कि जगत के अन्य प्रपंचों की ही भाँति आपराधिक प्रपंच भी सीखे जाते हैं। एक व्यक्ति आपराधिक प्रपंचों को तब सीखते हैं जब वह अपराधियों के निकटस्थ सम्पर्क में जाता है। वह उनके सम्पर्क में आकर न केवल उनके मूल्यों व आदेशों एवं मानकों को स्वीकार करने लगता है ... न समंजनकारी व्यवहारों के स्थान पर विचलनकारी व विपथगमनात्मक व्यवहार ... लगता है तथा अन्ततोगत्वा वह वैसा ही आपराधिक व्यवहार करने लगता है जैसा ... उसके समूह के अन्य अपराधी करते हैं।

5.4 अपराध का सांस्कृतिक सिद्धान्त (Cultural Theory of Crime)

टैफ्ट के अनुसार अपराध संस्कृति की उपज है। वह यह स्वीकार करते हैं कि जब किसी समाज की संस्कृति घोर भौतिकवादी मूल्यों से प्रभावित हो जाती है तो वह अपराध जनन का उदगम स्रोत बन जाती है। टैफ्ट का मत है कि आपराधिक व्यवहार अन्य अपराधों की भांति सामाजिक संबंधों का अंग तथा परिणाम है। व्यक्ति का व्यवहार इन सम्बन्धों में इतना फँसा या उलझा हुआ है कि वह स्वयं इनमें एक सक्रिय कर्ता के रूप में सहभागी होता है। उसको भूत तथा वर्तमान अनुभवों के परिणाम के रूप में पूर्वालोकित किया जा सकता है। केवल आज के सामाजिक सम्बन्ध की व्यवहार को प्रभावित नहीं करते बल्कि बीते हुए कल भी प्रभावित करते हैं। व्यक्ति सामाजिक संरचना तथा मूल्यों की व्यवस्था एवं संस्थाओं के प्रति अपनी प्रतिक्रिया प्राप्त करते हैं। ... हम संरचना तथा संस्कृति के बीच के अन्तर की उपेक्षा करते हैं तो हम कह सकते हैं व्यवहार

संस्कृति तथा वर्तमान परिस्थितियों के संयुक्त प्रभाव का परिणाम है।

टैफ्ट के अनुसार संस्कृति के अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व सामाजिक मूल्य है। वे प्रत्येक समाज के ऐतिहासिक अनुभवों पर विकसित हुए हैं। अनुभव तथा व्यवहार प्रतिमान जो सामूहिक संतोष लाते हैं । सकारात्मक मूल्य कहलाते हैं। इसके विपरीत वे अनुभव जो असन्तोष लाते हैं नकारात्मक मूल्य कहलाते हैं । अनुमोदित व्यवहार को हतोत्साहित करने के लिए समाज द्वारा अनुशस्तियाँ स्थापित की जाती है। ये अनुशस्तियाँ जनरीतियों, रूढ़ियों, परम्पराओं, धार्मिक आदेशों तथा निषेधों, जनमत तथा एक समाज के कानूनों में अन्तर्विष्ट होती है तथा शिक्षा द्वारा उन्नति की जा सकती है। प्रत्येक समाज को निश्चित करना पड़ता है कि किस प्रकार के व्यवहार को कानून द्वारा हतोत्साहित किया जायेगा तथा किस प्रकार के व्यवहार को प्रोत्साहित किया जायेगा। अपराधशास्त्र वास्तव में उन्हीं कार्यों से सम्बन्धित है जो आपराधिक कानून द्वारा दण्डित होते है।

टैफ्ट के अनुसार आपराधिक व्यवहार एक सीमा तक विधि दण्डों द्वारा प्रभावित होता है। यह इससे भी अधिक अन्य अनुशस्तियों द्वारा प्रभावित होता है तथा इस कारण से वे कानून जो रूढ़ियों में मूल्यों को समाविष्ट करते हैं, दबाव डालने में अत्यधिक आसान होते हैं। संयुक्त राज्यों में कुछ ऐसे मूल्य है। जो क्षेत्रीय विभिन्नताओं के बावजूद सामान्य संस्कृति के मूल्य कहे जा सकते हैं।

टैफ्ट अमेरिकी संस्कृति को अपराधी संस्कृति मानते है। उनका कहना है कि अमेरिकी संस्कृति में आज अपराधों की ऊँची दर देखी जा सकती है क्योंकि इस संस्कृति की वर्तमान विशेषताएँ अपराध को जन्म देने वाली है। इन विशेषताओं में हम गतिशीलता, जटिलता, भौतिकतवाद, बढ़ती हुई व्यक्तित्वहीनता, राजनीतिक जनतंत्र व्यक्तिवाद के महत्व पर बल, समूह निष्ठा, सीमान्त परम्पराओं की उत्तरजीविता, प्रजाति, विभेदीकरण, सामाजिक क्षेत्र में वैज्ञानिक अभिमुखीकरण, राजनीतिक भ्रष्टाचार की सहिष्णुता, कानून में सामान्य विश्वास, कुछ कानूनों के प्रति अनादर तथा अर्द्ध अपराधी शोषण की स्वीकृति आदि को समाविष्ट कर सकते है। इस सूची को और अधिक विस्तृत किया जा सकता है।

टैफ्ट के सांस्कृतिक सिद्धान्त को निम्नलिखित सूत्रों में रखा जा सकता है।

1. कोई संस्कृति जितनी ही अधिक प्रतियोगी तथा भौतिकवादी होगी, अपराध की दर उतनी ही अधिक होगी।
2. किसी संस्कृति में उच्च प्रस्थिति तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करने पर जितना अधिक बल दिया जायेगा, आपराधिक घटनाएं उतनी ही अधिक होगी।

MASY 09 12B

3. कोई संस्कृति जितनी ही अधिक गत्यात्मक, जटिल तथा भौतिकवादी होगी, अपराध की दर उतनी ही ऊँची होगी।

4. किसी संस्कृति में व्यक्तित्वहीनता तथा व्यक्तिवादिता जितनी अधिक विकसित होगी, आपराधिक चेतना उतनी ही अधिक जाग्रत होगी।

5. वह संस्कृति जिसमें आदेश (Precept) तथा व्यवहार के मध्य जितनी ही अधिक असंगतियां पाई जायेगी उसमें आपराधिक कृत्य उतने ही अधिक होंगे।

6. किसी संस्कृति में प्रभावशाली समूहों तथा सत्ताहीन एवं अल्पसंख्यक समूहों के बीच विभेदक व्यवहार की मात्रा जितनी ही उच्च होगी, उसमें अपराध करने की प्रवृत्ति उतनी ही अधिक होगी।

7. जिस संस्कृति में सफलता के माप का आधार, तुम्हारे पास क्या है की अपेक्षा तुम क्या प्रदर्शन करते हो अथवा सत्यनिष्ठा की अपेक्षा स्पष्ट उपभोग है जितनी ही अधिक सशक्त होगा, ऐसी संस्कृति में अपराध की दर अवश्य ही उतनी ही ऊँची होगी।

8. किसी संस्कृति के सामाजिक क्षेत्र में वैज्ञानिक अभिमुखीकरण जितना ही अधिक तीव्र होगा, उसमें अपराध करने की प्रवृत्ति उतनी ही अधिक होगी।

9. किसी संस्कृति में राजनीतिक भ्रष्टाचार की सहिष्णुता जितनी ही अधिक होगी, अपराध करने की प्रवृत्ति उसमें उतनी ही अधिक जाग्रत होगी।

10. किसी संस्कृति में कानूनों की अवज्ञा करने की प्रवृत्ति जितनी ही अधिक विकसित होगी उसमें आपराधिक घटनाएं उतनी ही अधिक घटित होगी।

11. किसी संस्कृति में समूह निष्ठा की भावना जितनी ही अधिक होगी, अपराध करने की भावना उसमें उतनी ही अधिक होगी।

12. किसी संस्कृति में प्रतियोगिता में सफल व्यक्तियों का जितना ही अधिक समादर किया जायेगा, उस प्रतियोगिता में असफल व्यक्ति उतना ही अधिक निराश होकर अपराध करेंगे।

इसके अतिरिक्त टैफ्ट के अनुसार वह समाज जिसमें सिद्धान्ततः जनतांत्रिक मूल्यों का यद्यपि समर्थन तो किया जाता है किन्तु व्यावहारिक रूप में जनतांत्रिक मूल्यों के प्रतिकूल कार्य किया जाता हो, जिसमें कानून के प्रति लोगों में आदर की भावना पाई जाती हो, किन्तु कानून की अवज्ञा करने वालों, अपराधियों अथवा सफेदपोश अपराधियों व संगठित अपराधियों को संरक्षण प्रदान किया जा रहा हो, जिसमें परम्परागत सामाजिक मानकों के प्रति काफी श्रद्धा हो, किन्तु गैर सामाजिक मानकों का उल्लंघन करने वालों के प्रति विरोध न प्रकट किया जा रहा हो, जिसमें शिक्षा की समुचित व्यवस्था तो है

लेकिन व्यवस्था केवल कुछ चयनित व्यक्तियों को इस प्रतियोगितापूर्ण जगत में भविष्य में भाग लेने के लिए तैयार करने के लिए हो, तो ऐसी व्यवस्था विचलनकारी, विघटनकारी एवं अपराधी व्यक्तियों के लिए उपादेयी होगा न कि समंजनकारी एवं संगठनकारी व्यक्तियों के लिए उपादेयी होगी। ऐसी स्थिति में अपराधी एवं अनपराधी व्यक्तियों के बीच संघर्ष अनिवार्यतः घटित होंगे और अक्सर अपराध का रूप धारण करेंगें।

समीक्षा - टैफ्ट यद्यपि अपने अपराध के कारणत्व की स्थापना में सामान्य संस्कृति को अपराध का अद्वितीय कारक व परिवर्त्य मानता है तथापि अपराधशास्त्र के विद्वान लेखकों ने इस सिद्धान्त की आलोचना की है। प्रमुख आलोचनाएँ इस प्रकार हैं-

बार्न्स तथा टीटर्स का मत है कि जहाँ एक सम्पूर्ण अपराध चित्र का सम्बन्ध है सामान्यतः कोई भी प्रोफेसर टैफ्ट की इस धारणा से सहमत हो सकता है। यद्यपि अपराध की अन्य सभी प्राक्कल्पनाओं की भाँति इसमें भी कुछ सत्यता है किन्तु उनकी धारणा यह स्पष्ट नहीं कर पाती है कि अमेरिका के ही अधिकांश व्यक्ति भौतिकवादी तथा प्रायः अक्खड़ संस्कृति के शिकार क्यों नहीं होते जैसा कि उन्होंने वर्णन किया है। पुनः बार्न्स तथा टीटर्स का मत है कि व्यापारिक व व्यवसायिक तथा राजनीतिक जीवन के नैतिक स्तर में चाहे कितनी ही गिरावट क्यों न आ गई हो, हम यह अनुभव करते हैं कि लाखों नागरिक इन सांस्कृतिक विचलनों से ऊपर दिखाई पड़ते हैं तथा उन्होंने न केवल अपराध तथा अनैतिकता से अपने को दूर रखा है बल्कि यथासम्भव उनका विरोध भी किया है।

पुनश्च बार्न्स एवं टीटर्स का मत है कि सरदलैण्ड के समान टैफ्ट की धारणा निस्सन्देह बहुत से अपराधों की व्याख्या करने में सफल है। किन्तु ऐसे सैकड़ों तथा हजारों उदाहरणों में इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

टैफ्ट स्वयं भी अपराध के ऐसे सांस्कृतिक सिद्धान्तों को यद्यपि आपराधिक प्रघटनाओं के रहस्योदघाटन करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण मानता है। तथापि इसे वह सम्पूर्ण रूप से सांस्कृतिक सिद्धान्त स्वीकार करने का पक्षधर नहीं है। क्योंकि वह शारीरिक अथवा आनुवांशिक व्यक्तिगत अन्तरों को भी अत्यधिक अथवा असामान्य आपराधिक व्यवहार की व्याख्या के लिए उत्तरदायी मानता है। यद्यपि वह यह भी स्वीकार करता है कि ये कारक सापेक्षतः सामान्य संस्कृति से प्रभावित होते हैं। इस अर्थ में अपराध सामान्य संस्कृति की उपज है न कि असामान्य संस्कृति की। अतः टैफ्ट का कहना है कि अपराध की तात्कालिक व्याख्या के लिए हमें तीन दिशाओं में ढूँढना होगा।

1. हमें कुछ अपराधियों के असामान्य व्यक्तित्व प्रकार को समझना होगा।

2. हमें विशेषकर उन अपराधियों के सामान्य अनुभवों को समझना होगा जो कभी गिरफ्तार नहीं किये गये हैं।

3. हमें सामान्य संस्कृति का प्रभाव को जानना होगा जो कुछ अपराध के केसों को प्रत्यक्षः प्रभावित करते हैं किन्तु जब हम गहन खोज करते हैं तो असामान्य व्यक्तित्व तथा असामान्य अनुभव दोनों को सामाजिक व्यवस्था तथा मूल्यों का उत्पादन मानते हैं।

5.4.1 अपराध की संस्कृति संघर्ष का सिद्धान्त (Culture Conflict Theory of Crime)

थार्स्टेन सेलिन ने अपराध के संस्कृति संघर्ष के सिद्धान्त को विकसित किया है। अपराधी की वैधानिक परिभाषा को अस्वीकार करते हुए सेलिन ने तर्क प्रस्तुत किया है कि अपराधी तथा अनपराधी के मध्य प्रमुख अन्तर यह है कि वे भिन्न आचरण या व्यवहार या आदर्शों (Conduct of Norms) के सन्दर्भ में प्रतिक्रिया करते हैं। व्यवहार आदर्श की परिभाषा करते हुए एक सामान्य (उचित) तथा एक असामान्य (अनुचित) तरीका होता है। जो आदर्श समूह विशेष के मूल्यों पर निर्भर या आश्रित होता है।

प्रत्येक समूह के सदस्यों की उनके समूह विशेष के आदर्शों के अनुरूप एक जीवन शैली होती है, साथ ही कुछ मान्य व्यवहार होते हैं। ये व्यवहार समूह-विशेष के आदर्शों की प्राप्ति में सहायक होते हैं, अतएव समूह के प्रति आदर्शोन्मुख होते हैं किन्तु एक समाज में विभिन्न समूह होते हैं, अतएव विभिन्न समूहों के विभिन्न आदर्श होते है।

प्रत्येक समूह के सदस्य अपने समूह विशेष के आदर्शों को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए आचरण करते हैं । इस प्रकार आचरण करने के सन्दर्भ में जब विभिन्न समूहों के आदर्श परस्पर टकराते है। तब सांस्कृतिक संघर्ष का जन्म होता है। सेलिन के अनुसार एक आचरण या व्यवहार आदर्श अपने अपरिवर्तनीय स्वरूप में ..... वह आदर्श होता है जो आदर्शात्मक समूह में (अथवा उसके सन्दर्भ में) एक विशिष्ट व्यक्ति किन्हीं निश्चित परिस्थितियों में कुछ विशिष्ट तरीकों के आधार पर प्रस्थिति द्वारा परिभाषित कार्य को करने से मना करता है, तथा विलोमतः आदेश देता है।

सेलिन का मत है कि व्यवहार आदर्शों के बीच संघर्ष एक अधिक मौलिक प्रक्रिया से उत्पन्न होता है जिसे संस्कृति संघर्ष की संज्ञा दी जाती है। सेलिन ने संस्कृति संघर्ष के दो स्वरूपों का उल्लेख किया है।

1. प्राथमिक संस्कृति संघर्ष (Primary Culture Conflict) तथा

2. द्वितीयक संस्कृति संघर्ष (Secondary Culture Conflict)

प्राथमिक संस्कृति संघर्ष की उत्पत्ति तब होती है जब विभिनन संस्कृतियों के

आदर्शो तथा मूल्यों में टकराहट होती है, जैसे कुछ अप्रवासी (Immigrant) किसी नये देश में जाने पर भी अपने मूल देश की परम्पराओं एवं जीवन प्रतिमानों का पालन करना जारी रखते हैं। इस सम्बन्ध में सेलिन ने एक सिसिलियन पिता का उदाहरण दिया है जिसने 'न्यूजर्सी' में अपनी पुत्री को बहकाने वाले सोलह वर्षीय किशोर की हत्या कर दी तथा बाद में यह जानकर आश्चर्यचकित हुआ कि उसने ऐसा करके अपराध कर दिया है क्योंकि उसके अपने मूल देश में ऐसा कृत्य करना अपराध नहीं माना जाता था। इसके विपरीत द्वितीयक संस्कृति संघर्ष सामाजिक विभेदीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप घटित होता है जो हमारे स्वयं की संस्कृति के उदविकास का चरित्र चित्रण करता है।

चूँकि अधिकांश अपराध जन्मगत मूल निवासियों (native born) द्वारा सम्पादित किये जाते हैं, अतएव द्वितीयक प्रकार के संस्कृति संघर्ष को अपराध का प्रभावशाली सामाजिक कारण मानना समीचीन प्रतीत होता है । सेलिन की अपराध की व्याख्या का केन्द्र बिन्दु द्वितीयक संस्कृति संघर्ष के उदगम का वर्णन है। उनके अनुसार संस्कृति संघर्ष सामाजिक विभेदीकरण की प्रक्रियाओं के प्राकृतिक या स्वाभाविक परिणाम है प्रत्येक संस्कृति में सामाजिक विभेदीकरण उस संस्कृति की समांगता (Homogenity) से विषमांगता (Heterogeneity)में सामान्य विकास के कारण प्रस्फुटित होता हैं।

संस्कृति संघर्ष और अपराध की घटन की चर्चा करते हुए सेलिन का तर्क है कि संस्कृति संघर्ष अपराध का मूल कारण है। प्रश्न है कि संस्कृति संघर्ष क्यों होता है? इस प्रश्न के उत्तर में सेलिन का कहना है कि संस्कृति संघर्ष निम्नलिखित दो कारणों से घटित होता है -

1. प्रथम कारण यह है कि प्रत्येक समाज के सदस्य आपराधिक विधि संहिताओं में जो आदर्श मानदण्ड अन्तर्निहित होते है। उनके प्रति वे समानतः प्रतिबद्ध नहीं रहते हैं और
2. द्वितीय कारण यह है कि प्रत्येक समाज के सदस्य अन्य आचरण संहिताओं के प्रति भी समानतः प्रतिबद्ध नहीं रहते हैं।

इन प्रतिबद्धताओं की मात्राओं में विभेद का स्वाभाविक परिणाम होता है संस्कृति संघर्ष। सेलिन ने यह उदघाटित किया कि कोई समाज जितना ही अधिक औद्योगिक तथा व्यापारिक होता जाएगा, उतना ही अधिक वह सामाजिक विभेदीकरण की प्रक्रिया को परिणामस्वरूप आचरण प्रतिमानों में प्रतिद्वन्द्वों को उत्पन्न करेगा। ऐसी स्थिति में संस्कृति संघर्ष का जनन एक सामान्य तथ्य है। वस्तुतः सेलिन का यह सिद्धान्त इस विचार पर आधारित है कि कोई अपराध एवं दण्ड विधान किसी संस्कृति के नैतिक आदर्शों तथा प्रथाओं का मूर्त रूप होता है परन्तु किसी काल के मूर्तिकरण से ऐतिहासिक विकासों के

क्रम में पूर्ववत तादात्म्य नहीं रह सकता है अथवा कुछ उल्लेख जनमानस द्वारा आत्मसात भी नहीं किया जा सकता है, यह सम्भव है । अतएव सामाजिक मान मूल्यों, अभिरूचियों, तथा आदर्श मानदण्डों के अर्थों को लेकर सांस्कृतिक संघर्ष उत्पन्न हो सकते हैं । यथा, दो विभिन्न मान मूल्यों पर आधारित दो नैतिक दृष्टियों में संघर्ष हो सकता है। ऐसी स्थिति उपनिवेशों (दूसरे देश से आये हुए लोगों की बस्तियों या वह जीत हुआ देश जिसमें विजेता राष्ट्र के लोग आकर बस गये हों) में बहुधा प्रकट हो जाती है, जहाँ राजनीतिक विषयों में विधि सम्बन्धी आत्मसात या स्वांगीकरण अत्यन्त तीव्र होता है और एक वर्गगत आदर्शवादिता वैध रूप से स्थापित की जाती है। जहाँ कानून निरंकुश होते हैं और भ्रष्टाचार को प्रश्रय देते हैं वहाँ भी संघर्ष उत्पन्न हो सकता है। जहाँ कानून समाज द्वारा स्वीकृत मान मूल्यों के प्रसंग में पारित होते हैं परन्तु कुछ कबीलों या समूहों के अपने विधान से मेल नहीं खाते हैं, वहाँ भी संघर्ष घटित हो सकता है। स्पष्ट है कि संस्कृति संघर्ष का सिद्धान्त अत्यन्त व्यापक एवं विशद है और आपराधिता की प्रधान व्याख्या करने में भी समर्थ हैं ।

यहाँ यह उल्लेख्य है कि व्यक्तियों के प्रवसन (Migration) आदि से ही यह सिद्धान्त सम्बन्धित नहीं है, भले ही इन प्रवसनों से इनके दृष्टान्त प्राप्त हुए हैं। जनसंख्या की स्थानीय संरचना में किसी प्रकार के परिवर्तन के बिना ही विभिन्न संस्कृतियों में संघर्ष हो सकते हैं और यदि परिवर्तन हो तो भी तब कोई संघर्ष ही न हो, यह भी सम्भव है। परन्तु बहुधा यह संघर्ष जारी रह सकते हैं और अत्यन्त ही भीषण अपराधों के रूप में प्रस्फुटित हो सकते हैं। यही नहीं, प्रवसन की कई शताब्दियों बाद भी ऐसी भयावह स्थिति उत्पन्न या बनी रह सकती है। सेलिन को किंचित इन्हीं स्थितियों का ध्यान था जब उन्होंने कहा था सभी सांस्कृतिक संघर्ष अर्थों (Meanings) को लेकर ही घटित होते हैं। उदाहरणस्वरूप सामाजिक मान्य मूल्यों, अभिरुचियों तथा आदर्शमानदण्डों के अर्थों के सन्दर्भ में। जैसा उन्होंने विश्लेषण के क्रम में कहा कि सभ्यता के विकास के ये संघर्ष स्वाभाविक परिणाम होते है। और मानसिक संघर्ष अथवा सांस्कृतिक संहिताओं के संघर्षों के रूप में भी वे विवेचनीय होते हैं। विदेशी आदर्श मानदण्डों तथा रीतियों के प्रादुर्भाव से किसी भी वर्ग विधान में संघर्ष उत्पन्न हो सकता है। कभी कभी बिना मानसिक द्वन्द्व के भी भारी संघर्ष उत्पन्न हो सकते हैं। सामरिक विजय, संधिपत्र या सीमा नियमनों से कोई सुस्थापित समाज उखाड़ा जा सकता है और उसकी पद प्रतिष्ठा हीन कर दी जा सकती है। कालान्तर में दोनों अर्थात नये आगन्तुकों तथा प्राचीन लोकसमुदाय में सामंजस्य भी हो जाय, यह सम्भव है परन्तु संघर्ष या द्वन्द्व की भावना निरन्तर आती जाती रहती है। और समय समय पर हिंसात्मक प्रदर्शनों या विरोधों के रूप में धधक भी सकती है। इतिहास इस बात का साक्षी है। ईराक की कुर्द जनता, ब्रिटिश कोलम्बिया के फ्रेंच तथा कनाडिया या ब्रिटेन कोबेल्स जनसंख्या आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। भारत में भी

जो विभाजन के समय घटनाएं हुई अथवा जो अमेरिका में नीग्रो के प्रति हिंसाएं घटित हुई है। इस सिद्धान्त को पुष्ट करती हैं। नाजियों नेजो साठ लाख यहूदियों की नृशंस हत्याएं कर दीं वह इतिहास की अत्यन्त रोमांचकारी घटना ही नहीं है वरन अल्पसंख्यकों के प्रति निरन्तर अत्याचार तथा दमन, यहाँ तक कि इनके उन्मूलन की प्रवृत्तियों को पुष्ट करने वाली विस्मय भरी प्रघटना भी है।

5.4.2 अपराधी उपसंस्कृति के सिद्धान्त

उपसंस्कृति के सिद्धान्त अपराध की कारणता की व्याख्या एक सामाजिक समूह की उपसंस्कृति के सन्दर्भ में करते हैं। वे यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि कतिपय समूह कुछ ऐसे विशिष्ट आदर्शमानक एवं मूल्य विकसित करते हैं जो समाज की संस्कृति की मुख्यधारा से विचलित होते हैं। वे ऐसे विशिष्ट आदर्श मानकों एवं मूल्यों के आधार पर वृहत समाज में अपनी समस्याओं के निराकरण अथवा अपनी अवरूद्ध इच्छाओं व आकांक्षाओं की पूर्ति करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार उपसंस्कृति वृहत संस्कृति से भिन्न होती है। किन्तु इसके प्रतीक, मूल्य एवं विश्वास वृहत संस्कृति से ही गृहीत होते है। किन्तु इसके स्वरूप या तो विकृत कर दिये जाते हैं या अतिरंजित अथवा अतिशयोक्तिपूर्ण कर दिये जाते हैं या औंधा या उलटा कर दिये जाते हैं। वस्तुतः इस अवधारणा का विस्तृत प्रयोग विचलन के समाजशास्त्र में युवा संस्कृति (Youth Culture) के सन्दर्भ में किया जाता है।

अपराधी उपसंस्कृति के सिद्धान्त में यह मत स्थापित करने का प्रयास किया गया है कि अपराधी या अपचारी व्यवहार अपराधी उपसंस्कृति में अपराधी की सहभागिता का परिणाम है। अपराधी उपसंस्कृति को परिभाषित करते हुए हम यह कह सकते हैं कि सिद्धान्ततः यह वह उपसंस्कृति है जिसमें उपसंस्कृति द्वारा समर्थित प्रमुख भूमिकाओं के पालन के लिए अपराधी क्रिया के कुछ निश्चित स्वरूपों की तत्वतः आवश्यकता होती है। अपराधी उपसंस्कृति में विचलनकारी परम्पराओं के अस्तित्व और विस्तारण तथा आपराधिक व अपचारिक आचरणों व व्यवहारों पर विशेष बल दिया जाता है। वास्तव में, अपराधी उपसंस्कृति की एक विशिष्ट श्रेणी है जिसमें विचलनकारी व्यवहार का एक विस्तृत विस्तार समाविष्ट है, जैसे आवारापन (Truancy), अपवित्रता (Prefanity), कला विध्वंसक (Vandalism), चोरी (Theft), अवैध लैंगिक संबंध (Illicit Sex Relation), अनियमित या उपद्रवी व्यवहार (Disorderly Conduct) तथा मद्यासक्ति (Drunkenness)। किन्तु एक अपराधी उपसंस्कृति अपराधी क्रिया के प्रभुत्व द्वारा अन्य विचलनकारी उपसंस्कृति से भिन्न है। अनेक ऐसी भी आपराधिक क्रियाएँ घटित होती है जो अपराधी उपसंस्कृति में सहभागिता का निर्धारित परिणाम नहीं होती है। किन्तु ये अन्य क्रियाओं अथवा स्नायुरोग (neurosis) या मानसिक अशान्ति के कुछ स्वरूपों का मात्र

आकस्मिक परिणाम होती है। ऐसे उदाहरणों में किशोर अपने समकक्ष किशोरों द्वारा निर्धारित भूमिकाएँ नहीं करता है। उसका व्यवहार अपराधी उपसंस्कृति के प्रभाव का परिणाम नहीं है। इस प्रकार अपराधी उपसंस्कृतियों द्वारा समर्थित क्रियाओं तथा असमर्थित क्रियाओं में अन्तर है। एकान्तवासी अपराधियों का अपराध उपसंस्कृति अपराध का भाग नहीं है।

वस्तुतः अपराधी उपसंस्कृति के सिद्धान्त विभिन्न सामाजिक वर्गों की कुछ विशिष्ट विशेषताओं पर उनके बीच तथा उनके द्वारा उत्पन्न की गयी उपसंस्कृतियों के बीच के संघर्षों पर आधारित है। अपराधी उपसंस्कृति के सिद्धान्त में यह पर्यवेक्षित करने का प्रयास किया गया है कि अपराधी व्यवहार किस सीमा तक उपसंस्कृति द्वारा स्वीकृत है। तथा किस सीमा तक यह उपसंस्कृति की प्रस्थिति माँगों (Status requirement)या आवश्यकताओं द्वारा प्रभावित है।

अपराधी उपसंस्कृति न केवल संस्कृति की मुख्यधारा को अस्वीकार करती है प्रत्युत यह उसे औंधा या उलट देती है। कोहेन के शब्दों में "अपराधी उपसंस्कृति वृहत संस्कृति से आदर्शमानकों को लेती अवश्य है किन्तु उन्हें उलट पलट देती है" ("The deligquent subculture takes the norms from the larger culture but turns of them upside down")। इस प्रकार चोरी, बर्बरता और भगोड़ापन इत्यादि जिसकी विस्तृत समाज में निन्दा एवं अनुदार भर्त्सना व आलोचना की जाती है, अपराधी उपसंस्कृति में समादृत होती है एवं ऐसे कृत्यों को उच्च मूल्य प्रदान किया जाता है। वस्तुतः अपराधी उपसंस्कृति वह है जो विचलनकारी विश्वासों, आदर्शमानकों और मूल्यों को स्वीकार करते हुए उन्हें समर्थन प्रदान करती है। इसका तात्पर्य यह है कि कुछ व्यक्ति विचलनकारी कार्य इस लिए करते हैं क्योंकि उन्होंने ऐसे कार्य करने वाले व्यक्तियों के समूह या गिरोह से स्वयं का तादात्म्य स्थापित कर लिया है जो बृहत संस्कृति के साथ केन्द्रीय रूप से संघर्षरत है। अन्य शब्दों में, ऐसे व्यक्तियों को उन क्रियाकलापों व गतिविधियों के लिए ऐसे समूहों या गिरोहों का समर्थन मिलता है जिनपर वृहत संस्कृति द्वारा दण्ड का ठप्पा लगाया गया है। ऐसे समूहों व गिरोहों की उपसंस्कृतियाँ बृहत समाज व संस्कृति के प्रत्यक्षतः विरोध में होती है। उदाहरणस्वरूप कुछ अपराधी समलिंगी अपचारी या नशीले पदार्थों के आदि लोग विचलकों का अपना अलग समूह बना सकते हैं। ऐसे प्रत्येक समूह की कुछ ऐसी विशेष प्रवृत्तियाँ आदर्श मानक, विश्वास, मूल्य और आचरण पद्धतियाँ होती है जिनका पालन उस समूह के सदस्य अनिवार्यतः किया करते हैं।

अपराधी उपसंस्कृति सिद्धान्त की ओर अमेरिकी चिन्तकों का ध्यान विशेष रूप से केन्द्रित हुआ है जिसमें अग्रलिखित चिन्तकों का विशेष योगदान है।

(क) अलबर्ट के-कोहेन का योगदान (Contribution of Albert K. Cohen)

अपराधी उपसंस्कृति सिद्धान्त के प्रवर्तक अलबर्ट के-कोहेन हैं। कोहेन अपने इस सिद्धान्त के माध्यम से 'विभेदक साहचर्य ' ''सांस्कृतिक प्रसारण सिद्धान्त तथा आदर्श शून्यता या एनॉमी सिद्धान्त'' की मूल धारणाओं को और भी अधिक विस्तृत करने का प्रयास किया है। ''विभेदक साहचर्य सिद्धान्त'' तथा ''सांस्कृतिक प्रसारण सिद्धान्त'' इस तथ्य की व्याख्या करते हैं कि किस प्रकार अपराधी व्यवहार सीखा जाता है। तथा उसका प्रसार पीढ़ी होता रहता है। अपराधी उपसंस्कृति के सिद्धान्त में कोहेन ने इस तथ्य की व्याख्या करने का प्रयास किया है कि अपराधी व्यवहार के प्रतिरूप किस प्रकार चयन में प्रथम स्थान पाते है।और ये निम्न वर्गों में या श्रमिक वर्गों में अन्य वर्गों की अपेक्षा क्यों अधिक पाये जाते हैं।

वस्तुतः कोहेन का यह कार्य मर्टन के आदर्शशून्य ''एनॉमी'' के सिद्धान्त का संशोधित एवं परिवर्द्धित स्वरूप हैं कोहेन अपराध के अपने अध्ययनों के आधार पर श्रमिक वर्ग विचलन पर मर्टन के विचारों की दो आलोचनाएं प्रस्तुत करते हैं। प्रथमतः उनका तर्क है कि अपराध सामूहिक प्रत्युत्तर है न कि वैयक्तिक। जबकि मर्टन ने वर्ग संरचना में इसे वैयक्तिक प्रत्युत्तर के रूप में स्वीकार किया है। कोहेन इसे वैयक्तिक न मानकर सामूहिक प्रत्युत्तर के रूप में अंगीकार करते हैं। द्वितीयतः कोहेन का तर्क है कि गैर-उपयोगितावादी अपराधों, जैसे बर्बरता और आनन्ददायक सैर से सम्बद्ध अनुपयोगितावादी अपराधों जो पूर्ण या गैर आर्थिक या गैर वित्तीय है की कारणिक व्याख्या में मर्टन पूर्णतया असफल रहे हैं। कोहेन का प्रश्न है कि क्या ऐसे अपराध, संस्कृति की मुख्य धारा की कामयाबी लक्ष्य द्वारा प्रत्यक्षतः अभिप्रेरित है? तथापि वे स्वीकार करते हैं कि मर्टन का यह सिद्धान्त प्रौढ़ व्यावसायिक अपराधों तथा सम्पत्ति अपराध के पुरातन एवं अर्द्ध व्यावस्थापिक चोरों की व्याख्या के लिए उच्चतः युक्तियुक्ति है।

कोहेन ने मर्टन की ही भाँति अपराध की कारणता की व्याख्या में ''सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति, नैराश्य'' (Socio-economic status frustration) को अपराधी व बालापराधी व्यवहार उत्पन्न करने का प्राथमिक एवं मूल कारण माना है। निम्न वर्गीय बालक, मध्य वर्गीय समाज में अपनी सीमित क्षमताओं के साथ लक्ष्यों को प्राप्त करने की प्रतिस्पर्धा में भाग लेता है। इसमें सफल होने के लिए उसे मध्यवर्गीय अभिवृत्तियों को अपनाना पड़ता है। किन्तु जब वह ऐसा करने में सफल नहीं हो पाता तब वह मध्यवर्गीय एवं परम्परागत मूल्यों को परित्याग देता है। ''अपराधी समूह या दल'' (Gang) इस स्थिति में उसे एक समानान्तर मध्यवर्ग का विरोधी प्रस्थिति व्यवस्था उपलब्ध कराता है तथा उसकी मध्यवर्गीय विरोधी भावना को एक वैधानिक आधार देता है।

वस्तुतः कोहेन ने मध्यवर्ग में अन्तर्निहित आदर्शों एवं मूल्यों की विपरीतता के आधार पर अपराधिता एवं बाल अपराधिता की कारणता की व्याख्या करने का प्रयास किया है। कोहेन ने अपने इस सैद्धान्तिक रचना को इस मान्यता पर आधारित किया है कि अमेरिकावासियों के जीवन में अमेरिका की वर्ग व्यवस्था मध्य तथा श्रमिक (निम्न) वर्गों में अत्यधिक केन्द्रित है। एक निम्न वर्ग के पड़ोस में श्रमिक वर्ग के बालकों को अनेक कठिन परिस्थितियों में चुनाव करना पड़ता है। अपनी उच्च शिक्षा के द्वारा वे अपने निम्न वर्ग के रहन सहन के तरीकों को छोड़ने का प्रयास करते हैं और उसके स्थान पर परम्परागत रूप से स्वीकृत मध्यवर्ग के रहन सहन के तरीकों को अपनाने का प्रयास करते हैं वे कुछ ही प्रयास से अनेक कठिनाइयों के विद्यमान होते हुए भी इस परिवर्तन को लाने में सफल हो जाते है। शेष सबको अपनी प्रस्थिति से ही सन्तोष करना पड़ता है। यह मध्यवर्ग के तरीकों में अपने को अधिक दूर रखते है। और अपने ही तरीके अपनाने का प्रयास करते है। ये बालक प्रायः अपराधों से दूर रहते है। कालान्तर में ये बालक कुशल, अर्द्धकुशल, अकुशल श्रमिक बन जाते है। अधिकांशतः वे बालक अत्यधिक अपराधी क्षेत्र में अच्छे बालकों अथवा मध्य वर्ग से पृथक समूह के बालकों में गिने जाते हैं। लेकिन कुछ बालक दोनों में से एक ही प्रकार का समायोजन करने में असमर्थ होते हैं। उनकी प्रतिक्रिया यह होती है कि वे मध्यवर्ग के स्तरों का खुलकर विरोध करने लगते हैं, अथवा उनको अपनाने के सभी रास्ते बन्द देखकर वे अपना नहीं पाते, तब उनका व्यवहार अत्यन्त ही अवांछनीय हो जाता है। बालकों का यह समूह अपराधी गुट की उपसंस्कृति का केन्द्र बिन्दु बन जाता है। इस तिरस्कृत अपराधी उपसंस्कृति को इसकी पाँच मुख्य विशेषताओं द्वारा भली प्रकार समझाया जा सकता है - (1) अनुपयोग व्यवहार (Non-utilitarion behaviour) (2) विद्वेषपूर्ण व्यवहार (Malecious behaviour) (3) नकारात्मकवादी व्यवहार (Negativistic behaviour) (4) अल्पकालीन सुख दुख की भावना (Short run hedonism) तथा (5) सामूहिक स्वार्थ (Group autonomy)

कोहेन ने अपनी पुस्तक 'डेलिन्क्वेन्ट ब्वॉयज दि कल्चर ऑव दि गँग' में बाल अपराधी उपसंस्कृति के उदभव पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है। कोहेन की यह व्याख्या पूर्णतया श्रमिक वर्गीय तथा मध्य वर्गीय भिन्नताओं पर आधारित है। उनका मत है कि श्रमिक वर्ग तथा मध्य वर्ग के बालकों में प्रस्थिति स्तर के बोध की प्रधानता होती है। मध्यवर्गीय स्तर में आकांक्षा व्यक्ति के दायित्व तथा कृतित्व, बौद्धिक योजना, हिंसात्मक दमन आदि भावों एवं आदर्शों की प्रधानता रहती है। यद्यपि मध्यवर्गीय बालक विस्तृत संस्कृति ग्रहण करते है।, तथापि इस प्रकार की संस्कृति का ग्रहण श्रमिक वर्ग के बालक भी करना चाहते है। किन्तु जब श्रमिक वर्ग के बालक मध्यवर्गीय संस्कृति को ग्रहण कर उनके समतुल्य प्रस्थिति प्राप्त नहीं कर पाते है। तो उनमें मानमर्दन या मानभंग

तथा नराश्य की भावना का प्रादुर्भाव होता है। परिणामतः श्रमिक वर्गीय बालकों में स्वभावतः प्रतिद्वन्द्व छिड़ जाता है तथा समंजनकारी प्रक्रिया भी अवरूद्ध हो जाती है और अन्ततः ये बालक बाल आपराधिक समाधान में तुष्टि पाते हैं। इस प्रकार ये एक उपसंस्कृति का उदभव करते है। कोहेन के अनुसार विशिष्ट रूप से बाल अपराधी उपसंस्कृति श्रमिक वर्गीय (विशेष रूप से वे जो मध्यवर्गीय समाज को अस्वीकार करते हैं) बालकों की प्रस्थिति समस्याओं का प्रभावकारी रूप में समाधान कर सकती है। कोहेन का आधारभूत विश्वास है कि श्रमिक वर्ग के बालकों की प्रमुख समस्याएँ प्रस्थिति स्तर के चारों ओर परिभ्रमण करती है। कोहेन के अनुसार श्रमिक वर्ग के बालकों का सामान्य प्रत्युत्तर'' (Stable Corner boy response) है।

स्थिर कोने का बालक अपना जीवन प्रतिमान स्वीकार करता है तथा अपना वर्ग बनाने का प्रयास करता है। वह ''समतुल्य'' श्रमिक वर्गीय बच्चों के समुदाय से यथासम्भव अलग हो जाता है । वह अपराध से दूर रहना चाहता है। श्रमिक वर्ग के कुछ बालक कालेज के बालक (College boy) के जीवन प्रतिमान को स्वीकार करने के सन्दर्भ में कोने के बालक (Corner boy) के जीवन प्रतिमान को त्याग देते हैं जिसका तात्पर्य है कि मध्यवर्गीय नियमों तथा मूल्यों के अनुसार प्रस्थिति खेल (Status game) खेलने के लिए तत्पर या इच्छुक है। इससे बालक अपराधी उपसंस्कृति की ओर आकर्षित नहीं होते हैं। ज्ञातव्य है कि कोहेन ने कार्नर बॉय (Corner boy) तथा कालेज बॉय (College boy) दोनों पदों को व्हाइट (White) द्वारा विरचित ''स्ट्रीट कार्नर सोसाइटी'' (Street Corner Society) ग्रन्थ से ग्रहण किया है।

किन्तु वे श्रमिक वर्गीय बालक जो मध्यवर्गीय मानदण्डों का परित्याग करते हैं, उनका आपराधिक प्रत्युत्तर (Deligquent Response) होता है। अपराधी उपसंस्कृति के सदस्य आवारा हो जाते हैं जबकि अच्छे मध्य वर्ग के बच्चे आवारा नहीं होते हैं। कोने के बालक का जीवन प्रतिमान मध्यवर्गीय नैतिकता से समझौता कर लेता है, न कि पूर्ण विकसित अपराधी उपसंस्कृति से। वह बालक जो मध्यवर्गीय नैतिकता से पूर्णतया सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है अपने नैराश्य के स्त्रोतों की ओर आक्रमणशीलता तथा विरोधी व्यवहार के विरूद्ध निषेध नहीं करता है। वह कोने का बालक जो अपराधी उपसंस्कृति में सम्मिलित नहीं होता है तथा फिर भी मध्यवर्गीय आदर्शों से समझौता कर लेता है, मध्य वर्ग के विरूद्ध अपने विरोध तथा आक्रमण का निषेध करता है। इसके अवपरीत अपराधी उपसंस्कृति आक्रमण की वैधता को स्वीकार करती है।

कोहेन का मत है कि अपराधी उपसंस्कृति अनुपयोगी द्वेषपूर्ण तथा नकारात्मक होती है। अनुपयोगी से उनका तात्पर्य यह है कि बालक वास्तव में अभावग्रस्तता के परिणामस्वरूप वस्तुओं की चोरी नहीं करते हैं। वे चोरी केवल अपने गौरव तथा प्रस्थिति

के लिए करते हैं। द्वेष से उनका तात्पर्य है दूसरों की पराजय में आनन्द प्राप्त करना, वर्जित कर्मों की अवज्ञा में आनन्द प्राप्त करना। नकारात्मकता से उनका तात्पर्य यह है कि अपराधी उपसंस्कृति मध्य वर्ग की संस्कृति के मूल्यों को अस्वीकार करती है अर्थात अपराधी उपसंस्कृति में वे मानदण्ड सही माने जाते हैं जो मध्यवर्ग की संस्कृति में गलत समझे जाते है। कोहेन के अनुसार अपराधी उपसंस्कृति की एक अन्य विशेषता अल्पकालिक सुखवाद है, जिससे उनका तात्पर्य है कि गिरोह के सदस्य दीर्घकालीन लक्ष्यों, नियोजित क्रियाओं तथा प्रवीणताओं को विकसित करने के व्यवहार के संदर्भ में बहुत कम अभिरुचि लेते है।

अपराधी उपसंस्कृति "किशोर जनसंख्या के पुरूष वर्गीय क्षेत्र में संकेन्द्रित होती है। यह किशोरों के जीवन का एक प्रतिमान है। कोहेन के अनुसार,स्त्री अपराध अधिकांश बालिकाओं के बालकों के साथ के समायोजन पर आश्रित होता है, अर्थात लिंग से सम्बन्धित व्यवहार ही इसके लिए उत्तरदायी है न कि चोरी तथा द्वेषपूर्ण हानि। बाल न्यायालय में बालिकाओं के बारे में अधिकांश शिकायतें भगोड़ तथा अनियंत्रणीय अथवा दृढ़वादिता (लिंग सम्बन्धित अपराध) के सन्दर्भ में की गई है।

कोहेन का अपराधी उपसंस्कृति का सम्प्रत्यय निम्न वर्ग या श्रमिक वर्ग की ओर उन्मेषित है। मध्यवर्ग का आदर्श एक ऐसी उपसंस्कृति में सहभागिता के विरूद्ध एक सामाजिक टीका है। कोहेन ने ऐसे नौ मूल्यों का उल्लेख किया जिनमें मध्यम वर्ग के बच्चों का लगाव होता है। ये निम्नलिखित है -

महत्वाकांक्षा, वैयक्तिक उत्तरदायित्व तथा स्वावलम्बन, प्रवीणताओं तथा सकारात्मक कार्य सम्पादन का अधिग्रहण, भविष्य का महानतर पुरस्कारों के लिए तात्कालिक संतोषणों का स्थगन, तर्कणापरक तथा दूरदर्शिता, अच्छे ढंग, शारीरिक हिंसा तथा आक्रमण का परिहार, हितकर तथा रचनात्मक मनोरंजन एवं अवकाश तथा सम्पत्ति के लिए आदर।

कोहेन ने मध्यवर्गीय बालकों में अपराध के एक पक्ष की सम्भाव्य व्याख्या को सुझाया है और वह दीर्घकालीन मातृत्व के विरूद्ध पुरूषोचित विरोध का एक प्रकार है..... अपने पुरूषत्व की रक्षा करने की एक आधारीय आवश्यकता की एक अभिव्यक्ति है। उनका मत है कि निम्न वर्गीय बालक में अपने पुरूषत्व की रक्षा के लिए लड़ने या विरोध करने का साहस नहीं होता है क्योंकि उसका मातृत्व पक्ष ऐसा करने की आज्ञा या आदेश नहीं देता है।

अपराधी उपसंस्कृति के प्रकार (Types of Delinquent Subculture) कोहेन तथा शार्ट ने अमेरिकी नगरीय गन्दे पर्यावरण में अपराधी उपसंस्कृति में निम्नलिखित प्रकारों का उल्लेख किया है-

1. पैतृक पुरूष उपसंस्कृति (The Parent Male Subculture)
2. संघर्ष उन्मेषित उपसंस्कृति (The Conflict Oriented Subculture)
3. संवेदन-मंदक व्यसनी उपसंस्कृति (Drug Addict Subculture)
4. अर्द्धव्यावसायिक चोरी (Semi-Professional Theft)
5. मध्यवर्गीय अपराधी उपसंस्कृति (Middle Class Delinquent Subculture)

पैतृक परुष उपसंस्कृति - उपसंस्कृति का वह आधारभूत प्रकार है जो गन्दी बस्तियों गली गिरोह (Street Gang) अथवा गली कोने के समाज (Street Corner Society)में श्रमिक वर्ग के बालकों में विकसित होती है। संघर्ष उन्मेषित उपसंस्कृति गिरोहों का एक विस्तृत संगठन (An elaborate organization) है जो उप गिरोहों में तृणभूमि (Truf), अपना स्वयं का क्षेत्र (Their own Territory) तथा अन्य गिरोहों के साथ शारीरिक संघर्ष में लग जाने की तत्परता (Readiness to engage in physical conflict) के नामों से जाने जाते हैं। संवेदनमंदक व्यवसनी उपसंस्कृति जीवन प्रतिमान के रूप में संवेदनमंदकों के प्रयोग पर संकेन्द्रित रहती है तथा इसके सदस्य अपराध के हिंसात्मक स्वरूपों पर भौहें चढ़ा लेते हैं अथवा अप्रसन्नता प्रकट करते हैं। वे अपराध के आय बढ़ाने वाले स्वरूपों को पसन्द करते हैं। जो एक समाज में संवेदनमंदक आदत को प्रोत्साहित करने में आवश्यक है जिसमें संवेदनमंदक केवल अवैध बाजार में तथा अधिक मूल्य पर प्राप्य है। कोहेन तथा शार्ट के अनुसार अर्द्धव्यावसायिक चोरी की उपसंस्कृति, पैतृक उपसंस्कृति में अवयस्क वर्ग के सहभागियों के सन्दर्भ में प्रयुक्त होती है जो सोलह अथवा सत्रह वर्षों के बाद अपराध से अलग होने के बजाय उसे संयुक्त रखती है। ऐसे किशोर अपने मित्रों से स्वयं ही अलग हो जाते हैं तथा अधिक उपयोगी, व्यवस्थित तथा आर्थिक अपराध की दिशा में अग्रसरित हो जाते हैं, जिन्हें अर्द्धव्यावसायिक चोरी कहते है।

यद्यपि कोहेन तथा शार्ट का विश्वास है कि मध्यवर्गीय उपसंस्कृति निश्चित रूप से विद्यमान है। वे पैतृक उपसंस्कृति, संघर्ष उन्मेषित उपसंस्कृति, संवेदनमंदक उपसंसस्कृतिक तथा अर्द्ध व्यावसायिक चोरी की अपेक्षा इसकी विशेषता बताने में कठिनाई महसूस करते है। यह सम्भाव्य रूप से प्रतीत होता है कि द्वेष, युद्ध प्रियता तथा हिंसा मध्य-वर्गीय संस्कृति में अन्तर्विष्ट होती है तथा ये उपसंस्कृतियां जानबूझकर संकटग्रस्त रहती हैं तथा कृत्रिम अनुत्तरदायी खिलाड़ी (Play boy) उपागम की प्रतीकात्मक क्रियाएं हमारी संस्कृति में युवा भूमिकाओं तथा अधिकांशतः, लिंग, मद्य तथा मोटरकारों की ओर संकेन्द्रित होती है।

समीक्षा

कुछ विद्वानों ने कोहेन के अपराधी उपसंस्कृति के सिद्धान्त में निम्नलिखित

त्रुटियो का उल्लेख किया है -

1. वाल्टर सी रेकलेस (1971:414) का मत है कि कोहेन के सिद्धान्त के विरोध में यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या अपराधी समूहों के सन्दर्भ में अपराधी उपसंस्कृति का प्रयोग करना वास्तव में उपयुक्त पद है जो ऐसी क्रियाओं, मूल्यों तथा अभिवृत्तियों के विस्तार को विकसित करता है, जो प्रभावी समाज की क्रियाओं, मूल्यों तथा अभिवृत्तियों से संघर्ष करते है।

2. जे मिल्टन यिंगर (1960:629) का मत है कि उपसंस्कृति पद की अपेक्षा "संस्कृति निरोधक" (Contra culture)पद अधिक उपयुक्त है।

3. जॉन किट्स्यूज तथा डेविड डाइट्रिक ने कोहेन के इस कथन पर आपत्ति प्रकट की है कि निम्न या श्रमिक वर्ग का बालक अपना मूल्यांकन मध्यवर्गीय प्रतिमानों पर करता है। उनका तर्क है कि कोहेन स्वयं इस तथ्य के बारे में दुविधाग्रस्त थे क्योंकि उन्होंने एक स्थान पर यह लिखा है कि श्रमिक वर्ग का बालक इस बात की परवाह नहीं करता है कि मध्यवर्गीय लोग उसके बारे में क्या सोचते है। दोनों विद्वानों का मत है कि चूँकि कोहेन को स्वयं ही अपने तर्क में विश्वास नहीं था, अतएव हम उसके कथन के आधार के बजाय कि श्रमिक वर्ग का बालक मध्यवर्गीय स्तर को स्वीकार करने का प्रयास करता है, यह क्यों न मान लें कि वह उसे अस्वीकार करने का प्रयास करता है।

पुनः जॉन किट्स्यूज तथा ड्राइट्रिक ने कोहेन की अपराधी उपसंस्कृति की व्याख्या करने में उसकी प्रतिक्रिया निर्माण की मनोवैज्ञानिक अवधारणा पर भी आपत्ति प्रकट की है। कोहेन की मान्यता है कि निम्न या श्रमिक वर्ग का बालक अपनी प्रस्थिति में परिवर्तन लाने के लिए मध्यवर्गीय आदर्शों व मानदण्डों को ग्रहण करने का प्रयास करता है किन्तु ऐसा करने में उसे मध्यवर्गीय व्यक्तियों में सतत जूझना पड़ता है। इन व्यक्तियों का समर्थन प्राप्त करने के लिए उसे अपनी आदतों, मूल्यों, आकांक्षाओं, वाणी तथा अपने मित्रों को बदलना पड़ता है। ऐसा करने की भी उपलब्धि के रूप में जो कुछ वह प्राप्त करता है उससे हतोत्साहित होकर गली अथवा किसी तहखाने में क्लब गृह का सदस्य बनता है जहाँ सुविधाएँ तो बहुत कम प्राप्त होती है। किन्तु मानवीय सम्बन्धों को वह अपेक्षाकृत अधिक संतोषजनक पाता है। किट्सयूज तथा डाइट्रिक का मत है कि कोहेन का यह कथन उसके प्रतिक्रिया निर्माण के सिद्धान्त के विपरीत है क्योंकि श्रमिक वर्ग का बालक मध्यवर्गीय आदर्शों या मानदण्डों को ग्रहण करने का न तो कोई सक्रिय प्रयास करता है और न ही मध्यवर्गीय व्यक्तियों का अपने समुदाय में अनाधिकार प्रवेश या घुसपैठ एवं उनके द्वारा बल पूर्वक आरोपित संस्कृति को ही अच्छा मानता है।

पुनश्च किट्स्यूज तथा डाइट्रिक कोहेन के इस तर्क को कि अपराधी उप संस्कृति अनुपयोगी, द्वेषपूर्ण तथा नकारात्मक होती है, गैर तार्किक (Non-logicomeningful)

मानते हैं। इन दोनों विद्वानों का मत है कि वे लक्षण वस्तुतः मध्यवर्गीय संस्कृति के लक्षण हैं न कि श्रमिकवर्गीय के।

4. साइकिस तथा डेविड माट्जा का मत है कि निम्नवर्गीय संस्कृति के सदस्य मध्यवर्गीय संस्कृति के आदर्शों को अस्वीकार नहीं करते प्रत्युत तटस्थीकरण की प्रविधि (Technique of Neutralization) अपना कर अपने विचलनकारी व्यवहार को तर्कपरक बनाते हैं। साइकिस तथा माट्जा की आलोचना का प्रत्युत्तर देते हुए कोहेन ने स्वयं भी यह स्वीकार किया है कि उसने अपने सिद्धान्तों में तटस्थीकरण की प्रविधि के प्रकारों पर अवश्य ही ध्यान नहीं दिया है जो उसकी एक गम्भीर त्रुटि का परिणाम है। अतएव इसे उसने अपने सिद्धान्त में समाविष्ट करते हुए कहा है कि "माट्जा का प्रतिक्रिया निर्माण" का विवरण वास्तव में तटस्थीकरण की एक प्रक्रिया है तथा उपसंस्कृति भी एक तटस्थीकरण से सम्बन्धित तत्व है।

5. मार्शल क्लिनार्ड के अनुसार निम्नवर्गीय संस्कृति के सदस्य मध्यवर्गीय सदस्यों के आदर्शों का अनुशीलन नहीं करते है। प्रत्युत उनका विरोध करते हैं तथा साथ ही अपनी संस्कृति के सदस्यों के साहस, उद्दीपन, पुलिस के प्रति घृणा एवं अन्य संस्कृतियों के विरूद्ध सुरक्षा आदि जैसी सामान्य आवश्यकताओं को भी पूरा करते है।

6. अलबर्ट रीस तथा अलबर्ट रोड्स का मत है कि यदि कोहेन का सिद्धान्त तथ्याश्रित होता तो यह प्राक्कल्पना युक्तियुक्त प्रमाणित होती कि निम्नवर्गीय युवकों में अपराध की दर उन क्षेत्रों में उच्चतर होती है जहाँ वे मध्य वर्गीय युवकों से प्रत्यक्षतः प्रतिस्पर्धा में रहते हैं तथा उन क्षेत्रों में निम्नतम होती है, जहाँ केवल निम्न वर्गीय लोग रहते है। परन्तु उन्होंने हाईस्कूल के कनिष्ठ (जूनियर) तथा वरिष्ठ (सीनियर) विद्यार्थियों के अनुभविक परीक्षण में यह पाया कि अपने विद्यालय तथा पड़ोस में निम्नवर्गीय युवक जितनी अल्प संख्या में होंगे उतनी ही उनके अपराधी बनने की सम्भावना कम होगी। इसके अतिरिक्त उनके अध्ययन परिणाम से यह भी प्रकट हुआ है कि एक समान सामाजिक प्रस्थिति वाले वर्ग में सर्वाधिक अपराधी उस क्षेत्र में मिलते हैं जहाँ वह सामाजिक वर्ग उस क्षेत्र के निवासियों में सार्वभौमिक रूप में होता है तथा सभी प्रकार के सामाजिक वर्गों में से सर्वाधिक अपराध की संख्या निम्नवर्गीय आवासी क्षेत्रों में मिलती है। इस अध्ययन की उपलब्धियों के आधार पर कोहेन के सिद्धान्त की कमजोरी स्वतः प्रकट हो जाती है।

1.4 ख क्लोवार्ड तथा ओहलिन का अपराधी गिरोहों का अपराध तथा अवसर सिद्धान्त (Cloward and ohlin's Delinquency and Opportunity theory of Delinquent Ganges)

क्लोवार्ड तथा ओहलिन का मत है कि अपराध आपराधिक उपसंस्कृति के

प्रभावों का परिणाम है। अपराधी उपसंस्कृति आस पास अथवा पास पड़ोस की संस्कृति से अपने आदर्शों एवं आदेशों के कारण भिन्न होती है। ज्ञातव्य है कि अपराधी उपसंस्कृति के ये आदर्श एवं आदेश जो अपने सदस्यों के व्यवहार को परिभाषित करते हैं, परम्परागत समाज के आदेशों एवं आदर्शों से पूर्णतया भिन्न होते हैं। जब गिरोह के सदस्य उपसंस्कृति के आदर्शों एवं आदेशों को स्वीकार कर लेते हैं तब वे अपने समूह के नियमों तथा प्रतिमानों को वैध व तर्कसंगत मानने लगते हैं। ठीक उसी समय, गिरोह के सदस्यों के लिए परम्परागत विधिपालक, समाज द्वारा समर्थित आदर्श अवैध व तर्क विरूद्ध हो जाते हैं। अपराधी उपसंस्कृति अपने गिरोह के सदस्यों से कुछ अपराधी कार्यों के सम्पादन की अपेक्षा करती है और ऐसा कृत्य सम्पादित करने पर ही वे उपसंस्कृति के वृत्त में सम्मिलित किये जाते हैं। अपराधी उपसंस्कृति की प्रमुख विशेषता यह है कि यह विधि भंजन को बुरा नहीं मानती है। अर्थात उल्लंघनों एवं अतिक्रमणों को अवैध होने पर भी मान्यता प्रदान करती है।

क्लोवार्ड तथा ओहलिन ने अपराधी उपसंस्कृतियों के तीन प्रमुख प्रकारों का उल्लेख किया है जो निम्नलिखित हैं -

1. **अपराधी प्रतिमान (The Criminal Pattern)** - यह उपसंस्कृति अपराधी मूल्यों पर आधारित होती है। इसके सदस्य प्राथमिक रूप से अवैध साधनों के प्रयोग द्वारा लाभकारी, विशेषकर भौतिक लाभकारी अपराधों को सम्पादित करने में संलग्न रहते हैं। अपराधी उपसंस्कृति गंदी बस्ती के किशोरों को संगठित करती है तथा उन्हें वयस्क अपराधिता की परम्पराओं से प्रशिक्षित करती है। अपचारी तथा अपराधी व्यवहार सफलता के स्वीकृत साधन होते हैं। गिरोह के किशोर पुराने अनुभवी अपराधियों से भूमिका प्रतिमानों को ग्रहण करते है तथा ये पुराने सफल अपराधियों से सम्बन्धित होते हैं।

2. **संघर्ष प्रतिमान (The Conflict Pattern)** - इस उपसंस्कृति में हिंसात्मक क्रियाएं अधिक पाई जाती हैं। इसके सदस्य प्रस्थिति प्राप्ति के लिए शक्ति का प्रयोग करते हैं अथवा शक्ति प्रयोग करने की धमकी देते हैं। सदस्यों की भूमिका प्रतिमान मुख्यतया योद्धा अथवा बाप्पर (Bopper) प्रकार का होता है। इस संस्कृति का तात्कालिक लक्ष्य संघर्षरत गिरोहों के जगत में अग्रता विध्वंसक हिंसा के लिए ख्याति प्राप्त करना होता है। बाप्पर अत्यन्त कठोर हृदय वाला, अत्यन्त साहसी गुण वाला व्यक्ति होता है। वह परम्परागत जगत में संतोषजनक भूमिका प्रतिमानों, विशेषकर उन प्रतिमानों, जो एक वयस्क की सफलता प्राप्त करने में सहायक होते है, को प्राप्त करने में असमर्थ व अयोग्य होता है। अतएव, वह परम्परागत समाज में सफलता प्राप्त करने के वैध तरीकों व मार्गों से परकीकृत (Alienated) हो जाता है। तथा वह बल प्रयोग द्वारा अवैध तरीकों

व मार्गों का अनुशीलन कर सफलता प्राप्त करने का भरपूर प्रयास करता है।

3. अपवर्तनवादी प्रतिमान (The Retreatist Pattern) - इस प्रकार की उपसंस्कृति के अन्तर्गत संवेदनमंदक वस्तुओं या मादक द्रव्यों के प्रयोग पर अधिक बल दिया जाता है। संवेदनमंदक वस्तुओं या मादक द्रव्यों का सेवन करने वाले किशोर परम्परागत समाज की भूमिकाओं से स्वयं ही परकीकृत हो जाते हैं। वे अपनी स्वयं की ऐन्द्रिय जगत की ओर अपवर्तनवाद के अन्तर्गत अकेले या समूहों में विविध अर्थपूर्ण ऐन्द्रिय अथवा सहवासात्मक अनुभव समाविष्ट करते हैं संवेदनमंदक या मादक द्रव्यों का सेवन करने वाले अपवर्तनवाद के स्वरूप का निर्माण करते हैं। वे परम्परागत जगत से पृथक रहते हैं। वे अपने ऐन्द्रिय सुखोपभोग की खोज में मादक द्रव्यों के लिए मुद्रा प्राप्त करने के सन्दर्भ में अपराध करते हैं। यह अपराध जीवन निर्वाहकारी अथवा आय उत्पादकारी होता है।

अपराधी उपसंस्कृति के स्वीकरण के सम्बन्ध में क्लोवार्ड तथा ओहलिन के वक्तव्यों से व्यक्ति के पूर्ण पुनर्समाजीकरण की सहभागिता पर प्रकाश पड़ता है। किन्तु क्लीवार्ड तथा ओहलिन ने उस प्रक्रिया का वर्णन नहीं किया है जिसके द्वारा एक किशोर अभिजात समूह के आदर्शों को स्वीकार करता है। तथा परम्परागत समाज के आदर्शों को अस्वीकार करता है। यह सम्भव है कि गिरोह के आदर्शों की वैधता किशोर के संगठित समाज के लक्ष्यों की सीमित पहुँच की जानकारी तथा प्राप्त अवैध साधनों से सफलता के स्थानापन्न मार्गों की खोज द्वारा सहयोगिता समर्थित हो जिसका विवेचन क्लोवार्ड तथा ओहलिन ने अपने "अपराध तथा अवसर : अपराधी गिरोहों के सिद्धान्त" नामक ग्रन्थ में किया है। यहाँ अब हम इसी सिद्धान्त की व्याख्या करेंगे।

प्राप्य अवसर (Available opportunity) - क्लोवार्ड तथा ओहलिन ने निम्न वर्गों में मित्रमंडली अथवा गिरोह अपराध तथा उन दबावों के अस्तित्व जो अपराधी उपसंस्कृतियों की सृष्टि करतें हैं, दोनों को (1) लक्ष्यों की प्राप्ति के वैध साधनों को प्राप्त करने के सीमित अवसर तथा (2) आधुनिक नगरीय जीवन में अवैध साधनों की प्राप्यता के सन्दर्भ में स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इस दो अंशीय सिद्धान्त को विकसित करने में यह देखा जा सकता है कि प्रथम अंश (वैध साधनों की सीमित पहुँच) दुर्खीम के सूत्रीकरण का तथा मर्टन के संशोधित रूप का परिणाम है। इस सिद्धान्त का द्वितीय अंश, उदाहरणस्वरूप लक्ष्यों की प्राप्ति के अवैध साधनों की प्राप्यता के अन्तर्गत गिरोहों का अस्तित्व प्रोत्साहित करने वाले कुटिल राजनीतिक अपराधी प्रतिमान, धोखेवाल वकील वैकल्पिक रूप में सम्मिलित होते हैं, जब लक्ष्यों की सफलता के वैध मार्ग बन्द हो जाते हैं।

क्लोवार्ड तथा ओहलिन का मत है कि निम्नवर्गीय नगरीय किशोर एक ऐसे

जगत में रहता है जहाँ पद्दलित सामाजिक वर्गों के तरूण व्यक्तियों के खुले अवसरों के अन्तर्गत किशोरों में सांस्कृतिक रूप में संचारित होने वाली आकांक्षा तथा ऐसी आकांक्षाओं के लक्ष्यों को प्राप्त करने के अवसरों के मध्य बहुत विभिन्नता होती है। समाज की संस्कृति में जीवन के स्वीकृत साध्यों अथवा लक्ष्यों तथा उसको प्राप्त करने के स्वीकृत तरीके या साधन अन्तर्विष्ट होते हैं। इन दोनों के बीच की विभिन्नता के परिणामस्वरूप विचलनकारी व्यवहार की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संस्कृति द्वारा अभिप्रेरित आकांक्षाओं तथा इन आकांक्षाओं की पूर्ति करने के प्राप्य वैध साधनों के मध्य असन्तुलन के परिणामस्वरूप विचलनकारी व्यवहार की सृष्टि होती है। इसलिए मध्य वर्ग की तुलना में निम्न वर्ग में विचलनकारी व्यवहारों की सम्भावना अधिक रहती है। क्योंकि निम्न वर्ग में वैध सन्तुष्टि के मार्ग बहुत अधिक होते हैं तथा मध्यवर्ग में वैध सन्तुष्टि के मार्ग बहुत कम होते हैं अथवा अन्य शब्दों में क्लोवार्ड तथा ओहलिन का कहना है कि "निम्नवर्गीय किशोरों में जो अभिलाषाएं होती हैं तथा वास्तव में उन्हें जो प्राप्त या सुलभ होता है के मध्य के विभिन्नता समंजन ही एक प्रमुख समस्या का स्रोत है। (परम्परागत) लक्ष्यों को प्राप्त करने के वैध मार्गों की सीमाओं तथा अपनी अधोमुखी आकांक्षाओं में संशोधन करने में अयोग्य होने के कारण वे गहन नैराशय का अनुभव करते हैं। इस सन्दर्भ में विरोधी विकल्पों का अन्वेषण इसका परिणाम हो सकता है।

निम्नवर्गीय किशोर के समंजन तथा नैराश्य की समस्याएँ आकांक्षाओं की विभिन्नता से उत्पन्न होती है तथा उनकी पूर्ति के अवसरों को क्लोवार्ड तथा ओहलिन ने असंतुष्ट स्थिति (Position Discontent) की संज्ञा से पदनामित किया है।

जब कोई सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टि से निम्नवर्गीय किशोर की आकांक्षाओं को पर्यवेक्षित करे तो उन तरूण व्यक्तियों, जो मध्यवर्गीय जीवन शैली से तादात्म्य स्थापित करना चाहते है। तथा वो जो निम्नवर्गीय जीवन शैली से तादात्म्य स्थापित करना चाहते हैं, के मध्य भेद दिखाई पड़ेगा। व्हाइट ने गंदी बस्ती के अपने अध्ययन व परिणामों के आधार पर कालेज के बालक (College boy) तथा कोने के बालक (Corner boy) के मध्य भेद दर्शाया है। कोहेन ने कॉलेज के बालक तथा कोने के बालक के द्विभाजन (Dichotomy) को स्वीकार किया है, किन्तु उसने एक नया तृतीय प्रकार जिसे वह निम्नवर्गीय बालक (Lower Class boy) अर्थात अपराधी बालक के नाम से सम्बोधित किया है, का उल्लेख किया हैं। कोहेन के अनुसार, जैसा कि हमने विगत पृष्ठों में उल्लेख किया है, अपराधी बालक मध्यवर्गीय संस्कृति का परित्याग कर देता है, जबकि कॉलेज का बालक इसको स्वीकार करता है तथा (स्थिर) कोने का बालक अपने स्वयं की संस्कृति से संतुष्ट रहता है तथा उसको सर्वोत्तम रूप में प्रयोग में लाने का प्रयास करता है।

क्लोवार्ड तथा ओहलिन का मत है कि यह स्वीकार करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है

कि अनेक निम्नवर्गीय किशोर मध्यवर्गीय सफलता लक्ष्यों की ओर उन्मेषित हुए बिना ही असन्तुष्ट स्थिति (Position discontent) को विकसित कर लेते हैं। वे निम्नवर्गीय सफलता लक्ष्यों की शैली में असन्तुष्ट स्थिति विकसित कर सकते हैं।

अनेक निम्नवर्गीय व्यक्ति असफलता प्राप्त करने के तरीकों तथा साधनों को प्राप्त करने के अपने प्रयास में असफल रहते हैं। अधिकांश व्यक्ति गरीबी के परिणामस्वरूप वैध तरीकों या साधनों को प्राप्त करने में सदैव असफल रहते हैं। अपराधी व्यवहार की यह व्याख्या है कि आकांक्षाओं तथा पूर्ति के अवसरों में भिन्नता होने के परिणामस्वरूप अपराध की उत्पत्ति होती है, अत्यधिक संतोषजनक व्याख्या है न कि अपर्याप्त समाजीकरण अथवा निम्नवर्गीय मूल्यों की समंजनकारी स्थिति इसके लिए उत्तरदायी है, जैसा कि मिलर का कहना है । नैराश्य, भिन्नता, असंतुष्ट स्थिति से सम्बन्धित प्राक्कल्पनाएँ, समाजीकरण से सम्बन्धित प्राक्कल्पनाओं की तुलना में इसलिए श्रेष्ठतर है क्योंकि ये अपराध को विचलनकारिता की ओर दबाव का परिणाम मानती है। अपराधी उपसंस्कृतियों विशेषकर अपराधी तथा संघर्ष उन्मेषित उपसंस्कृतियाँ सफलता के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अवैध मार्गों को प्रदान करती है। ये मार्ग समंजनकारी अथवा नैराश्य उभयसंकट अथवा असंतुष्ट स्थिति के समाधान के ढंग या विधि का निर्माण करते हैं। अपवर्तनवादी उपसंस्कृति प्रतियोगितावादी जगत से भाग निकलने या पलायनवादी संस्कृति का द्योतक या परिचायक है जहाँ सफलता अप्राप्य है।

क्लोवार्ड तथा ओहलिन ने पुनः यह स्वीकार किया है कि वैध लक्ष्यों के अवरोधी अथवा सीमित पहुँच की समस्या के समाधान के दो हल (Solutions) हैं - 'सामूहिक तथा 'एकान्त'। यदि व्यक्ति अपनी असफलताओं का कारण सामाजिक संरचना, अवसरों के अभाव को मानते हैं तब वे सामूहिक हल को स्वीकार करना पसन्द कर सकते हैं, जैसे एक अपराधी उपसंस्कृति के रूप में। यदि वे अपनी असफलता को अपनी वैयक्तिक असफलता के रूप में स्वीकार करते हैं, तब वे एकान्त हल को विकसित करना पसन्द कर सकते हैं। चरम केस के सन्दर्भ में वैयक्तिक असफलता का सामना करने का प्रयास मानसिक बीमारी में परिणित हो सकता है।

क्लोवार्ड तथा ओहलिन के सिद्धान्त का मुख्य सार यह है कि एक ओर निम्नवर्गीय व्यक्तियों को वैध साधनों के आधार पर लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए शायद किंचित अवसर ही प्राप्त होते हैं, इसके विपरीत वे स्वयं ही अपने साध्यों की प्राप्ति अवैध साधनों तथा सफलता के अवैध मार्गों के आधार पर करते हैं। अवैध साधनों के आधार पर साध्यों की प्राप्ति सफलता के अवैध मार्गों के आधिकारिक आदर्शों एवं वैधता के आरोपण से वैधता का प्रत्याहार (निकासी) है। इस अर्थ में निम्नवर्गीय अपराधी उस अपराध से पृथक रहते हैं जिसका अनुभव अधिकांश व्यक्तियों को उस

समय होता है जब वे परम्परागत आदर्शों का उल्लंघन करते हैं।

समीक्षा

क्लोवार्ड तथा ओहलिन द्वारा प्रतिपादित उपसंस्कृति का सिद्धान्त भी अपराधी व्यवहार की सम्यक व्याख्या करने में असमर्थ प्रमाणित हुआ है। इस सिद्धान्त में भी अपचार तथा अपराध की व्याख्याएँ समाजशास्त्रीय दृष्टि से त्रुटिपूर्ण है। क्लोवार्ड तथा ओहलिन के सिद्धान्त की आलोचनाओं को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है -

पहली जब अपने सिद्धान्त की आलोचना वे स्वयं करते हैं। दूसरी जब उनके सिद्धान्त की आलोचना दूसरे करते हैं।

क्लोवार्ड तथा ओहलिन अपने सिद्धान्त की आलोचना करते हुए उस समय देखे जाते हैं जब वे कहते है कि "हम केवल उन्हीं आपराधिक क्रियाओं से सम्बन्धित है जो अपराधी उपसंस्कृति द्वारा विशिष्ट रूप से समर्थित सामाजिक भूमिकाओं के सम्पादन का परिणाम होती है .... हम अपराध की उन क्रियाओं को अपने प्रयोजन से अलग करेंगे जो एकाकी (Isolated) व्यक्तियों द्वारा अथवा जो ऐसे समूह के सदस्यों द्वारा सम्पादित की जाती है। जिसमें आपराधिक कृत्य निर्धारित नहीं होते हैं। क्लोवार्ड तथा ओहलिन स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि उनका सिद्धान्त सभी प्रकार के अपराधों को स्पष्ट नहीं करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि क्लोवार्ड तथा ओहलिन की अपराधी व्यवहार की यह व्याख्या अत्यन्त परिसीमित है। इस सिद्धान्त ने केवल उपसंस्कृति को ही अपराधी कृत्यों के लिए उत्तरदायी कारक माना है। जबकि उपसंस्कृति के खेमे के बाहर की संस्कृति भी व्यवहारों को प्रभावित करती है।

अन्य विधानों के द्वारा क्लोवार्ड तथा ओहलिन के सिद्धान्त की की गई आलोचनाएं निम्नलिखित हैं -

1. यदि अपराधी उपसंस्कृति में रहने वाले निम्नवर्गीय बालक अपराधी बन जाते हैं तो उस उपसंस्कृति में रहने वाले प्रत्येक निम्नवर्गीय बालक को अपराधी बन जाना चाहिए क्योंकि सभी बालक एक समान उपसंस्कृति में रहते हैं। निम्न वर्ग के सभी बालक अपराधी क्यों नहीं बन जाते हैं? क्लोवार्ड तथा ओहलिन के सिद्धान्त से यह स्पष्ट हो पाता है।
2. निम्नवर्गीय बालक जिन गन्दे क्षेत्रों में रहते हैं, क्लोवार्ड तथा ओहलिन के सिद्धान्त के अनुसार वहां अपराध की दर अत्यन्त उच्चतर होनी चाहिए। किन्तु आधिकारिक तथ्यों के आधार पर ऐसा प्रमाणित नहीं हो पाता है।
3. क्लोवार्ड तथा ओहलिन का मत है कि संस्कृति अभिप्रेरित आकांक्षाओं तथा इन आकांक्षाओं की पूर्ति करने के वैध साधनों की भिन्नता ही अपराध का प्रमुख

कारण है। इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि आकांक्षाएँ यद्यपि सभी व्यक्तियों में पाई जाती है। और सभी व्यक्ति अपनी सभी आकांक्षाओं की पूर्ति कर भी नहीं सकते, तथापि वे सभी इस कारण अवैध साधनों का प्रयोग नहीं करते हैं। पुनः अवैध साधन प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान रूप से उपलब्ध भी नहीं हो पाते हैं। अतः यह कहना कि वैध साधनों की उपलब्धि की भिन्नता के कारण ही समाज में आपराधिकता की मात्र में भी भिन्नताएं दृष्टिगोचर होती हैं तर्काश्रित नहीं है।

4. यदि यह भी मान लिया जाय कि निम्नवर्गीय बालक, अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के अवसरों की प्राप्यता के अभाव में अवैध साधनों के प्रयोग करने लगते हैं तब भी यह परिकल्पना उन निम्नवर्गीय बालकों के साथ न्याय नहीं कर पाती जो उपसंस्कृति या गिरोह की विचलन की या आपराधिक क्रियाओं में सहभागी नहीं होते हैं।

5. विभेदक अवसर यह भी स्पष्ट नहीं कर पाता है कि क्यों एक समान अवसर संरचना में कुछ व्यक्ति अपराधी बन जाते हैं तथा कुछ व्यक्ति अनपराधी बने रहते है। वस्तुतः यह सिद्धान्त इस तथ्य को स्पष्ट नहीं कर पाता है कि अपराधी व्यवहार की उत्पत्ति कैसे होती है।

6. क्लोवार्ड तथा ओहलिन ने अपने सिद्धान्त में वैध एवं अवैध दोनों विभेदक अवसर व्यवस्थाओं में अन्तर्निहित अन्तर को सम्यक रूप से स्पष्ट नहीं किया है। किसी समाज में वैध एवं अवैध साधन न तो विभेदक अवसर व्यवस्था पर निर्भर होते हैं और न ही ये असंतुष्ट स्थिति (अवरूद्ध आकांक्षाओं) पर आश्रित होते हैं, प्रत्युत ये उस समाज के आदर्शों तथा मूल्यों, नैतिक एवं अनैतिक, ग्राह्य एवं अग्राह्य समंजनकारी, स्वीकृति एवं अस्वीकृति, एकीकरण एवं परकीकरण की प्रकृति पर निर्भर होते हैं। एक साधन एक समाज में वैध हो सकता है तो दूसरे समाज में अवैध हो सकता है। अतएव आलोचकों का कहना है कि क्लोवार्ड तथा ओहलिन की वैध एवं अवैध अवसर विभाजन की कोटियां अच्छी तरह परिभाषित नहीं हैं।

7. अपराध का प्रमुख कारण आकांक्षा स्तर तथा अवसर व्यवस्था में जीवन अवसरों के बीच का असंतुलन ही नहीं है प्रत्युत एक व्यक्ति के लिए प्राप्य अवसर व्यवस्था में अपने समायोजन के लिए अन्य परिवर्त्य जैसे शिक्षा, आय, लिंग, पारिवारिक संरचना, पारिवारिक दूरी एवं समृद्धता, मित्रमण्डली, पास-पड़ोस तथा अन्य सामाजिक गुण मुख्य है।

8. क्लोवार्ड तथा ओहलिन का यह मत भी विस्मयकारी है कि सामाजिक व्यवस्था

की असफलता का आरोपण सामूहिक हल (इसलिए अपराध उपसंस्कृति) का कारण बनता है, जबकि वैयक्तिक दोषों की असफलता का आरोपण एकान्त हल (विवेचन, मदात्य, संवेदनमंदक, व्यसन,मानसिक बीमारी) का कारण बनता है। इस तथ्य के साथ कोई झगड़ा नहीं है कि कुछ विचलनकारी व्यवहार तथा मानसिक बीमारियाँ वैयक्तिक हल का प्रतिनिधित्व करती है। तथा मदात्य एवं संवेदनमंदक व्यसन पलायनवादित के मार्ग हैं। किन्तु अपराधी व्यवहार के कुछ प्रतिबिम्ब में सामूहिक तथा एकान्त हल किस प्रकार उपयुक्त हो जाते हैं को सूचित करने की असफलता के साथ झगड़ा अवश्य है। निश्चय ही कुछ अपराधी व्यवहार एकान्तिक हल है । किन्तु यह सन्देहास्पद है कि इस प्रकार का अपराध आवश्यक रूप से वैयक्तिक असफलता के प्रत्यक्षीकरण पर आधारित है। इसके अनेक अन्य कारण हो सकते हैं। क्लोवार्ड तथा ओहलिन ने सहचारिता अपराध का वर्णन नहीं किया है जो एक उपसंस्कृति से प्रत्यक्षतः सम्बन्धित नहीं है। ऐसे व्यवहार समाज को अवसर प्रदान करने की असफलता के सूचक नहीं हैं । सामूहिक हल प्राक्कल्पना अपराध उपसंस्कृति की व्याख्या के रूप में सामाजिक अन्तर्क्रिया में अनुकरण तथा सुझाव के सिद्धान्तों की उपेक्षा करती है।

परन्तु यह सभी मानते हैं कि क्लोवार्ड तथा ओहलिन के अवसर सिद्धान्त से उस अपराधी उपसंस्कृति का बोध होता है जो अपराधी गिरोहों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में एक उत्तरदायी कारण है। अपराधी उपसंस्कृति सिद्धान्त की कसौटी पर अवसर सिद्धान्त का निर्माण करना क्लोवार्ड एवं ओहलिन का एक सराहनीय प्रयास है।

1.5 वाल्टर बी मिलर : निम्नवर्गीय संस्कृति तथा अपराध का सिद्धान्त (Theory of Walter B. Miller's Lower Class Culture and Delinquency)

मिलर का मत है निम्न वर्ग की अपनी स्वयं की एक संस्कृति होती है। जिसकी कहानी बड़ी पुरानी है। इस परम्परा का प्रभाव तथा इसका केन्द्रीय विषय गली के कोने में पाये जाने वाले समूहों तथा गिरोहों (Street Corner Groups and Gangs) से होता है, जिनकी पृथक रूप से कोई उपसंस्कृति नहीं होती है। प्रत्युत निम्नवर्गीय संस्कृति के अंग होते हैं। मिलर के अनुसार गिरोह'' अपराध के सन्दर्भ में तथाकथित अपराधी उपसंस्कृति जो मध्यवर्गीय संस्कृति से संघर्ष द्वारा उत्पन्न होती है तथा जो मध्य वर्गीय आदर्शों का जानबूझकर उल्लंघन करने की ओर उन्मेषित होती है, की अपेक्षा निम्नवर्गीय समुदाय की स्वयं की दीर्घकालीन एवं विशिष्ट प्रतिमानित परम्परात्मक सांस्कृतिक व्यवस्था व्यवहार को अत्यन्त प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है।

मिलर का कहना है कि निम्नवर्गीय समुदाय में अत्यन्त प्रचलित तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण सामाजिक संरचना एक लिंगीय समकक्ष व्यक्तियों का समूह (One Sex Peer Group) है। यह वास्तव में बालकों तथा बालिकाओं दोनों की सम्बन्ध व्यवस्था के रूप में दो उदगम परिवार इकाई की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं। यह आवश्यक कार्यों का एक विस्तृत विस्तार प्रदान करता है जो कि परिवार द्वारा प्रदानित नहीं होता है। मिलर यह दावा करता है कि अपराधी गिरोह निम्न वर्ग में एकलिंगीय समकक्ष के केवल एक प्रकार अथवा उप-प्रकार को संस्थापित करता है।

मिलर के अनुसार अपराधी गिरोहों की प्राथमिक क्रियाओं के अन्तर्गत आक्रमण करना अथवा चोरी करना प्रमुख है। उनका मत है कि गली के कोने वाले गिरोहों के अपराधी सदस्य अपने कार्यों की प्रकृति अर्थात कानून उल्लंघन करने वाली प्रकृति से पूर्णतया भिन्न होते हैं। वे मनोरोगी अथवा मानसिक रूप से विकृत व्यक्ति नहीं होते हैं। इसके अतिरिक्त गली कोने वाले गिरोह केवल न कठोर मानदण्डों का समर्थन करते हैं बल्कि उनके प्रयोग पर विशेष रूप से बल देते हैं। अतएव इस गिरोह में समुदाय के केवल उन्हीं व्यक्तियों को चयनित किया जाता है जो शारीरिक एवं मानसिक रूप से योग्य होते हैं तथा जो न केवल गिरोह के मूल्यों एवं आदर्शों में घोर विश्वास करते हों प्रत्युत उनमें गिरोह के नियमों के पालन करने की क्षमता और अभिप्रेरणा की उच्चतर मात्रा अन्तर्विष्ट है। वे गिरोह के हितार्थ अपनी स्वयं की इच्छाओं को दमित करने के लिए तैयार हो तथा साथ ही गिरोह तन्त्र में अधीनस्थ भूमिका के लिए तैयार हो। इसके अतिरिक्त चयन प्रक्रिया में गिरोह के अन्य अन्तः सदस्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध एवं आग्रही अन्तर्क्रिया करने की क्षमता को भी पर्यवेक्षित किया जाता है। इस प्रकार गिरोह की सदस्यता शारीरिक योग्यता व मानसिक दक्षता के आधार पर प्राप्त की जाती है। ये ही वे विशेषताएँ हैं जिसके आधार पर गिरोह के सदस्य गिरोहतंत्रात्मक संस्तरण में अपनी प्रस्थिति प्राप्त करने एवं उसको बनाए रखने में सफल होते हैं।

मिलर का मत है कि गली के कोने के किशोर सदस्य केवल उन्हीं अपराधों को संपादित करते है जो प्राथमिक रूप से गिरोह के मूल्यात्मक परिप्रेक्ष्य में लक्ष्यों (साक्ष्यों की प्राप्ति के सन्दर्भ में सहायक होते है।) तो ऐसे अपराधों से बचने का प्रयास करते हैं जो उनके गिरोह के मूल्यात्मक परिप्रेक्ष्य में लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक सिद्ध नहीं होते हैं।

2.2 अपराध का नामकरण या लेबलिंग सिद्धान्त (Lebelling Theory of Crime)

नामकरण या लेबलिंग सिद्धान्त अपराध के अन्य सभी सिद्धान्तों से भिन्न हैं। अन्य सभी सिद्धान्तों अपराध की कारणात्मक व्याख्या की गई है, जबकि नामकरण

सिद्धान्त में अपराध की कारणिक व्याख्या न यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि समाज कुछ व्यक्तियों पर आपराधिक लेबल या नामपत्र क्यों लगाता है अथवा कुछ व्यक्तियों का अपराधी नाम क्यों रखता है। इस प्रकार अपराध के सिद्धान्त का वर्णन संदर्भ अपराध के अन्य परम्परात्मक कारण सम्बन्धों से भिन्न हैं। यही इस सिद्धान्त का एक नूतन योगदान है।

बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक के आरम्भिक काल में हावर्ड बेकर ने सन 1963 में अपराध के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के दो महत्वपूर्ण पक्ष हैं -

1. एक पक्ष में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि विचलनकारी व्यक्ति या अपराधी किसी समाज विशेष के कुछ लोगों द्वारा नामांकित या लेबल्ड व्यक्ति होते हैं तथा विचलनकारी व आपराधिक व्यवहार वह क्रिया है जिसको लोग इस प्रकार लेबल या नामित करते है।

2. द्वितीय पक्ष में यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि "अपराध रूप में लेबल्ड या नामित किये जाने पर नामित व्यक्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है? इस सन्दर्भ में यह बताने का प्रयास किया गया है कि अपराधी के रूप में लेबल्ड या नामित किये जाने पर नामित व्यक्ति के व्यवहार पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

बेकर का आधारभूत विश्वास है कि विचलनकारी क्रिया या व्यवहार की व्याख्या के लिए उस श्रोतागण या दर्शकगण की प्रतिक्रिया (Audience Reaction) अथवा समाज की प्रतिक्रिया (Social reaction) ज्ञात करना अपरिहार्य (Inevitable) है। इस प्रतिक्रिया के बोधाभाव में विचलनकारी अथवा आपराधिक व व्यवहार का सम्यक अवबोध प्राप्त नहीं कियाजा सकता क्योंकि इस प्रतिक्रिया के परिप्रेष्य में ही किसी को विचलनकारी अथवा आपराधिक माना जाता है। बेकर के विचलनकारी अथवा आपराधिक व्यवहार के परिणामों को निम्नलिखित सैद्धान्तिक सूत्रों में रखा जा सकता है।

1. विचलनकारी अथवा आपराधिक क्रिया या व्यवहार के अध्ययन में वैयक्तिक व्यक्ति (Individual person) पर ध्यान आकर्षित नहीं करना चाहिए। प्रत्युत सामाजिक श्रोतागण या दर्शकगण (Social audience) पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। क्योंकि सामाजिक श्रोतागण ही अध्ययन के वास्तविक विषय समीचीन प्रतीत होते हैं।

2. विचलन उस क्रिया का गुण नहीं है जो व्यक्ति द्वारा की जाती है, प्रत्युत यह दूसरों द्वारा एक अपराधी पर लागू किये गये नियमों तथा अनुशस्तियों का परिणाम है।

3. विचलनकारी व्यक्ति वह व्यक्ति है जिस पर यह लेबल या नामपत्र सफलतापूर्वक लगया दिया जाता है।

4. विचलनकारी व्यवहार वह है जिसको लोग इस प्रकार लेबल करते हैं।

5. विचलनकारी व्यवहार विचलनकारी व्यक्तियों में ऐसी समाविष्ट वैशिष्टय अभिरूचि नहीं है जो उन्हें गैर-विचलनकारी व्यक्तियों से पृथक या भिन्न दिखलाती है प्रत्युत वह स्वत्व या गुण है जो कुछ व्यक्तियों द्वारा दूसरों को प्रदान किया जाता है।

6. जब किसी व्यक्ति में असामान्य विशिष्ठय दृष्टिगोचर हो तो ऐसे लक्षणों को व्याधिकीय विशेषताओं के रूप में नहीं समझना चाहिए।

पूर्वोक्त सैद्धान्तिक सूत्र बेकर के नामकरण या लेबलिंग सिद्धान्त के नियमों की स्थापना करते है। बेकर की मान्यता है कि किसी कर्ता की क्रिया या व्यवहार का सम्यर्क अर्थ वे दर्शकगण ही लगा सकते हैं जो इस क्रिया का महत्व जानते हैं। इस सन्दर्भ में उनका मत है कि जिस क्रिया या व्यवहार को एक विशिष्ट संस्कृति या समाज में विचलनकारी या आपराधिक क्रिया या व्यवहार माना जाता है, आवश्यक नहीं है कि उसे अन्य संस्कृति या सामाजिक परिवेश में भी विचलनकारी या आपराधिक ही माना जाये। इतना ही नहीं वरन एक ही क्रिया या व्यवहार को एक ही संस्कृति या समाज में सामान्यतः आपराधिक क्रिया या व्यवहार के रूप में समझा जा सकता है जबकि कुछ विशिष्ट अवसरों पर उसी क्रिया को गैर-विचलनकारी या अनापराधिक क्रिया या व्यवहार माना जा सकता है। उदाहरणस्वरूप हमारे देश में भिक्षावृत्ति को एक आपराधिक कृत्य माना गया है किन्तु कुछ विशेष धार्मिक पर्वों व त्यौहारों के अवसर पर भिक्षुकों को दान देना पुण्य कार्य माना जाता है इसी तरह जुआ खेलना एक आपराधिक कृत्य माना गया है, किन्तु कुछ विशेष अवसरों जैसे दीपावली पर्व पर इस कृत्य को अनापराधिक कृत्य माना जाता है। इस प्रकार नामकरण या लेबलिंग सिद्धान्त के अनुसार भिन्न भिन्न सामाजिक - सांस्कृतिक परिवेशों में विचलनकारी एवं आपराधिक क्रिया के सन्दर्भ में वैधानिक और सामाजिक अभिवृत्तियों की विभिन्नताओं का अवबोध प्राप्त किया जा सकता है।

बेकर की यह भी मान्यता है कि किसी क्रिया हो विचलनकारी या आपराधिक क्रिया के रूप में स्वीकार करना अथवा अस्वीकार करना निम्नलिखित तीन तत्वों पर आधारित है -

1. क्रिया करने का समय (The time when the act is committed)

2. कर्ता तथा आहत अर्थात कार्य करने वाला व्यक्ति कौन है तथा आहत होने वाला व्यक्ति कौन है। (Who commits the act and who is the victim)

3. कार्य परिणाम (The consequences of the act)

बेकर की एक अन्य मान्यता यह भी है कि किसी क्रिया का विचलनकारी या आपराधिक स्वीकरण या अस्वीकरण अंशतः उस कार्य की प्रकृति पर (अर्थात क्या इस कार्य के नियमों का उल्लंघन होता है या नहीं) तथा अंशतः उस कार्य के बारे में समाज के अन्य लोगों की धारणा पर आधारित होता है। कुछ अध्येताओं ने लेबलिंग सिद्धान्त का आनुभविक परीक्षण करने का प्रयास किया है। ऐसे प्रयासों में स्कवार्ज तथा स्कोलनिक द्वारा किया गया अध्ययन यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह अध्ययन अपराधी रिकार्ड वाले सम्भावित कर्मचारियों (Potential employee) के प्रति नियोक्ताओं की अभिवृत्तियों के परीक्षण पर आधारित है। प्रतिदर्श के रूप में इस अध्ययन में 100 नियोक्ताओं (Employers) को सम्मिलित किया गया है। सर्वप्रथम प्रतिदर्शित नियोक्ताओं को चार वर्गों में वर्गीकृत किया गया। तत्पश्चात प्रत्येक वर्ग के नियोक्ताओं को सम्भावित कर्मचारी के बारे में भिन्न भिन्न प्रकार के इश्तहार दिखाये गये हैं। पहले इश्तहार में यह बताया गया कि व्यक्ति का कोई आपराधिक रिकार्ड नहीं है। दूसरे में यह बताया गया कि उसे भत्सर्ना के बाद छोड़ दिया गया। तीसरे में यह बताया गया है कि उसे बिना भत्सर्ना के ही छोड़ दिया गया है तथा चौथे में यह बताया गया कि वह न्यायालय द्वारा दण्डित है। कुल मिलाकर अध्ययन का निष्कर्ष यह था कि नियोक्ता अपराधी रिकार्ड वाले व्यक्ति को अपने यहाँ नियुक्त करने के पक्षधर नहीं थे। वैसे उत्तरों में घटाव पहले इश्तहार में कम था किन्तु दूसरे, तीसरे एवं चौथे में उसकी आवृत्ति बढ़ गई।

पुनः इस दिशा में स्कवार्ज तथा स्कोलनिक ने अस दूसरा अध्ययन 50 ऐसे प्रतिदर्शित डाक्टरों पर किया, जिन पर दुराचार के सन्दर्भ में अभियोग चलाया गया था। इन प्रदर्शित डाक्टरों से दत्त सामग्री का संकलन साक्षात्कार अनुसूची की सहायता से या तो व्यक्तिगत रूप से सम्पर्क स्थापित कर या टेलीफोन द्वारा सम्पर्क स्थापित कर किया गया था। इस अध्ययन में परिणामों से यह स्पष्ट हुआ कि डाक्टरों के दुराचारों के परिणामस्वरूप उनकी व्यावसायिक प्रस्थिति निम्नतर नहीं हुई।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि स्कवार्ज तथा स्कोलनिक द्वारा किये गये दोनों आनुभविक अध्ययनों परिणाम एक समान न होकर भिन्न भिन्न पाये गये। इस सन्दर्भ में इन दोनों लेखकों का मत है कि डाक्टरों के पास संरक्षात्मक संस्थागत पर्यावरण पर्याप्त नहीं था। यह कहा जा सकता है कि लेबलिंग या नामकरण का सम्भावित कर्मचारियों की प्रस्थिति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा जबकि डॉक्टर की प्रस्थिति पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा। बेकर का मत है कि विचलन कोई ऐसा गुण नहीं है जो स्वयं व्यवहार में अन्तर्विष्ट रहता है प्रत्युत यह उस अन्तर्क्रिया में समाविष्ट रहता है। जो उस कार्य करने वाले व्यक्ति तथा उस कार्य के प्रति प्रतिक्रिया करने वाले व्यक्तियों के मध्य अन्तर्निहित रहता है। उनके ही शब्दों में "Deviance is not a quality that lies in behaviour itself but in the interaction between the person who commits an act and

those who respond to it."

बेकर की एक अन्य मान्यता यह भी है कि कुछ विशेष प्रकार के समूहों को अन्य समूहों की अपेक्षा विचलनकारी लेबल या नामांकित किये जाने की सम्भावनाएं अधिक रहती हैं क्योंकि -

1. इन समूहों के पास न तो राजनीतिक सत्ता (Political authority) होती है और न ही वे अधिकार पर अपने समूहों पर कानून लागू न करने के लिए किसी प्रकार का दबाव ही डाल सकते हैं।
2. इन समूहों को शक्तिशाली व्यक्ति या समूह अपने अस्तित्व के लिए सदैव खतरनाक समझते हैं।
3. इन समूहों की सामाजिक प्रस्थिति समाज में निम्नस्थ होती है, विशेषकर इन समूहों की आर्थिक प्रस्थिति अत्यन्त दयनीय होती है।

जहाँ तक अपराधी लेबल लगाने के पश्चात नामित व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभाव का प्रश्न है, इनके अनुसार इससे नामित व्यक्ति की न केवल प्रस्थिति ही प्रभावित होती है प्रत्युत उसकी भूमिका व व्यवहार भी प्रभावित होती है। दुराचारी या विचलनकारी व्यवहार करने वाले व्यक्ति पद नामित किये जाने पर और अधिक दुराचारी या विचलनकारी व्यवहार करने लगते हैं। इस श्रेणी में आने वाले व्यक्तियों में आपराधिक जगत का बनने की उत्कट अभिलाषा जागृत होती है तथा अन्ततोगत्वा वे आपराधिक जगत का सक्रिय सदस्य बन जाते हैं। इस प्रकार अपराध पद से नामित किये जाने पर नामित व्यक्ति को ऐसे आपराधिक जगत में जाने के लिए बाध्य कर दिया जाता है जो उसे सामान्य जगत में वापस आने के लिए कठिन बनाता है। इसके विपरीत किसी दुराचारी अथवा विचलनकारी व्यक्ति को पदनामित न किया जाय तो वह व्यक्ति न तो अपराधिता की ओर उन्मेषित होगा और न आपराधिक व्यवहार प्रतिमान को स्वीकार ही करेंगा।

समीक्षा

अन्य सिद्धान्तों की भांति इस सिद्धान्त के विरुद्ध भी बहुत से तर्क प्रस्तुत किये गये हैं जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं -

1. इस सिद्धान्त में आपराधिक व्यवहार की उत्पत्तिमूलक व्याख्या नहीं की गई है। यह सिद्धान्त इस प्रश्न का उत्तर नहीं देता कि एक व्यक्ति अपराधिता की ओर उन्मेषित क्यों होता है अथवा वह अपराध क्यों करता है।
2. नामकरण या लेबलिंग प्रतिक्रिया का व्यक्ति पर सदैव नकारात्मक प्रभाव ही नहीं पड़ता प्रत्युत सकारात्मक प्रभाव भी पड़ता है। यह कोई आवश्यक नहीं है कि

पदनामित अपराधी व्यक्ति सदैव आपराधिक व्यवहार ही करे। कभी कभी ऐसे व्यक्ति विलक्षण प्रकार का आचरण करते पाये जाते हैं। कुछ पदनामित दुराचारी व अपराधी व्यक्ति अपने उत्तरवर्ती जीवनकाल में अपराध का परित्याग कर संत या महात्मा हो चुके हैं। ऐसे अनुपम उदाहरण हमारे इतिहास में उपलब्ध है। इस प्रकार नामकरण या लेबलिंग के प्रभाव से कोई व्यक्ति सदैव दुराचारी या अपराधी नहीं होता हैं।

3. नामकरण या लेबलिंग का सिद्धान्त की स्थापना के अनुसार सत्तावादी वर्ग कमजोर वर्ग के सदस्यों पर विचलनकारी या आपराधिक लेबल लगाता है, किन्तु यह प्रत्येक सत्तावादी वर्ग के संदर्भ में सही नहीं है। जनतांत्रिक परिवेश में सत्तावादी वर्ग कमजोर वर्ग के सदस्यों के उन्नयन एवं विकास पर जोर देता है न कि उन पर दुराचार या अपराध का आरोप लगाता है। बेकर ने लेबलिंग करने की प्रक्रिया को कमजोर वर्ग से जोड़कर समझने में भूल की है। यदि सत्तावादी वर्ग आपराधिक लेबलिंग न भी करे तब भी आपराधिक लेबलिंग करने की प्रक्रिया का अन्त नहीं होगा। ऐसा लेबलिंग करने वाले फिर भी समाज में बने रहते हैं।

4. किसी व्यक्ति को आपराधिक लेबल किये जाने का तात्पर्य यह नहीं है कि वह वस्तुतः अपराधी ही है। अपराधी एवं अनपराधी व्यक्तियों के व्यवहार में भिन्नता का आधार नामकरण या लेबलिंग नहीं हो सकता है। लेबल्ड व्यक्ति अच्छे नागरिक हो सकते हैं तथा गैर लेबल्ड व्यक्ति अपराधी हो सकते हैं।

5. इस सिद्धान्त का परिप्रेक्ष्य में अनुभाविक अध्ययन बहुत ही कम किये गये हैं। अतः इस सिद्धान्त की उपलब्धियों को पूर्णतया वैध एवं विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। अतः यह स्थापित करना असत्य है कि अधिकांश अपराधी आपराधिक लेबल्ड से संयुक्त होते हैं।

5.5 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ

1. दुर्खीम ने एनोमी को अपराध का प्रमुख कारण माना है? सत्य/असत्य
2. अल्बर्ट कोहेन अपराधी उपसंस्कृति सिद्धान्त के प्रवर्तक हैं? सत्य/असत्य

लघु उत्तरीय

1. कोहेन के अपराधी उपसंस्कृति सिद्धान्त की व्याख्या करें?
2. निम्नवर्गीय संस्कृति तथा अपराध पर टिप्पणी लिखें ?

दीर्घ उत्तरीय

1. दुर्खीम तथा मर्टन के अपराध के सम्बन्ध में विचारों की व्याख्या करें?
2. अपराध के सन्दर्भ में सांस्कृतिक सिद्धान्त के विचारों की व्याख्या करें।

5.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. W.A. Bonger (1916), Criminology and Economic Conditions, Little Brown, Boston.
2. William Llyod Warner and Paul S. Lunt (1941). The Social life of a Modern Community. Yale University Press, New Haven.
3. Preven Wolf (1968). Quoted in Principles of Criminology, E.H. Sutherland and D.R. Cressey. The Times of India Press, Bombay.
4. Cyril Burt (1938), The young Delinquent, University of London Press, London.
5. W.F. Ogburn, "Factors in the Variation of crime Among cities," Journal of the American Statistical Association, 1935. March , Vol. 30 pp. 12-34 see also James E. Mokeown "Poverty, Race and Crime" Journal of Criminal law and Criminology, 1948, Nov.-Dec. Vol. 39.
6. Clifford R. Shaw and Henry D. Mckay (1942), Juvenile Delinquency and Urban Areas, University of Chicago Press, Chicago.
7. Edwin H. Sutherland and Donald R. Cressey (1968), Principles of Criminology, the times of India press, Bombay.
8. Talcott Parsons (1979), The Social System, Amerind, New Delhi.
9. Robert G. Caldwell (1956), Criminology, Ronald Press, New York.

10. Jones, Stephen (2009), Criminology, Oxford university Press, NewYork.

11. Singh, Shyamdhar (2008), Theories of Criminology, Sapna Ashok Prakashan, Varanasi.

12. Raranjape, N. V (1999), Criminology and Penology, Central Law Publications, Allahabad.

खण्ड

3

अपराध एवं उसके प्रकार

इकाई-1 5
संगठित अपराध

इकाई-2 20
साइबर अपराध

इकाई-3 39
भ्रष्टाचार तथा श्वेतवसन अपराध

इकाई-4 65
राजनीतिक अपराधीकरण तथा नये अपराधी व्यक्तित्व

इकाई-5 80
महिलाओं के विरूद्ध अपराध

परामर्श-समिति

: कुलपति - प्रो0 ए0 के0 बख्शी

: निदेशक - डॉ0 एम0एन0सिंह

: कुलसचिव - डॉ0 ए0के0 सिंह

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

1. डॉ0 एम0 एन0 सिंह	निदेशक सामाजिक विज्ञान विद्याशाखा, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विशवविद्यालय, फाफामऊ, इलाहाबाद
2. डा0 इति तिवारी -	एसोसिऐट प्रोफेसर, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विशवविद्यालय, फाफामऊ, इलाहाबाद
3. श्री रमेश चन्द्र यादव	(परामर्शदाता) समाजशास्त्र, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विशवविद्यालय, फाफामऊ, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 मणीन्द्र कुमार तिवारी	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, डी0ए0वी0कालेज, कानपुर
डा0 इति तिवारी	एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, उ0प्र0रा0टण्डन मुक्त विशवविद्यालय, फाफामऊ, इलाहाबाद
श्री रमेश चन्द्र यादव	शैक्षणिक परामर्शदाता -समाजशास्त्र उ0प्र0रा0टण्डन मुक्त विशवविद्यालय, फाफामऊ, इलाहाबाद

सम्पादक

प्रो0 जयकान्त तिवारी	अध्यक्ष,समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

परिमापक

प्रो0 आभा अवस्थी	अवकाश प्राप्त प्रो0 लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
प्रो0 जयकान्त तिवारी	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

अनुवाद की स्थिति में

मूल लेखक	**अनुवादक**
मूल सम्पादक	**भाषा सम्पादक**
मूल परिमापक	**परिमापक**

सहयोगी टीम

प्रूफ रीडर

प्रभारी पाठ्य सामग्री लेखन	डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं उपलब्ध कराई गई हैं। वि.वि. इस सामग्री के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खण्ड-3 : खण्ड परिचय - अपराध एवं उसके प्रकार

पिछले दो खण्डों में अपराधशास्त्र : प्रकृति एवं अवधारणा, अपराधशास्त्र के सम्प्रदाय एवं सिद्धान्त पर प्रकाश डाला जा चुका है। यह खण्ड पाँच इकाइयों में विभाजित है। इसके अन्तर्गत अपराध एवं उसके प्रकारों का वर्णन किया गया है।

इकाई-1 में अपराध एवं उसके प्रकार को समझाने के लिए महत्वपूर्ण संकल्पनाओं और मापन को स्पष्ट किया गया है। संगठित अपराध, साइबर अपराध, भ्रष्टाचार तथा श्वेतवसन अपराध, राजनीतिक अपराधीकरण तथा नये अपराधी व्यक्तित्व तथा महिलाओं के विरूद्ध अपराध की विस्तृत व्याख्या की गई है। इस इकाई के अन्तर्गत संगठित अपराध के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया।

इकाई-2 और 3 में साइबर अपराध, भ्रष्टाचार तथा श्वेतवसन अपराध का विस्तृत उल्लेख किया गया है। साइबर अपराध का अर्थ एवं विशेषतायें, साइबर अपराध के विभिन्न प्रकार एवं भारत में साइबर अपराध की व्याख्या की गई है। इकाई-3 में भ्रष्टाचार के अर्थ एवं कारण, भ्रष्टाचार को रोकने के लिए किये गये उपाय और श्वेतवसन अपराध से संबंधित विभिन्न अवधारणाओं एवं विशेषताओं का वर्णन किया गया है।

इकाई-4 और 5 में राजनीति का अपराधीकरण तथा नये अपराधी व्यक्तित्व के विभिन्न संकल्पनाओं को स्पष्ट किया गया है। जिसके अन्तर्गत राजनीति के अपराधिकरण का अर्थ, राजनीति तथा अपराधीकरण, लोकपाल तथा राजनीतिक अपराध का विस्तृत उल्लेख किया गया है। इकाई-5 में महिलाओं के विरूद्ध अपराध से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है। महिलाओं के विरूद्ध अपराध की अवधारणा एवं कारण तथा महिलाओं के विरूद्ध अपराध नियंत्रण तथा कानून की विस्तृत व्याख्या की गई है।

इकाई - 1 : संगठित अपराध

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 संगठित अपराध की परिभाषा

1.3 संगठित अपराध के विभिन्न प्रकार

1.4 अन्तर्राष्ट्रीय संगठित अपराध

1.5 संगठित अपराध के निवारण हेतु उपाय

1.6 प्रश्न

1.7 संदर्भ ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त संगठित अपराध से क्या अभिप्राय है। इससे आपका परिचय हो जायेगा।
- संगठित अपराध के विभिन्न प्रकार क्या है इसकी समझ आपको हो जायेगी।

1.1 प्रस्तावना

वर्तमान में आपराधिकता ने एक विश्वव्यापी समस्या का रूप धारण कर लिया है। बीसवीं सदी में हुए ज्ञान के विकास तथा वैज्ञानिक प्रगति के कारण जीवन की जटिलताएँ निरन्तर बढ़ती जा रही है इसलिए असामाजिक तत्वों की गतिविधियों में भी असाधारण वृद्धि हुई है और वे आपराधिकता को एक नियमित व्यवसाय के रूप में अपनाना अधिक लाभप्रद समझते हैं। इस प्रवृत्ति के कारण अनेक अपराधी मिलकर संगठित रूप से अपराध करना अधिक सरल, सुरक्षित और हितकर समझते हैं तथा अपने आपराधिक कार्यों के लिए आधुनिकतम वैज्ञानिक उपकरणों का साधनों के रूप में उपयोग करते हैं।

1.2 संगठित अपराध की परिभाषा

साधारणतः संगठित अपराध एक ऐसा कृत्य होता है, जो दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा मिलकर संयुक्त साहसिक प्रयास के रूप में किया जाता है। यह एक ऐसा अवैध कृत्य है जो कि अविधिमान्य संगठन के सदस्य परस्पर सहयोग और साहस द्वारा करते हैं।

डॉ0 वाल्टर रेक्लेस ने संगठित अपराध को परिभाषित करते हुए कहा है कि यह एक ऐसा अवैध दुःसाहस है, जो संगठन का नेता अपने सहायकों और प्रचालकों की सहायता से करता है, और इसमें सभी एक सोपानबद्ध ढाँचे के रूप में कार्य करते हैं।

सेलिन के मतानुसार संगठित अपराध उन आर्थिक उद्यमों से मिलते जुलते हैं, जो अवैध गतिविधियाँ जारी रखने के लिए तथा कानून का खुलकर उल्लंघन करने की नीयत से स्वयं के औपचारिक या अनौपचारिक संगठन बना लेते हैं।

संगठित अपराधों को अनेक व्यक्तियों द्वारा संयुक्त रूप से किये गये अपराध से भिन्न बताते हुए डा0 वाल्टर रेक्लेस ने कहा है कि ये आपराधिक संगठन अवैध क्रियाकलापों को संचालित करने के उद्देश्य से बनाये जाते हैं जो किसी अविधिमान्य व्यवसाय को अवैध साधनों के प्रयोग द्वारा जारी रखते हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि अनेक अपराधियों द्वारा एक साथ मिलकर किया गया अपराध अपने-आप में संगठित अपराध नहीं बन जाता जब तक कि उस कृत्य को अनेक व्यक्तियों के संगठन द्वारा किसी योजनाबद्ध सुसंगठित कार्यक्रम के अनुसार न किया गया हो। इस प्रकार संगठित गिरोह के अपराधी और सह-अपराधी में विभेद है क्योंकि संगठित अपराध में अनेक व्यक्ति गठबंधन बनाकर संगठित आशय से किसी अवैध व्यापार या व्यवसाय को निरन्तर जारी रखते हैं। संगठित अपराध का मुख्य उद्देश्य अवैध साधनों द्वारा संयुक्त रूप से लाभ कमाना होता है।

किसी वैध व्यापारिक प्रतिष्ठान की भाँति संगठित अपराधी भी अपने आपराधिक कृत्यों को सुनियोजित रूप से जारी रखने के लिए स्वयं को गिरोह के रूप में संगठित कर लेते हैं जैसा कि डोनाल्ड टेफ्ट ने कहा है कि अन्य संगठित व्यवसायों की भाँति इन अपराधियों के संगठनों में भी कार्यकुशलता के लिए नेतृत्व, अनुशासन, आज्ञापालन, निष्ठा, ईमानदारी, कार्यों का वितरण, सह-अस्तित्व आदि की उतनी ही आवश्यकता होती है। ये लोग अपने गिरोह बनाकर सुनियोजित ढंग से अपने अपराध से सम्बन्धित क्रिया-कलापों में लगे रहते हैं। ताकि अधिक से अधिक धन कमा सकें। इस प्रकार ये आपराधिकता को एक व्यवसाय के रूप मं अपना लेते हैं।

संगठित अपराधों के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय बात यह है कि ये आपराधिक संगठन अपने प्रतिस्पर्धी दूसरे संगठन के कार्यकलापों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करते बल्कि उल्टे वे एक दूसरे की गतिविधियों में पूरक होते हैं। उदाहरण के लिए संगठित जुए के अवैध अड्डे, मदिरालय तथा वेश्यालय चलाने वाले अपराधी-गिरोह अपनी गतिविधियाँ एक दूसरे के मेलजोल और सहयोग से जारी रखते हैं क्योंकि ये अपराध एक-दूसरे के पूरक हैं। अपराधी गिरोह के सदस्य कालान्तर में अभ्यस्त अपराधी बन जाते हैं और आपराधिकता को अपने जीवन-निर्वाह का साधन बना लेते हैं।

कभी कभी कुछ लोग किसी वैध व्यापार या व्यवसाय के लिए स्वयं का संगठन बना लेते हैं जो कालान्तर में अवैध संगठित आपराधिकता का रूप ग्रहण कर लेते हैं और अपनी व्यावसायिक गतिविधियाँ जारी रखते हैं।

सदरलैण्ड के अनुसार सभी आपराधिक संगठन कम से कम एक बात में समान होते हैं, वह यह कि इन सभी की कानून से शत्रुता रहती है और इसलिए इनके सदस्य एक-दूसरे को कानूनी कार्यवाही से बचाए रखने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। चूँकि गिरोह के सदस्यों को पकड़े जाने से बचाए रखना आवश्यक होता है, इसलिए संगठित अपराधी पुलिस के साथ साँठ-गाँठ कर उसे अपनी ओर मिलाए रखने की कोशिश में रहते हैं तथा इस हेतु उन्हें कभी-कभी बल-प्रयोग, धमकी या अनुचित प्रभाव का प्रयोग भी करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अवैध रूप से प्राप्त किये गये धन या माल को खपाने के लिए इन गिरोहों को अपने समानान्तर वैध संगठनों का सहयोग प्राप्त करना आवश्यक होता है। इस प्रकार संगठित अपराधों को छिपकर सुचारू रूप से चालू रखने के लिए इनके साथ अनेक आंनुवंशिक गतिविधियाँ सम्मिलित रहती हैं।

1.3 संगठित अपराधों के विभिन्न प्रकार

आपराधिक जगत में कार्यरत विभिन्न प्रकार के आपराधिक संगठनों का अध्ययन निम्नलिखित वर्गों में किया जा सकता है --

1. हिंस्र आपराधिक संगठन
2. आपराधिक सिंडीकेट
3. आपराधिक रैकेट
4. राजनीतिक अपराध

1. हिंस्र आपराधिक संगठन

आपराधिक गिरोह द्वारा किए गए ऐसे अपराध जो हिंस्र स्वरूप के होते हैं और जिनमें अपकारित व्यक्ति को हानि या क्षति के अलावा अन्य कुछ भी प्राप्त नहीं होता, सामान्यतः संगठित हिंस्र अपराध कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में इस प्रकार के अपराधों में केवल अपराध करने वाले को ही अवैध फायदा या सुख प्राप्त होता है और इनमें अपराध के दूसरे पक्ष (अपकारित व्यक्ति) को कोई लाभ या सेवा प्राप्त नहीं होती है। इस प्रकार के अपराधों में डकैती, जेबकटी, अपहरण आदि जैसे हिंस्र कृत्य शामिल हैं क्योंकि इनमें अपराध का शिकार हुए व्यक्ति को क्षति होती है और उस अपराध में उसका किसी प्रकार हित सन्निहित नहीं रहता है। ऐसे अपराध कृत्यों के प्रति गिरोह के सदस्यों को कोई पश्चाताप नहीं होता यद्यपि वे भली-भाँति जानते हैं कि विधि का अनुपालन करने वाले

समाज के सदस्य इन कृत्यों का विरोध करते हैं। संगठित हिंस्र अपराधों के प्रति समाज की तत्काल प्रतिक्रिया होती है और आपराधिक न्याय-प्रशासन से सम्बन्धित संस्थाएं इनके प्रति विशेष सजग रहती है। प्रायः यह देखा गया है कि आपराधिक संगठनों के अपराधियों की देखा-देखी करते हुए बाल-अपराधी भी इन्हीं की तरह दुःसाहस करने का उद्यत हो जाते हैं और अन्तोगत्वा वे अभ्यस्त अपराधी बन जाते हैं। इस प्रवृत्ति के सम्बन्ध में जॉन लैण्डस्को ने कहा है कि कुछ अपराध-प्रधान क्षेत्रों में लोग जीविकोपार्जन के लिए आपराधिकाता को व्यवसाय के रूप में ठीक उसी प्रकार चुनते हैं जैसा कि वे सामान्य अनुक्रम में किसी अन्य वैध व्यवसाय का चयन करते हैं।

सदरलैण्ड का मत है कि हिंस्र आपराधिक संगठन के सदस्यों के लिए सामान्य अपराधियों की तुलना में अधिक कौशल और नियोजन की आवश्यकता रहती है। उनका व्यावसायिक कार्य केवल आरम्भ कर देने तक ही सीमित नहीं रहता वरन इसे प्रारम्भ से लेकर अन्त तक तथा बाद में पकड़े जाने से बचने के लिए योजनाद्ध तरीके से विभिन्न चरणों में कुशलता पूर्वक संचालित करना होता है।

संगठित हिंस्र अपराधों में कुछ अपराधी मिलकर संयुक्त रूप से किसी आपराधिक कृत्य को करने के लिए गिरोह बना लेते हैं। उदाहरणार्थ, डाकुओं के गिरोह द्वारा संयुक्त रूप से बल प्रयोग तथा आतंक द्वारा योजनाबद्ध तरीके से लोगों को भय दिखाकर डाका डाला जाता है। डकैती के लिए कम से कम पाँच व्यक्ति गिरोह में होना आवश्यक होता है। इसी प्रकार जेबकतरों के गिरोह भी संगठित रूप से रेलों, बसों, रेलवे स्टेशनों, बस अड्डों आदि में अपनी आपराधिक गतिविधियाँ जारी रखते हैं। इन गिरोह के सदस्यों में वास्तविक जेबकटी तो एक या दो व्यक्ति ही करते है तथा अन्य उन्हें पकड़े जाने से बचाने, अपकारित व्यक्ति का ध्यान बँटाने, पुलिस से साँठ-गाँठ या अपने शिकार के बारे में गिरोह को सूचना देने आदि का काम करते हैं।

वर्तमान समय में आपराधिक संगठन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्य कर रहे हैं जिनमें समुद्री डकैती या हवाई डकैती आदि प्रायः घटित होते रहते हैं।

2. आपराधिक सिंडीकेट

आपराधिक सिंडीकेट को आपराधिक व्यवसाय-संघ भी कहा जा सकता है। ऐसे सिंडीकेट से तात्पर्य ऐसे आपराधिक संगठनों से है जो अपने ग्राहकों को कोई ऐसी निषिद्ध या अवैध वस्तु या सेवा उपलब्ध कराते हैं, जो उसे खुले रूप से वैधानिक तरीकों से प्राप्त नहीं हो सकती है। स्वाभाविक ही है कि इस प्रकार की विधि द्वारा प्रतिबन्धित वस्तु या सेवा को प्राप्त करने के लिए इच्छुक व्यक्ति वास्तविक मूल्य से कई गुना अधिक मूल्य देने के लिए तैयार हो जाते हैं। अतः आपराधिक सिंडीकेट में कार्यरत अपराधी इन प्रतिबंधित सेवाओं या वस्तुओं का व्यापार करते हैं। तथा उन्हें इच्छुक ग्राहकों तक पहुँचाते

हैं जिनके बदले में उन्हें मुँह माँगे दाम मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए अफीम, गाँजा, चरस, हेरोइन, मदिरा और यहाँ तक कि लड़कियों की सप्लाई आदि का अवैध व्यापार करना इन सिंडीकेट का मुख्य धन्धा होता है। आपराधिक सिंडीकेट का मूल आधार जनता की उन अवैध माँगों की पूर्ति करना है, जो कानून द्वारा प्रतिबन्धित और निषिद्ध घोषित की जाने के कारण वैध रूप से पूरी नहीं की जा सकती है। अतः सिंडीकेट का मूल लक्षण उसमें कोई अवैध सेवा का अन्तर्विष्ट होना है जिसकी लोगों में माँग है परन्तु अवैध होने के कारण उसकी पूर्ति वैध रूप से नहीं की जा सकती है।

आपराधिक सिंडीकेट के सदस्य इन अवैध सेवाओं से अत्यधिक लाभ कमाते हैं। उन्हें इन अवैध सेवाओं पर एकाधिकार हासिल करने के लिए धमकी, हिंसा और यहाँ तक कि हत्या आदि जैसे जघन्य आपराधिक तरीके अपनाने पड़ते हैं। चूँकि स्वयं जनता के कुछ लोग इन अवैध सेवाओं के प्राप्ति के इच्छुक होते हैं इसलिए सिंडीकेट के सदस्यों को इन लोगों का मौन संरक्षण प्राप्त होता है और वे अपनी आपराधिक गतिविधियाँ बे-रोक-टोक जारी रखते हैं।

विख्यात अपराध-विशेषज्ञ डेविड ड्रेसलर के मतानुसार आपराधिक सिंडीकेट का संचालन अत्यन्त कुशल एवं अनुभवी व्यावसायिक गिरोह के मुखिया द्वारा किया जाता है। इन सिंडीकेट के कार्य-कलापों के बारे में ड्रेसलर कहते हैं कि उपलब्ध सांख्यिकी आंकड़ों के आधार पर इन आपराधिक व्यावसायिक संघों की अवैध गतिविधियों तथा उनके गम्भीर परिणामों का अनुमान लगाना कठिन है क्योंकि इनमें से अधिकांशतः अभियोजन और दण्ड से बचे रहते हैं। इन सिंडीकेटों के सदस्य विधि के प्रवर्तन से सम्बन्धित अधिकारियों से मेल-जोल बढ़ाकर अपना आपराधिक धन्धा अबाधित रूप से चालू रखते हैं तथा पकड़े जाने से बचे रहते है। कभी कभी वे राजनीतिक नेताओं तथा समाज के उच्चवर्गीय लोगों को चन्दा या अनुदान देकर अनुग्रहीत करते है ताकि समाज में उनकी प्रतिष्ठा बनी रहे।

उल्लेखनीय है कि मादक द्रव एवं पदार्थों के सिंडीकेट्स विश्वस्तर पर कार्यरत है। जो प्रतिदिन करोड़ों डालरों का व्यापारिक लेन देन करते हैं तथा स्वयं को कानून के शिकंजे से बचाते हुए योजनाबद्ध तरीके से विभिन्न देशों को अपने प्रतिबन्धित माल की आपूर्ति करते हैं। इस अवैध धन्धे में मादक पदार्थ के उत्पादक से लेकर उपभोक्ता तक अनेक मध्यस्थ शृंखलाएँ कार्यरत रहती हैं जो संक्षेप में निम्नानुसार होती है -

1. उत्पादकता - जो मादक पदार्थ का बीजारोपण करके, उसके पौधे उगाकर उचित देखभाल द्वारा पदार्थ तैयार करता है।

2. निर्माता - जो कच्चे माल को रिफाइनरी प्रक्रिया द्वारा अन्तिम रूप देता है।

3. निर्यात कर्ता - जो माल को समुद्री जहाज या हवाई जहाज द्वारा बाहरी देशों को

भेजता है।

4. तस्कर - जो जहाज, वाहनों, रेलों, ट्रकों आदि द्वारा अवैध माल के परिवहन के दौरान उसे पकड़े जाने से बचाने की व्यवस्था करता है ताकि माल सुरक्षित रूप से गन्तव्य स्थान पर पहुँच सके।

5. शरीर पैकर्स - जो अपने शरीर के अन्दर प्रतिबन्धित माल को लाने-ले जाने का कार्य करते हैं।

6. यातायातकर्ता - ये अपने सामान, कपड़ों या अन्य वस्तुओं में छिपाकर माल का हस्तान्तरण करते हैं।

7. वितरक - ये प्रतिबन्धित मादक द्रव्यों या पदार्थों का सुनियोजित ढंग से वितरण करके माल डीलर तक पहुँचाते हैं।

8. डीलर - ये माल की अपेक्षाकृत छोटी मात्रा के व्यापारी होते हैं।

9. उपभोक्ता - जो अवैध मादक द्रव्य या पदार्थ की मांग करते हैं और उनकी आपूर्ति हेतु कई गुने अधिक कीमत देने के लिए सहमत होते हैं।

3. आपराधिक रैकैट्स

आपराधिक रैकेट्स से तात्पर्य किसी वैध व्यापार या व्यवसाय से सम्बन्धित संगठित आपराधिक गिरोह से है, जो वैयक्तिक क्षति या संपत्ति को हानि की धमकी देकर व्यवस्थित रूप से करते रहते हैं। आपराधिक रैकेट की परिभाषा देते हुए डोनाल्ड टेफ्ट ने कहा है कि यह एक ऐसा संगठित अपराध है जिसमें कार्यरत अपराधीगण समाज के उन सामान्य व्यक्तियों के लिए कोई सेवा करते हैं, जो किसी वैध व्यवसाय या कार्य से जुड़े हुए हैं। अतः हिंस्र आपराधिक संगठन तथा रिकेटियरिंग में मुख्य अन्तर यह है कि पहले में किसी प्रकार की सेवा का तत्व विद्यमान नहीं है और वह पूर्णतः शोषणकारी होता है जबकि दूसरे में वैध गतिविधि में कार्यरत व्यक्तियों को कोई सेवा उपलब्ध कराने का तरीका अवैध होता है। इसी प्रकार आपराधिक सिंडीकेट और आपराधिक रैकेट में भी अन्तर है। सिंडीकेट में सेवा पूर्णतः अवैध एवं निषिद्ध होती है जबकि रैकेट में सेवा ऐसे व्यक्ति को उपलब्ध कराई जाती है जो किसी वैध कार्य या व्यवसाय में संलग्न है। जिन लोगों का रैकेट द्वारा शोषण किया जाता है वे स्वयं रैकेट की सेवा से संतुष्ट रहते हैं यद्यपि वे जानते हैं कि उनका शोषण हो रहा है। अतः सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि 'रेकेटियरिंग' किसी वैध माँग के बदले में अवैध शोषण के अलावा कुछ नहीं है।''

वर्तमान स्पर्द्धात्मक अर्थ-व्यवस्था में अपनी सौदेबाजी की क्षमता बढ़ाने के लिए वैयक्तिक व्यापार संगठन तथा श्रमिक संघ, दोनों ही आपराधिक रेकेट्स का सहारा लेते

हैं। इस दौरान कभी-कभी एक वर्ग दूसरे पर अनुचित दबाव डालने या बल प्रयोग करने की कोशिश करता है जिसके कारण यदाकदा हिंसा की घटनाएँ भी हो जाती हैं। इस सन्दर्भ में व्यापारिक क्षेत्र में कार्यरत कुछ रैकेट्स का उल्लेख करना उचित होगा।

व्यापारिक श्रम - रैकेट्स

प्रत्येक व्यापारिक प्रतिष्ठान के नियोजकों की यह स्वाभाविक इच्छा रहती है कि उन्हें कम से कम लागत पर अधिक से अधिक लाभ हो। दूसरी ओर श्रमिक सदैव यह चाहेगा कि उन्हें नियोजकों से अधिकाधिक पारिश्रमिक मिले। इस प्रकार इन दोनों के हित परस्पर-विरोधी होने के परिणामस्वरूप इनमें आपसी टकराव की स्थिति प्रायः उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति से निपटने के लिए नियोजक रेकेटियर्स की सहायता से ऐसे अवैध तरीके अपनाते हैं जिनसे श्रमिकों की सौदा क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और नियोजकों को अनुचित लाभ होता है। इस प्रकार के व्यापार -श्रमिक रैकेट्स गोदी मजदूरों में अधिकता से सक्रिय हैं।

समुद्री बन्दरगाहों में जहाज गोदी पर लगते ही उनमें लाया गया माल शीघ्रातिशीघ्र उतारने में विलम्ब के परिणामस्वरूप व्यापारियों को हजारों रूपये का नुकसान भुगतना पड़ता है। इसलिए श्रमिकों द्वारा उसे शीघ्र उतरवाना आवश्यक होता है। श्रमिकों द्वारा स्थिति का अनुचित फायदा उठाते हुए माल उतारने में देर न की जाए इस आशंका से व्यापारी प्रायः श्रमिकों के नेताओं को अपनी ओर मिलाये रखते हैं और उनकी सहायता से अनेक आदतन अपराधियों को श्रमिक रेकेट के रूप में संगठित किये रखते हैं जो श्रमिक वर्ग को काबू में रखते है। इसके बदले में उन्हें व्यापारियों से अच्छी रकम प्राप्त होती है। इसी प्रकार का एक श्रमिक रेकेट अमेरिका में 'न्यूयार्क वाटर फ्रंट रेकेट के नाम से वर्षों तक कार्यरत था। सारांश यह है कि संगठित रेकेट्स की समस्या माँग और पूर्ति के अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त पर निर्भर करती है जिसका मुख्य उद्देश्य समय के अनुसार परिस्थिति से आर्थिक लाभ उठाना होता है।

एक अन्य प्रकार का श्रमिकों का रेकेट ऐसे संस्थानों या विभागों में पाया जाता है जहाँ सैकड़ों मजदूर काम पर लगाये जाते हैं। सरकारी लोक-निर्माण-विभाग या रेलवे के इंजीनियरिंग विभाग में ऐसे श्रमिक रेकेट्स बहुधा सक्रिय रहते है। जहाँ असंख्य कामगार दैनिक वेतन पर काम करते है। इन कार्यों से जुड़े टाइम-कीपर, ओवरसियर, या ठेकेदार ऐसे अनेक नाम मजदूरों की वेतन सूची में लिख कर उनके फर्जी हस्ताक्षर कर वेतन निकालते रहते हैं जो वास्तव में अस्तित्व में है ही नहीं। इन नामों की उपस्थिति पंजिका में भी प्रविष्टि कर दी जाती है और उन्हें उपस्थित दर्शाया जाता है जबकि वास्तव में वे व्यक्ति काम पर नहीं रहते या उस नाम को कोई व्यक्ति ही नहीं होता है। इस प्रकार फर्जी नामों से निकाले गये वेतन का आपराधिक रेकेट के सदस्य आपस में बँटवारा करके

अच्छा पैसा कमा लेते है। कहीं कहीं तो इसमें इन्जीनियर या नियोजन से सम्बन्धित अधिकारियों का भी हाथ रहता है।

औद्योगिक प्रतिष्ठानों में भी आपराधिक रैकेट्स नियमित रूप से कार्य करते रहते हैं तथा अवसर पड़ने पर मजदूरों की हड़तालों, घेराव आदि से उत्पन्न संकटों से नियोजकों की रक्षा करते हैं जिसके बदले में नियोजक उन्हें अच्छी रकम देकर सदैव अपनी ओर मिलाए रहने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। उनका यह प्रयास रहता है कि ये रिकेटियर्स चुनाव जीतकर श्रमिकों के यूनियन के पदाधिकारी बने रहें ताकि मजदूर वर्ग उनके हाथ में रहें और औद्योगिक संकट से उन्हें बचाये रखें।

जुआड़ियों के रेकेट्स

उल्लेखनीय है कि व्यापार और औद्योगिक क्षेत्र के अलावा जुए के अवैध धन्धे में लिप्त आपराधिक संगठन भी सक्रिय रूप से कार्य करते रहते हैं। प्रायः प्रत्येक व्यक्ति को अपना भाग्य आजमाने की थोड़ी बहुत जिज्ञासा तो रहती ही है इसीलिए वह दैवयोग या संयोग पर विशवास करते हुए जीवन में अनेक बार जोखिम उठाता है। जुआ, सट्टा, लॉटरी आदि भी अकस्मात धन प्राप्त करने की लालसा से भाग्य आजमाने का ही एक प्रकार है। घुड़दौड़, ताश लगाना आदि भी जुए के ही स्वरूप हैं। मानव को रातोरात धनी बनने की लालसा के कारण जुए का व्यापार पनपता है और इसी कारण इसमें लिप्त व्यक्ति आपराधिक रेकेट्स बनाकर लोगों को इस ओर आकृष्ट कर लूटते रहते हैं। यही कारण है कि जुए को कानून द्वारा प्रतिबन्धित करने पर भी वह छिपे रूप से यथावत् चलता रहता है और रिकेटियर्स जुआड़ियों से धन ऐंठते रहते हैं।

इस सन्दर्भ में सट्टेबाजी का उल्लेख कर देना भी उचित होगा। भारत में तो यह एक बीमारी के रूप में सभी जगह फैला हुआ है। साधारण पान की दुकानों पर भी सट्टे की पर्चियाँ लेते हुए लोगों को देखा जा सकता है। इस अवैध धन्धे में महिलाएँ और यहाँ तक कि बच्चे भी खूब रूचि लेते हैं यद्यपि इसे कानून द्वारा अपराध माना गया है। उल्लेखनीय बात तो यह है कि यह अवैध होते हुए भी इसमें धोखाधड़ी कभी नहीं होती। पर्ची का नम्बर निकल आने पर पर्चीधारक को अमेरिका में विगत कुछ वर्षों से इन्टरनेट जुआघर एवं साइबर केसिनों एक संगठित आपराधिक व्यापार के रूप में कार्यरत है जिनमें समुद्र-पार सट्टेबाजी धड़ल्ले से चल रही है। इन्हें नियंत्रित करने के उद्देश्य से संयुक्त राज्य अमेरिका ने 'गेम्बलिंग कंट्रोल बोर्ड' के माध्यम से विनियमनकारी कानून लागू किया है। इन्टरनेट पर आयोजित होने वाले इन अवैध सटटो का धन्धा करने वाले व्यक्ति लाभ के रूप में बड़ी धनराधि कमा रहे है।

अन्य अवैध सेवाओं के रेकेट्स

जुए की ही भाँति मदिरा, मादक पदार्थों तथा अवैध गर्भपात कराने के लिए भी आपराधिक संगठन 'रेकेट्स' के रूप में कार्यरत है। झूठी डिग्रियाँ, प्रमाण-पत्र या अंक सूचियाँ देकर भोले-भाले विद्यार्थियों से हजारों रूपये ऐंठ लेने के प्रकरण आए दिन समाचार पत्रों में पढ़ने को मिलते है। जो 'रेकेट्स' के ही प्रकार हैं। स्पष्ट है कि सम्बन्धित विश्वविद्यालयों या संस्थाओं के कुछ कर्मचारी भी इन रेकेट्स में शामिल रहते हैं और जाली कागजात तैयार करने में मदद करते हैं।

इसी प्रकार बेरोजगार लोगों को नौकरी दिलाने के बहाने ठगने के प्रकरण भी आये दिन सुनने को मिलते हैं। अनेक रेकेट्स इस अवैध कार्य में लिप्त हैं। यहाँ तक कि विदेशों में विशेषकर मध्यपूर्व देशों में नौकरी दिलाने के लिए कुछ फर्जी संस्थाएँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यह धन्धा कर रही है। इस अवैध कृत्य को नियमित धन्धे के रूप में चलाया जा रहा है।

शरीर और लड़कियों के अवैध व्यापार में भी अनेक गिरोह अपनी आपराधिक गतिविधियाँ जारी रखे हुए हैं। यद्यपि इसकी रोकथाम के लिए अवैध व्यापार यथावत चल रहा है। भारतीय दण्ड संहिता में भी महिलाओं तथा लड़कियों के साथ अनैतिक व्यवहार सम्बन्धी अनेक प्रावधान हैं लेकिन वेश्यावृत्ति और तत्सम धन्धों पर रोक लगाना सम्भव नहीं हुआ है। संभवतः इसका कारण यह है कि ये कृत्य समाज के लोगों की मानसिकता से जुड़े हुए हैं अतः इन पर केवल कानूनों द्वारा रोक लगाने से काम नहीं चलेगा जब तक कि इनके विरुद्ध लोकमत तैयार नहीं किया जाता, और यह काम केवल उचित शिक्षा और प्रचार-प्रसार माध्यमों द्वारा ही भली भाँति किया जा सकता है। हाल के वर्षों में नन्हें बालक/बालिकाओं के साथ दुष्कृत्य और बलात्कार की घटनाओं में वृद्धि होना विधि-प्रशासन एजेन्सियों के लिए विशेष चिंता का विषय बनी हुई है।

राजनीतिक अपराध

यह आम धारणा है कि वैधानिक व्यापार में कार्यरत समाज के प्रतिष्ठित उच्चवर्गीय लोगों तथा व्यावसायिक अपराधियों में राजनीतिक अपराध के माध्यम से अन्तर्सम्बन्ध रहता है। विशेषतः राजनीतिक क्षेत्र में अपनी पार्टी को विजयी बनाने के लिए राजनीतिक लोग प्रायः कुख्यात अपराधियों की सहायता लेते हैं, जो अवैध तरीके अपनाकर उस राजनीतिक दल के लिए काम करते हैं और इसके बदले धन तथा राजनीतिक संरक्षण प्राप्त करते हैं। अवसर आने पर राजनीतिक अपराध में शामिल ये अपराधी मारपीट, बल प्रयोग, अपहरण, धमकी, घूसखोरी आदि अवैध कृत्य करने में भी नहीं हिचकिचाते। भारत के न्यायालयों में चुनाव से सम्बन्धित दायर होने वाली चुनाव याचिकाओं से यह पता चलता है कि राजनीतिक दलों के नेता आपराधिक उत्कोच के

माध्यम से चुनाव जीतने के लिए अवैध हथकंडे अपनाते हैं, जो उनकी गरिमा के लिए शोभनीय नहीं होता है।

इन राजनीतिक उत्कोचों द्वारा कभी कभी एक ही व्यक्ति को अनेक बार या अलग अलग स्थान पर फर्जी नाम से वोट डालने के लिए बाध्य किया जाता है। इसी प्रकार वे अशिक्षित ग्रामीण जनता को फुसलाकर या नशे पानी का प्रलोभन देकर वोट के लिए उन्हें खरीदते है। जो चुनावों के दौरान एक आम बात हो गई है।

1.4 आतंकवाद तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठित अपराध

वर्तमान में संगठित अपराधों का एक और प्रकार आतंकवाद के रूप में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शीघ्रता से फैल रहा है। आतंकवादियों का उद्देश्य प्रायः सत्तारूढ़ सरकार विरोधी गतिविधियों में लिप्त रहकर लोगों में दहशत और भय का वातावरण उत्पन्न करना रहता है ताकि सरकार को उनकी मांगें पूरी करने हेतु बाध्य किया जा सके। कभी-कभी स्वायत्त शासन या आत्म-निर्धारण के नाम पर भी आतंकवादी संगठन गतिशील रहते हैं। परिभाषा की दृष्टि से आतंकवादियों को एक ऐसा संगठन कहा जा सकता है जो योजनाबद्ध तरीके से अपनी शक्ति के बल पर देश या प्रदेश में भय, संत्रास और उत्पात फैलाते है। इसके चार प्रमुख लक्षण हैं - (1) यह किसी संगठित व्यक्ति समूह द्वारा संचालित किया जाता है। (2) प्रायः संगठन का उद्देश्य राजनीतिक होता है (3) अपनी मांगे मनवाने हेतु आतंकवादी बल, हिंसा और आपराधिक तरीकों का खुल कर प्रयोग करते हैं। (4) हिंसात्मक गतिविधियों का उद्देश्य लोगों में दहशत और भय का वातावरण उत्पन्न करके शासन के लिए समस्यायें खड़ी करना होता है।

अपने उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आतंकवादियों द्वारा जो तरीके अपनाये जाते हैं उनमें हत्यायें,मानववध, अपहरण, बलात्नयन, लूट आदि प्रमुख हैं जिनके शिकार प्रायः महत्वपूर्ण राजनेता, अतिविशिष्ट व्यक्ति, उच्च पदाधिकारी या सैनिक प्राधिकारी होते हैं। आतंकवादियों की यह धारणा रहती है कि वे अन्यायपूर्ण शासन-व्यवस्था के विरूद्ध लड़कर लोगों के लिए न्यायपूर्ण शासन सुनिश्चित कराने का पुनीत कार्य कर रहे हैं। संगठित आतंकवादियों का उद्देश्य कुछ भी क्यों न हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनकी इन विधि-विरोधी गतिविधियों में जन्-जीवन और सम्पत्ति का भारी विनाश होता है तथा ये प्रदेश या देश के लिए गम्भीर खतरे की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। जब आतंकवाद अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर फैलता है, तो वह विश्व-शान्ति और सुरक्षा के लिए गम्भीर समस्या का रूप धारण कर लेता है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवादियों द्वारा चलाई जाने वाली आपराधिक गतिविधियों में हाइजेकिंग के अलावा आग्नेय-अस्त्रों का अवैध लेन-देन, विस्फोटकों, विनिषिद्ध-

वस्तुओं तथा मादक पदार्थों का अवैध व्यापार, समुद्री डकैती आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। युद्ध अपराधों को भी संगठित अपराध की कोटि में रखा जा सकता है। इन्हें रोकने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय दण्ड न्यायालय की स्थापना किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

संगठित अपराधों के सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि इन संगठनों के कार्य करने वाले अपराधियों में कुछ गुण विशेषतः पाये जाते हैं जिनके कारण इनकी गतिविधियाँ अवैध और प्रतिबंधित होते हुए भी सुचारू रूप से बेरोकटोक चलती रहती है। इन लोगों का आपसी सहयोग और तालमेल इतना मजबूत होता है कि सब प्रकार की मुसीबतें झेलकर भी वे एक दूसरे का भंडाफोड़ कभी नहीं करते। इन संगठनों के नेता और सदस्यों की अपनी आचार संहिता होती है। जिसका ये सभी निष्ठापूर्वक पालन करते हैं। अपने संगठित आपराधिक कार्य को सुचारू रूप से कार्यान्वित करने के लिए गिरोह के सदस्यों में कार्य विभाजन होता है और प्रत्येक को एक निशिचत कार्य सौपा जाता है। इन कार्यों के संचालन का काम गिरोह का मुखिया स्वयं करता है। साथ ही वह सदस्यों की समस्याओं की ओर भी ध्यान देता है और उनके निवारण के उपाय सुझाता है। उदाहरण के लिए मद्य निषेध के क्षेत्र में मदिरा का अवैध व्यापार करने वाले गिरोह के कुछ सदस्य मदिरा की सप्लाई प्राप्त करने का काम करते हैं, कुछ उसे लाने-पहुँचाने का काम करते हैं, कुछ अपने साथियों को संकट से बचाने के लिए नियत किये जाते हैं और कुछ पुलिस या आबकारी विभाग के कर्मचारियों से साँठ-गाठ कर उन्हें पटाए रखने का काम करते हैं। इस प्रकार ये गिरोह स्वयं को पकड़े जाने से बचाकर अवैध कृत्य में लगे रहते हैं। इससे प्राप्त हुई धनराशि का सदस्यों में बॅटवारे का काम प्रायः गिरोह का मुखिया स्वयं करता है लेकिन इसमें वह पूरी ईमानदारी बरतता है।

आपस में एक-दूसरे के सहयोग और विश्वास से काम करते हुए ये आपराधिक गिरोह अन्य गिरोहों के साथ भी तालमेल बैठाये रहते हैं तथा एक-दूसरे के कार्यों एवं गतिविधियों में हस्तक्षेप नहीं करते। अतः मदिरा का अवैध व्यापार करने वाले आपराधिक संगठन जुए या वेश्यावृत्ति से सम्बन्धित गिरोह का सहयोग भी लेते हैं। अनेक गिरोह अन्तर्राज्यीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी कार्यरत रहते हैं। यहाँ तक कि कहीं कहीं एक ही अवैध व्यवसाय करने वाले अनेक आपराधिक संगठन साथ-साथ काम करते हैं तथा एक-दूसरे को खतरे से बचाए रखने में पूरी मदद करते हैं। आपसी विश्वास तथा सहयोग ही इन आपराधिक संगठनों की सफलता का वास्तविक रहस्य है क्योंकि ये जानते हैं कि तनिक भी अनबन इनका भण्डाफोड़ करने के लिए पर्याप्त होती है।

उल्लेखनीय है कि आर्थिक, व्यापारिक और औद्योगिक विकास तथा आधुनिकीकरण के प्रभाव के कारण आपराधिक संगठनों का कार्य क्षेत्र भी अधिक व्यापक होता जा रहा है। वर्तमान में तस्करी, मदिरा या मादक पदार्थों का अवैध व्यापार, जेबकटी, लैंगिक-

व्यापार, धोखाधड़ी आदि जघन्य अपराध आपराधिक गिरोहों द्वारा संगठित रूप से किये जा रहे हैं। इनके देशव्यापी गिरोह हैं जो विभिन्न राज्यों में अपनी गतिविधियाँ जारी रखे हुए हैं। कुख्यात अमेरिकन ठग वालकॉट जो भारत में पकड़ा गया था, इस बात का प्रमाण है कि ठगी का अपराध अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी चल रहा है। इसी प्रकार भारतीय तस्करों में हाजी मस्तान, सुखर नारायण बाखिया आदि के नाम भी तस्कर-गिरोहों के सन्दर्भ में कुख्यात हैं।

आपराधिक संगठनों के सन्दर्भ में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन संगठनों के सदस्यों में निष्ठा, ईमानदारी, श्रद्धा, अनुशासन, आज्ञापालन, भ्रातृत्व आदि जैसे वे भी सदगुण विद्यमान रहते हैं जो एक सामान्य सदाचारणी नागरिक में पाये जाते हैं, बल्कि वास्तविक रूप से देखा जाए तो ये इन गुणों को सामान्य व्यक्ति की तुलना में कहीं अधिक महत्व देते हैं। फिर प्रश्न यह उठता है कि इन सभी सदगुणों के होते हुए भी ये लोग आपराधिकता का जीवन व्यतीत क्यों करते हैं। संभवतः इसका कारण यह है कि इन्हें इस बात की अनुभूति नहीं कराई जाती कि उनमें ये गुण सामान्य व्यक्ति से अधिक मात्रा में हैं और वे चाहें तो इनका उपयोग दुष्कृत्यों (अपराधों) के लिए करने की बजाय सदकार्यों के लिए करते हुए विधि का अनुपालन करने वाले सामान्य नागरिक बन सकते है।। अतः इनकी इन अच्छाइयों के बारे में उनमें चेतना उत्पन्न की जानी चाहिए ताकि वे आपराधिकता त्याग कर सामान्य नागरिक बन सकें।

1.5 संगठित अपराधों के निवारण हेतु उपाय

हाल के वर्षों में यह अनुभव किया जा रहा है कि संगठित अपराधों के निवारण हेतु सरकार द्वारा ठोस विधायी प्रयास किये जाने चाहिए। विशेषतः अवैध सेवा से सम्बन्धित आपराधिक संगठनों की गतिविधियों को अंकुशित करना नितान्त आवश्यक है। इस हेतु निम्नलिखित उपाय सुझाए जा सकते हैं -

1. मद्यपान तथा जुए पर भारी कर लगाकर उसे वैध घोषित किया जा सकता है क्योंकि जिन लोगों को इनकी लत पड़ चुकी है उनके लिए इनका त्याग करना बहुत मुश्किल है और यदि वे इन्हें वैध रूप से प्राप्त नहीं कर पायेंगे तो अवैध तरीके अपनायेंगे जिनके कारण अन्य जुड़ी हुई आपराधिक गतिविधियों को भी पनपने का अवसर मिलेगा। अतः इन पर भारी कर लगाकर इनकी अवैधता समाप्त करना ही युक्ति युक्त प्रतीत होता है।

2. वेश्यावृत्ति के लिए लाइसेंस पद्धति लागू करके उसे सीमित किया जा सकता है।

3. आपराधिक संगठनों की आपराधिक गतिविधियाँ जनता के प्रत्यक्ष या परोक्ष सहमति के बिना नहीं चल सकती हैं। अतः यदि प्रचार-प्रसार माध्यमों से इनके विरूद्ध

जनमत तैयार किया जाए तो इन पर काबू पाया जा सकता है। कानूनी प्रावधानों की बजाय जन-चेतना ही इन अपराधों को रोकने का उचित उपाय है।

4. जनता के सक्रिय सहयोग के बिना विधि-प्रवर्तन अधिकारियों को अपना वैधानिक कर्तव्य निभाना कठिन है। अतः आपराधिक संगठनों को विघटित कर विस्थापित हुए अपराधियों को समाजोपयोगी बनाने में जनता की सक्रिय भागीदारी परम आवश्यक है। इस हेतु पुलिस अधिकारियों को निश्चित अन्तरालों में जनता के प्रतिनिधियों के साथ बैठकें आयोजित करनी चाहिए ताकि वे अपनी समस्याओं से उन्हें अवगत करा सकें ओर उनके विचार जान सकें।

MASY 09 15A

संगठित अपराधों में दिनोंदिन हो रही वृद्धि को ध्यान में रखते हुए इन्हें नियंत्रित रखने हेतु कानूनों का कड़ाई से प्रवर्तन किया जाना आवश्यक है। अपराध निवारण में पुलिस की भूमिका अहम रहती है। अतः जब तक पुलिस का मनोबल ऊँचा नहीं उठाया जाता, आपराधिक गिरोहों की समाप्ति कठिन है। जनता की ओर से अपराधियों को पकड़वाने में वांछित सहयोग के अभाव में अपराध सिद्ध नहीं हो पाते और अपराधीगण निर्दोष छूट जाते हैं। अतः जब तक जनता इस कार्य में कर्तव्य भावना से सक्रिय योगदान नहीं करती, तब तक इन अपराधों पर रोक लगाना कठिन है।

केन्द्रीय जाँच ब्यूरो के निदेशक ने आपराधिक गिरोहों की राजनीतिज्ञों तथा नौकरशाही से साँठ-गाँठ के प्रति गंभीर चिंता व्यक्त करते हुए वोहरा समिति के समक्ष यह स्वीकार किया था कि विशेषकर बिहार, उत्तर प्रदेश तथा हरियाणा राज्यों में माफिया आपराधिक गिरोहों को प्रायः सभी राजनीतिक दलों का संरक्षण प्राप्त है। बिहार राज्य में तो नक्सलवादी अपनी कथित समानान्तर सरकार चला रहे हैं जिसके कारण राज्य में पूर्ण अराजकता की स्थिति व्याप्त है तथा लोगों को जान-माल का खतरा सदैव बना रहता है। इनमें कुछ नेता इन अवैध संगठनों का नेतृत्व कर रहे हैं। अतः इस स्थिति को समाप्त करने हेतु केन्द्रीय सरकार के गृह मंत्रालय के अधीन एक उच्च स्तरीय गोपनीय प्रकोष्ठ की स्थापना की जाए ताकि आपराधिक गिरोहों के राजनीतिक दलों तथा नौकरशाही से गठबंधन पर रोक लग सके तथा इसमें लिप्त लोगों के विरूद्ध सख्त कार्यवाही की जा सके।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेख कर देना उचित होगा कि वर्तमान समय मं हुए सूचना प्रौद्योगिक के विकास एवं दूर संचार सेवाओं के विस्तार से संगठित अपराधियों को अपनी गतिविधियों को गोपनीय रूप से चलाने में पर्याप्त मदद मिल रही है। जिस प्रकार किसी वैध निजी या सार्वजनिक प्रतिष्ठान के संचालक अपने कारोबार में सूचना प्रौद्योगिकी एवं इंटरनेट सेवाओं का प्रयोग करते है। उसी प्रकार आपराधिक गिरोह या संगठन भी इन सेवाओं का भरपूर फायदा उठा रहे है। हाल ही में इन्टरनेट के माध्यम से मादक पदार्थों

की तस्करी, सट्टेबाजी, अश्लील रूपण, अवैध देह व्यापार धनराशि के अन्तरण के दौरान धोखाधड़ी या कपट आदि के अनेक प्रकरण सामने आये हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सुनियोजित ढंग से संचालित किये जा रहे हैं। यद्यपि इन नये साइबर अपराधों से निपटने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किये जा रहे हैं लेकिन इस सम्बन्ध में विभिन्न देशों के कानूनों में एकरूपता न होने के कारण उन अपराधों पर नियंत्रण रखने में व्यावहारिक कठिनाइयां अनुभव की जा रही हैं। इस समस्या से निपटने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में विभिन्न राष्ट्र मिलकर, एक आदर्श सरकार कानून लागू करने की दिशा में प्रयासरत हैं।

1.6 प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) निम्नलिखित में कौन संगठित अपराध नहीं है।

1. आपराधिक सिंडीकेट
2. व्यापारिक श्रम रैकेट्स
3. चोरी
4. आतंकवादी संगठन

(2) संगठित अपराध के लिए अन्य अपराधों की तुलना में अधिक कौशल तथा नियोजन की आवश्यकता होती है ।

1. सत्य 2. असत्य 3. दोनो में से कोई नहीं

(3) आपराधिक सिंडीकेट पर एक नोट लिखें।

(4) संगठित अपराधों के निवारण हेतु कुछ उपाय बतायें

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) संगठित अपराध से आप क्या समझते हैं? संगठित अपराधों के विभिन्न प्रकारों की विस्तार में चर्चा करें।

(2) आतंकवाद तथा संगठित अपराध पर एक निबन्ध लिखें।

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Edwin H. Sutherland and Donald R. Cressey (1968), Principles of Criminology, the times of India press. Bombay.

2. Talcott Parsons (1979), The Social System, Amerind, New Delhi.

3. Robert G. Caldwell (1956), Criminology, Ronald Press, New York.

4. Jones, Stephen (2009), Criminology. Oxford University Press, New York.

5. Singh, Shyamdhar (2008), Theories of Criminology, Sapna Ashok Prakashan, Varanasi.

6. Paranjape, N. V. (1999), Criminology and Penology, Central Law Publications, Allahabad.

इकाई - 2 : साइबर अपराध

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 साइबर अपराध का अर्थ

2.3 साइबर अपराध की विशेषताएँ

2.4 साइबर अपराध के विभिन्न प्रकार

2.5 भारत में साइबर अपराध

2.6 प्रश्न

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त साइबर अपराध के बारे में आप समझ जायेंगे। साइबर अपराध के विभिन्न आयाम क्या हैं इससे आपका परिचय होगा।

2.1 प्रस्तावना

साइबर अपराध - अपराध का एक नया प्रकार है, जो आधुनिक सूचना समाज में कम्प्यूटर, इन्टरने और संचार क्रान्ति की अन्य प्रौद्योगिकी साधनों के प्रयोक्ताओं द्वारा अपने व्यापारिक व व्यावसायिक क्रियाकलापों के सन्दर्भ में आपराधिक विधानों का उल्लंघन है।

अपराध का स्वरूप एवं विस्तार सामान्यतः किसी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं तकनीकी या प्रौद्योगिकी परिवेश की प्रकृति को प्रतिबिम्बित करता है। जब कभी परिवेश परिवर्तित होता है, अपराध की अन्तर्वस्तु एवं स्वरूप भी उस परिवर्तन को प्रतिबिम्बित करता है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की प्रगति से समाज की सामाजिक सांस्कृतिक संरचना में अनेक नये परिवर्तनों का जन्म होता है। ये परिवर्तन पूर्व-स्थापित नियन्त्रण व्यवस्था को विच्छिन्न कर बहुधा एक नवीन विचलनकारी एवं आपराधिक उप-संस्कृति को भी जन्म देते हैं। समकालीन आधुनिक समाज मूलरूप से इस नवीन आपराधिक उप-संस्कृति के मध्य संक्रमण से गुजर रहे हैं। फलतः आतंक, हिंसा, भ्रष्टाचार एवं अपराधी व्यवहार जन-जीवन का अंग बनते जा रहे हैं। इस प्रकार अपराध सामाजिक सांस्कृतिक समूह का दर्पण है। भारत में भी यह प्रघटना भूमण्डलीकरण या वैश्वीकरण तथा सूचना समाज के

सन्दर्भ में अभिव्यक्त होते दिखाई पड़ती है। कम्प्यूटर, इन्टरनेट और संचार के अन्य आधुनिकतम साधनों के माध्यम से दुनिया में राष्ट्र, समुदायों, संस्कृतियों और व्यक्तियों के बीच की दूरियों का कम से कमतर होते चले जाना भूमण्डलीकरण का संकेतक है। कम्प्यूटर का चमत्कार है इन्टरनेट जो आधुनिक संचार प्रणाली का सर्वाधिक प्रचलित और सभी के लिए सुलभ रूप है जिसके माध्यम से एक प्रकार से दुनियाँ वास्तव में मुट्ठी में लगने लगी है। यह एक ऐसा कम्प्यूटर नेटवर्क है जो दुनिया भर के नेटवर्कों से मिलकर बना है। इसमें सभी वाणिज्यिक, गैर-वाणिज्यिक और अकादमिक नेटवर्क शामिल हैं। इन्टरनेट के माध्यम से तथ्यों और सूचनाओं का आदान प्रदान और संचार की रफ्तार बेहद तेज हो गयी है। इन्टरनेट की सर्फिंग करके बहुत कम समय में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इन्टरनेट ने ई-मेल की सुविधा प्रदान करके परस्पर संचार की शैली को तकरीबन बदल दिया है।

बताया जाता है कि सन 1969 में अमेरिकी रक्षा अनुसंधान विभाग की कम्प्यूटरों के सर्वाधिक किफायती प्रयोग के लिए इन्टरनेट का आविष्कार किया था। लेकिन, इन्टरनेट का संक्षिप्त इतिहास लिखने वाले 'ब्रूस स्टार्लिंग' का दावा है कि शीत युद्ध के दौरान आणुविक हमले में सभी तरह की संचार प्रणालियाँ नष्ट हो जाने के अन्देश के कारण अमेरिकी युद्ध मन्त्रालय द्वारा रक्षा-संचार को बनाये रखने के लिए अनियमित प्रकार की संचार प्रणाली का अन्वेषण करने के उद्देश्य से पहली बार इन्टरनेट का आविष्कार हुआ था। कम से कम एक बात तो तय है कि इस संचार प्रणाली को सरकारी पूँजी से विकसित किया गया था। इसे निजी पूँजी के हाथ दिया जाना इस बात का सबसे ज्यादा उदाहरण है कि बाजार की ताकतें कैसे राज्य का अपने हित में इस्तेमाल करती है। पहले इन्टरनेट का प्रयोग विशवविद्यालयों और संस्थाओं में ही होता था। नब्बे के दशक की शुरूआत में वर्ल्ड वाइड वेब (डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू) का विकास हुआ जब पाँच क्षेत्रीय सुपर कम्प्यूटिंग सेटरों को मिलाकर बनाया गया। एन एस एफ नेट निजी संचार कम्पनियों को बेच दिया गया। (इससे पहले अरपानेट इन्टरनेट का आधार था जिसमें निजी कम्पनियों के लिए तकनीकी गुंजाइश नहीं थी। इसी गुंजाइश को बनाने के लिए अमेरिका के नेशनल साइन्स फाउन्डेशन ने एन एस एफ नेट का निर्माण किया था)।

सन 1994 तक वर्ल्ड वाइड वेब आम अनमानस में अपनी उपस्थिति और उपयोगिता दर्ज कर चुका था। इसके "मल्टीमीडिया" और "हाइपरटेक्सट्स" से सम्बन्धित पहलू यूरोपीय संचार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा विकसित ओ एस आई प्रोटोकोल स्टैक से बेहतर साबित हुए और जल्द ही यह तय हो गया कि इन्टरनेट अगली शताब्दी में भूमण्डलीय एकीकरण की सबसे प्रभावी प्रौद्योगिकी साबित होगी। अब जितने भी नये नेटवर्क दुनिया में बनाये जाते हैं, सभी इन्टरनेट में सम्मिलित हो जाते हैं और इसका दायरा उत्तरोत्तर व्यापक होता चला जाता है और इस तरह एक नेटवर्क सोसाइटी

जन्म लेती है।

'नेटवर्क सोसाइटी' को ही 'सूचना समाज' के नाम से जाना जाता है। कम्प्यूटरों के परस्पर सम्पर्क से बना जाल नेटवर्क कहलाता है। नेटवर्कों के बीच विचरण करने वाले इन्टरनेट के प्रयोक्ता नेटिजंस कहलाते हैं और नेटिजंस का समाज नेटवर्क सोसाइटी या सूचना समाज के नाम से जाना जाता हैं ।

नेटिजंस का समाज एक दूसरे शरीरी तौर पर मिलकर समाज की रचना करता है। पर नेटिजन्स एक-दूसरे से आमने-सामने मिलें यह जरूरी नहीं है। वे नेट पर मिलते हैं, बातें करते हैं, सूचनाओं का आदान-प्रदान करते हैं। विकसित प्रौद्योगिकी की मदद से अब वे एक-दूसरे को नेट पर देख भी सकते हैं। मित्रता कर सकते हैं। नेटिजन्स का पता धरती के किसी देश, किसी राष्ट्र, किसी संस्कृति, किसी मुहल्ले और किसी बस्ती की तरफ संकेत करता है। यानि धरती पर उसकी रिहाइश एक खास सीमाबद्धता की द्योतक होती है पर नेटिजन्स का इन्टरनेट पर एड्रेस इन सीमाओं से आजाद होता है। उस एड्रेस पर बिना देर किए पलक झपकते पहुँचा जा सकता है । इस तरह नेटिजन्स ठोस यथार्थ से वर्चुअल स्पेस में चले जाते हैं। एक ऐसे निराकार दायरे में जो कम्प्यूटर द्वारा बनाया गया त्रिआयामी दायरा होता है। ई-मेल, वेब सर्फिंग और फिर बुलेटिन बोर्डों ने मिलकर यह निराकार दायरा बनाया है। साइबर स्पेस में टँके छोटे-छोटे बुलेटिन बोर्डों पर नेटिजन्स अपनी चिन्ताएँ सरोकार और विचार चस्पा कर सकते हैं। इन बोर्डों पर ही उन्हें अपनी बातों का जवाब भी मिलता है और इस तरह बहस का एक निराकार दायरा बनता चला जाता है।

नेटवर्क भी एक प्रकार के सामूहिक वजूद की तरह सामने आया है जो एक साथ तरल भी है और अमीबा की तरह स्वतः अपना खाना बटोरते हुए विकसित होता चला जाता है। नेटवर्क बीसवीं सदी की उन निमिर्तियों जैसा ही है जिन्हें हम पार्टी राष्ट्र- राज्य या सर्वहारा के रूप में जानते रहते हैं। नेटवर्क खुद की पुनर्रचना करता चलता है। लगता है कि वह बिना किसी डिम्बाणु के ही पैदा हो गया है, लेकिन साथ में वह स्वयं का भक्षण भी कर सकता है अर्थात वह स्वयं पैदा हो सकता है और स्वयं ही खत्म हो सकता है।

निःसन्देह भारत पूँजीवादी विश्व अर्थव्यवस्था की परिधि पर पड़ा हुआ देश है, तथापि इसमें नेटवर्कों से जुड़े हुए लोगों की संख्या दुनिया में सबसे कम है। आबादी के एक छोटे से हिस्से के पास ही बिजली की सुविधा है। यद्यपि भारत में साइबर स्पेस तक आम जनता की पहुँच अभी बहुत सीमित है पर इन्टरनेट प्रयोक्ताओं की तीन तरह के साइबर समुदाय उभर रहे हैं। नेटवर्कों के संजाल में एक नयी नागरिकता का बीज पनप रहा है तीन तरह के जो साइबर समुदाय बन रहे हैं वे हैं -

1. राष्ट्रवादी राज्य द्वारा बनाया गया साइबर समुदाय।

2. बहुराष्ट्रीय अभिजनों द्वारा बनाया गया साइबर समुदाय, तथा

3. साइबर समुदाय बाजार और राज्य के बीच के गुंजाइशों में स्थित है जो नाना प्रकार के बुलेटिन बोर्डों और सामाजिक आन्दोलन के नेटवर्कों से मिलकर बना है।

परन्तु यह भी स्वीकार करना होगा कि नगरीय भारत में इन्टरनेट का प्रयोग करने वालों की संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है। कम्प्यूटरीकरण, नेटवर्किंग और बहुराष्ट्रीय टेलीविजन नेटवर्क पर नयी दृश्यावली का बोलबाला होने लगा है। यद्यपि सीमाओं की अस्पष्टता के कारण किसी साइबर समुदाय को किसी खास सामाजिक, सांस्कृतिक समुदाय के समकक्ष नहीं माना जा सकता है। समुदाय के निर्विवाद अस्तित्व का तर्क साइबर जगत में नहीं चलता।

सम्प्रति सरकारी और निजी नेटवर्कों ने मिलकर भारत में अगणित इन्टरनेट प्रयोक्ताओं को एक सूत्र में बाँध दिया है। वैसे तो पश्चिम की तुलना में भारत में अब भी इन्टरनेट प्रयोक्ताओं की संख्या बहुत कम है, लेकिन तीसरी दुनिया के किसी भी देश की तुलना में भारत में साइबर आकाश में यात्राएँ करने वालों की संख्या बहुत अधिक है। निकट भविष्य में इस संस्था के तेजी से कई गुना बढ़ जाने की सम्भावनाओं से इन्कार नहीं किया जा सकता। नेटवर्किंग का बाजार हर साल सौ फीसदी रफ्तार से बढ़ रहा है। भारत के इन्टरनेट प्रयोक्ताओं की संरचना की संक्षिप्त जानकारी से यह पता लग सकता है कि इन्टरनेट के साथ किस-किस तरह की सांस्कृतिक व्यवहार शैलियाँ जुड़ी हुई है। निजी नेटवर्कों के विस्तार के साथ ही घरों में इन्टरनेट कनेक्शन इस्तेमाल करने वालों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। दूर संचार नीति के उदारीकरण के बाद लगता है कि जल्द ही निजी नेटवर्क सरकारी नेटवर्कों को पीछे छोड़ देगा।

भूमण्डलीकरण यदि दुनिया को बदल रहा है तो इस उद्यम में उसका सबसे प्रभावी औजार है सूचना। पिछले दो दशकों में नेटवर्क सोसाइटी की रचना के माध्यम से एक नयी दुनिया का आविष्कार किया जा रहा है, जिसमें सब कुछ है पर किसी भी चीज की दैहिक उपस्थिति नहीं है। नेटवर्क एक अमीबा की तरह अपना भोजन खुद बटोरते हुए अपना विकास करता चलता है। मेनुअल कासल्स ने अपनी विस्तृत रचना "दि राइज ऑव नेटवर्क सोसाइटी दि पावर ऑव आइडेंटिटी" और "एण्ड ऑव मिलेनियम" में यही आख्यान प्रस्तुत किया है। कासल्स दावा करते हैं कि इक्कीसवीं सदी का नायकत्व नेटवर्क सोसाइटी करेंगी जिसे हम सूचना समाज कहते हैं। इस सन्दर्भ में कासल्स की रचना यूजेन मालरेज की कृति "दि सोल ऑव वाइट ऐट" की याद दिलाती है। मालरेज जन्तुओं के व्यवहार का अध्ययन करके उसे दिलचस्प औपन्यासिक शैली में व्यक्त करते थे। उनकी कृति पाठक को याद दिलाती है कि दीमकों के ठूह में हर दीमक की अलग-

अलग शख्सियत नहीं होती बल्कि पूरे ठूह को मिलाकर एक सम्पूर्ण शख्सियत बनती है।इसी तरह नेटवर्क भी एक नये किस्म के सामूहिक वजूद की तरह सामने आता हैं। लगता है कि जैसे नेटवर्क पर किसी का वर्चस्व नहीं है और उसे एक सामुदायिक सम्पत्ति समझा जा सकता है। पर इस नेटवर्क सोसाइटी में अपराधियों एवं महाअपराधियों की हैसियत क्या होगी जो सारी दुनिया को अपनी मुट्ठी में रखने की ताकत रखते हैं? इन अपराधियों की चौधराहट का क्या हल होगा जिन्होंने आज के राजनेताओं के साथ मृदुल सम्बन्ध बना रखा है? कहीं ऐसा न हो कि जिसे हम साइबर क्राइम कहते हैं कम्प्यूटर को अपना औजार बनाकर ये हजरत मानवतावाद के खिलाफ बगावत करके अनन्त आपराधिक व्यवहार की सम्भावनाओं के द्वार खोल दें और तानाशाह होकर राक्षसराज की स्थापना कर दें?

इस प्रकार हम देखते हैं कि साइबर अपराध आपराधिक व्यवहार का एक वृहत एवं अद्वितीय स्वरूप है जो आधुनिक नेटवर्क सोसाइटी या सूचना में कम्प्यूटर, इन्टरनेट और संचार के अन्य आधुनिकतम साधनों के तीव्र विस्तार के परिणामस्वरूप उदभूत हुआ है।

इस सन्दर्भ में साइबर अपराध का परीक्षण हम आपराधिक व्यवहार के उस स्वरूप के रूप में करने का प्रयास करेंगे जो सामाजिक एवं तकनीकी परिवर्तनों, विशेषकर इन्टरनेट प्रतिबिम्ब के रूप में हाल ही में उदभूत हुआ है।

साइबर अपराध को परिभाषित करने का विषय इन्टरनेट के आविष्कार के परिणामस्वरूप बहुत ही जटिल है। उदाहरणस्वरूप, एक समाज या देश के आदर्शमानक दूसरे समाज या देश के आदर्शमानकों से भिन्न होते हैं। इस प्रसंग में यह प्रश्न उठता है कि किस समाज या देश के आदर्शमानकों को वरेण्य समझा जाय। उस समाज या देश को जहाँ उपादान या सामग्री की उत्पत्ति होती है अथवा जहाँ तक अन्ततः यह पहुँचता है?

2.2 साइबर अपराध का अर्थ

साइबरस्पेस शब्द की रचना विज्ञान कथा साहित्य के लेखक 'विलियम गिब्सन' ने अपने उपन्यास 'न्यूरोमेन्सर' में की थी। यह शब्द वस्तुतः एक ऐसे समुदाय की ओर संकेत करता है जो कि एक दूसरे से परम्परात्मक रूप से परिभाषित, समुदाय की अपेक्षा, वृहत कम्प्यूटर नेटवर्क से जुड़ा हुआ है। इस अवधारणा से हमें इनसे सम्बन्धित अवधारणाओं, जैसे - साइबर-समुदाय, साइबर सम्प्रेषण इत्यादि के उदभव का ज्ञान होता है। यहाँ साइबर अपराध को उस आपराधिक व्यवहार के रूप में परिभाषित किया गया

है। जहाँ पर व्यक्तिगत कम्प्यूटर आवश्यक और अभिन्न घटक है।

साइबर अपराध आपराधिक व्यवहार का वह स्वरूप है जो कम्प्यूटर से पहले अस्तित्व में नहीं था। अपनी आरम्भिक अवस्था में यह इतना नहीं फैला था कि भय उत्पन्न करें। वास्तव में प्रारम्भिक अवस्था में इस क्षेत्र में विचलन से ऐसे नवाचार आये जिसके दूरगामी परिणाम थे। वस्तुतः शुरूआती दौर में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में इन्टरनेट का विकास कालेज विद्यार्थियों से जुड़ चुका था और वे एक-दूसरे से छिपे तौर पर विश्वविद्यालय के कम्प्यूटर का प्रयोग करके गपशप करते थे। यद्यपि इस अवस्था में इन कम्प्यूटरों और इन नेटवर्कों तक मुट्ठी भर शोध-छात्रों, वैज्ञानिकों और सरकारी कर्मचारियों की ही सीमित पहुँच थी और यह व्यवहार बहस का विषय नहीं बना लेकिन जैसे-जैसे कम्प्यूटर नेटवर्क अधिक सामान्य होता गया विचलित व्यवहार एवं आपराधिक व्यवहार और महत्वपूर्ण होते गये। प्रायः आज ज्यादातर विकसित देशों में कम्प्यूटर बहुत से घरो में भी पाया जाता है। यहाँ तक कि भारत में भी, इनके मूल्यों में गिरावट से ये सामान्य होते जा रहे हैं। उसी समान वृद्धि को इन्टरनेट प्रयोगकर्ता की संख्या में भी देखी जा रही है (अर्थात जैसे-जैसे कम्प्यूटर सस्ते होते जा रहे हैं, वैसे-वैसे उपभोक्ताओं की संख्या बढ़ती जा रही है)। यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि इन्टरनेट प्रयोगकर्ताओं की वृद्धि दर संसार के अन्य देशों की अपेक्षा भारत में तीव्र है और लोगों की ज्यों-ज्यों कम्प्यूटर और इन्टरनेट तक पहुँच सामान्य होती जाएगी, साइबर-अपराध भी उसी अनुपात में बढ़ता जाएगा।

यह ध्यान देने योग्य है कि कई प्रकार के विचलित एवं आपराधिक व्यवहार में पोर्नोग्राफी एवं संवेदनमन्दक या ड्रग इत्यादि वस्तुओं का उपभोग किया जाता है। लेकिन साइबर अपराध की ये विशिष्टताएं वे ढंग हैं जिसमें कम्प्यूटर इस व्यवहार के आवश्यक व पूर्ण घटक को बनाते हैं। बिना कम्प्यूटर के या तो इस प्रकार के आपराधिक व्यवहार का अस्तित्व ही नहीं था, जैसे- हैंकिंग या दूसरे प्रकार के व्यवहारों में इनकी अभिव्यक्ति होती थी, जैसे - साइबर पोर्नोग्राफी।

साइबर अपराध को परिभाषित करते हुए हम यह कह सकते हैं कि साइबर अपराध, अपराध का एक नवीन प्रकार है जो आधुनिक सूचना समाज (नेटवर्क सोसाइटी) में कम्प्यूटर, इन्टरनेट और संचार क्रान्ति की अन्य प्रौद्योगिकी साधनों के प्रयोकताओं द्वारा अपने व्यापारिक व व्यावसायिक क्रियाकलापों के सन्दर्भ में आपराधिक विधानों का उल्लंघन हैं। अन्य शब्दों में इसके अन्तर्गत जान-बूझकर किये गये छल-कपट, धोखेबाजी से सम्बन्धित वे सभी समाज विरोधी कृत्य समाविष्ट हैं जो वैधानिक रूप से निषिद्ध हैं तथा जिसके लिए दण्ड का प्राविधान है।

2.3 साइबर अपराध की मुख्य विशेषताएँ

उपर्युक्त परिभाषा के आलोक में साइबर अपराध की प्रमुख विशेषताओं को हम अधोलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं -

1. साइबर अपराध, अपराध का एक अधुनातन नवीन प्रकार है।
2. यह अपराध आधुनिक सूचन समाज या नेटवर्क सोसाइटी में इलेक्ट्रानिक नेटवर्कों से जुड़ा हुआ है।
3. यह अपराध कम्प्यूटर, इन्टरनेट और संचार क्रान्ति की अन्य प्रौद्योगिकी साधनों के प्रयोक्ताओं द्वारा सम्पादित किया जाता है।
4. इस अपराध की आवृत्ति व्यापारिक व व्यावसायिक क्षेत्रों में अधिक होती है। यह अपराधिता वित्तीय विवरण को गलत बनाने, व्यापारिक घूसखोरी, स्टाक एक्सचेन्ज में बदलाव, जनता को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रलोभन, झूठे विज्ञापन देना, गलत प्रमाण-पत्र देना, झूठा बिल देना, धन का गबन एवं संचित निधि का दुरूपयोग, करों की चोरी, बैंकों के साथ धोखाधड़ी इत्यादि तथा अन्य बहुत से रूपों में व्यापारिक क्षेत्र में व्यक्त होती है।
5. यह अपराध वैधानिक उल्लंघन तो है ही इसके साथ ही साथ यह सामाजिक निष्ठा या विश्वास को भंग करने के लिए उत्तरदायी है।
6. यह अपराध परम्परागत अपराधों से पूर्णतया भिन्न है।

कम्प्यूटर में सम्मिलित उल्लंघनों का विस्तार

कम्प्यूटर में सम्मिलित उल्लंघनों के विस्तार सातत्यक में मूलतः तीन आधारभूत बिन्दु हैं -

1. इस सातत्यक के एक छोर पर वे क्रियाकलाप आते हैं जो स्पष्ट रूप से गैर कानूनी परिभाषित किये गये हैं और कानून के द्वारा प्रतिबन्धित हैं। उदाहरण के तौर पर कम्प्यूटर के अवयवों की अवैध तस्करी व व्यापार करना स्पष्ट रूप से गैर-कानूनी और कानूनतः दण्डनीय है। इसी प्रकृति के अपराधों का दूसरा उदाहरण वह कम्प्यूटर अपराध है जिसमें विस्तृत तौर पर बैंकों के कम्प्यूटर नेटवर्क में सेंध लगाया जाता है और पैसों को एक एकाउंट से दूसरे एकाउंट में स्थानान्तरित कर दिया जाता है।
2. इस क्षेत्र के मध्य में क्रियाकलाप हैं जिनको कानून ने विस्तार से गैर-कानूनी परिभाषित किया है लेकिन इस प्रकार की क्रियाविधि का मापक्रम इतना निम्न है कि कानून इस पर कोई कार्यवाही नहीं कर सकता। इस प्रकार के अपराध का एक बहुत बृहत

स्वरूप कम्प्यूटर पाइरेसी अर्थात कम्प्यूटर डकैती या कम्प्यूटर दस्युता या कम्प्यूटर की साहित्यिक चोरी है।

3. इस सांतत्यक के दूसरे छोर पर वे क्रियाकलाप हैं जिनको कानून के द्वारा विशेष रूप से अवैध नहीं परिभाषित किया गया है, किन्तु ऐसे कार्यकलापों को सामान्य सर्वसम्मति से अवांछनीय समझा जाता है।

उपर्युक्त वर्णित तीनों प्रकार के व्यवहारों में हम तीसरे प्रकार के व्यवहार पर प्रकाश डालेंगे। इसके अन्तर्गत वे क्रियाकलाप आते हैं जिनको विशेष रूप से अवैध नहीं परिभाषित किया गया है, किन्तु इन क्रियाकलापों को अवांछनीय समझा जाता है।

यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट है कि यद्यपि हैकिंग अवैध नहीं है, किन्तु इस समाज द्वारा अवांछनीय और अनुचित माना जाता है फिर भी या तो कानून के विशेष रूप से यहाँ तक न पहुँच पाने के कारण (पर्याप्त न होने के कारण) या इसके प्रत्यक्ष (प्रकट) व बहुत विरल न होने के कारण अपराधी समाज विरोधी क्रिया की कानूनी परिभाषा की परिधि में नहीं आ पाते हैं।

बहुत से मामलों में जब इस प्रकार के कार्य काफी बढ़ जाते हैं तो इस प्रकार की क्रियाओं को कानून के अन्तर्गत लाने के लिए कानून की परिभाषा में सुधार करना पड़ता है। अधिकांश पाश्चात्य देशों को इस प्रकार के आपराधिक कार्यों के लिए कानून बनाने पड़े हैं। बहुत से कम्प्यूटर अपराध के आरम्भिक मामलों में (उदाहरण के रूप में हैकिंग या अवैधानिक रूप से दूसरे के कम्प्यूटर में सेंध लगाना) ऐसा कार्य यद्यपि कि अवांछनीय था लेकिन एक बार जब 'हैकर' का बोध हो जाता था, तो भी ऐसा कोई कानून नहीं था जो "हैकर" पर अभियोग लगा सकें। इस प्रकार अधिकांश मामलों में हैकर्स को वास्तविक अपराध के लिए अपराधी नहीं ठहराया जा सकता था, बल्कि उनको बिना भुगतान किये हुए पंच्ड कार्ड का विद्युत व टेलीफोन लाइन का उपभोग करने के लिए अपराधी ठहराया जाता था। अधिकांश मामलों में दोषी को सजा देने की प्रक्रिय इतनी थकाऊ या उबाऊ थी कि पीड़ित स्वयं इस क्रिया पर ध्यान नहीं देता था।

2.4 साइबर अपराध के विभिन्न प्रकार

साइबर अपराध के अन्तर्गत साइबर पोर्नोग्राफी या साइबर पॉर्न, क्रेकर्स, फ्रेक्स, साइफरपंक्स, रैवर्स, हैकर्स इत्यादि प्रकार के क्रियाकलाप या व्यक्ति आते हैं। साधारणतः भारत में प्रचलित ऐसे अपराधों के अन्तर्गत साइबरपॉर्न, क्रेकिंग और हैंकिंग जैसी श्रेणियाँ आती हैं। इन क्रियाकलापों का एक संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

साइबरपार्न

यह सभी जानते हैं कि प्रौद्योगिकीय उन्नति का आरम्भिक उपयोग कामुक या विषयासक्त उद्देश्यों के लिए किया गया है। यह बात दृश्य प्रौद्योगिकी, कम्प्यूटर मल्टीमीडिया होलोग्रैफी इत्यादि के सन्दर्भ में सत्य पायी गयी है। कम्प्यूटर पोर्नोग्राफी एक विस्तृत व पूर्ण सुस्थापित व्यापार क्षेत्र है। यहाँ तक कि भारत में भी बिल्कुल खुले तौर पर "Software for mature Users" व Adult Software जैसी कम्प्यूटर पत्रिकाओं व सूचीपत्रों का अभी तक विज्ञापन किया जाता चूँकि इसके अधिकतर प्रयोगकर्ता पुरूष है। इसलिए पोर्नोग्राफी पुरूष प्रधान हैं। फिर भी पाश्चात्य देशों में कम्प्यूटर का प्रयोग अधिक से अधिक महिलाओं द्वारा किया जाने लगा है। इसलिए वहाँ पर महिला प्रधान पोर्नोग्रैफी भी अप्रचलित (अज्ञात) नहीं है।

साइबरपॉर्न के निम्नलिखित स्वरूप पाये जाते हैं -

1. प्रिंट मीडिया के चित्रों व अचल प्रतिरूपों को इलेक्ट्रानिक पुस्तक के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है। इस प्रकार से फैली हुई प्रसिद्ध पोर्नोग्राफी पत्रिकाएँ जैसे 'प्लेब्यॉय' 'पेन्टहाउस' इत्यादि ग्रन्थाकार रूप में परिवर्तित हो जाता है जिनको कि कम्प्यूटर स्क्रीन पर्दे पर देखा जा सकता है। पुराने चित्रों में से कुछ बिल्कुल अपरिष्कृत तथा काँटेदार थे। यद्यपि हाल ही में प्रदर्शित उच्च श्रेणी की प्रौद्योगिकी विकसित हुई है और अब इसमें 16.7 मिलियन रंग हैं।

2. एनीमेशन्स (सजल चित्र या सजीव चित्र) व फिल्मों को भी कम्प्यूटर पर प्रदर्शित किया जा सकता है। इन सजीव चित्रों में कुछ आदिम एकरंगा श्याम और श्वेत ध्वनिरहित चित्रों, जिन्हें GLS कहा जाता है से लेकर कृत्रिम जिनमें 16.7 मिलियन रंग हैं ठोस ध्वनि व चमकदार "एनीमेशन्स" (सचल चित्र या सजीव चित्र) अन्तर्निहित हैं।

3. पोर्नोग्रैफिक कम्प्यूटर खेल - पोर्नोग्रैफिक दृश्यों को जीतने के लिए खेल दिखाया जाता है। जीत के प्रत्येक स्तर पर खिलाड़ियों को अधिकाधिक स्पष्ट तस्वीरों से 'पुरस्कृत' किया जाता है।

4. अन्तर्क्रियात्मक कम्प्यूटर फिल्में नवीनतम प्रौद्योगिकी की उपज हैं और कम्प्यूटर प्रयोक्ता फिल्मों के लिए अपनी कथावस्तु की रचना कर सकता है, अपने चरित्रों (पात्रों) का चुनाव कर सकता है और अपने पात्रों को इच्छानुसार गुणों से विभूषित कर सकता है तथा उनका उद्देश्य आदि चुन सकता है।

पोर्नोग्रैफिक कहानियों व साहित्य की श्रेणी का आश्चर्यजनक विकास देखा गया है। इन कहानियों की परिधि में स्वच्छ रचनात्मक कहानी से लेकर अशिष्ट या अपरिष्कृत कहानियों को अन्तर्विष्ट किया जा सकता है।

साइबरपॉर्न का मुख्य स्त्रोत इन्टरनेट है। इन्टरनेट से पहले इस प्रकार की पोर्नोग्राफी मित्रों के बीच पाई जाती थीं और कभी-कभी 'साफ्टवेयर ' बेचने वाले के पास उपलब्ध होती थी। इन्टरनेट की प्रगति के साथ जब डाउनलोडिग आसान हो गया। इस प्रकार के कम्प्यूटर वेण्डर (बेंचने वालों) का अस्तित्व समाप्त हो गया। यहाँ एक उल्लेखनीय विषय है कि इन्टरनेट पर पोर्नोग्रैफी की पहुँच आकस्मिक नहीं होती। पोर्नोग्रैफिक उत्पादन के प्रत्येक स्थल पर साफ व स्पष्ट चेतावनी व सावधानी की सूचना होती है। इस प्रकार की चेतावनीपूर्ण सूचना पढ़ने के बाद ही कोई आगे बढ़ सकता है। इसके अंतिरिक्त ऐसे साफ्टवेयर में कुछ विशिष्ट शब्द होते हैं जिनकी सहायता से माता-पिता ऐसे स्थानों को अवरुद्ध कर सकते हैं। अक्सर पोर्नोग्रैफिक स्थान स्वयं ही ऐसे साफ्टवेयर प्राप्त करने के लिए जुड़ जाते हैं।

इन्टरनेट व पोर्नोग्राफी से सम्बन्धित विचारणीय विषय इस प्रकार हैं -

1. इन्टरनेट अज्ञातनाम की अवस्था का प्रस्ताव करता है। पोर्नोग्रैफिक उपादानों को प्राप्त करने के रूढ़िगत स्वरूपों से भिन्न, इन्टरनेट से पोर्नोग्रैफी को घर छोड़े बिना और स्त्रोत द्वारा शारीरिक रूप से परिचय प्राप्त किये बिना किया जा सकता है।

2. द्वितीयतः रूढ़िगत पोर्नोग्रैफी के साथ सामान्य रूप से उपलब्ध होने वाले उपादानों के विस्तार एवं प्रकृति पर कुछ प्रतिबन्ध हैं। जिन स्थानों से ये पाये जा सकते थे वहाँ भी कुछ प्रतिबन्ध थे। इन्टरनेट के माध्यम से कोई भी आश्चर्यजनक रूप से इन उपादानों की सीमा में पहुँच सकता है। निकटतम देश से इन उपादानों को प्राप्त करना उतना ही आसान है जितना की संसार के दूसरे छोर से इन्टरनेट पर कुछ ऐसे स्थल होते हैं जो दूसरे पोर्नोग्रैफिक स्थलों के लिए अभिसूचक का कार्य करते है।

3. तृतीयतः, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि एक समाज के आदर्श प्रतिमान दूसरे समाज के आदर्श प्रतिमान से भिन्न हो सकते हैं। पोर्नोग्रैफी के सम्बन्ध में अधिकतर यूरोपीय देशों के कानून भारत की अपेक्षा बहुत ढीले या नरम होते हैं। इन्टरनेट ने एक व्यक्ति के लिए एक देश से दूसरे देश के पोर्नोग्रैफिक उत्पादों तक पहुँचने के मार्ग को सम्भव कर दिया है।

क्रैकिंग

क्रैकिंग और हैकिंग एक दूसरे से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है।, क्रैकर्स और हैकर्स में भेद अस्पष्ट है। एक व्यक्ति जो साइबर अपराध के किसी प्रकार में लिप्त है वह दूसरे में भी लिप्त हो सकता है। फिर भी, विश्लेषणात्मक उद्देश्य के लिए हम दोनों में अन्तर बनाये रखते हैं।

क्रैकर्स व्यावसायिक साफ्टवेयर में उनके कोड बदलकर सेंध लगाते हैं। कॉपीराइट

क्रंचिंग (प्रतिलिप्याधिकार कुचलन) क्रैकिंग का मुख्य स्वरूप है। कुछ व्यावसायिक कार्यक्रमों में विशेषकर पुराने में, अवैध प्रतिलिपि बनाये जाने के भय से, उन्हें सुरक्षित बनाये रखने के लिए न तोड़े जा सकने वाले कोड का प्रयोग किया जाता है। फिर भी बहुत से प्रयोगकर्ता (क्रैकर्स) इस कोड को तोड़ने योग्य होते हैं और स्वतन्त्रता पूर्वक इन कार्यक्रमों की प्रतिलिपि बना लेते हैं। वस्तुतः कम्पनियाँ इस प्रकार की सुरक्षा का प्रयास नहीं करतीं क्योंकि इससे अवैध रूप से कार्यक्रमों का उपयोग करने वाले लोगों की अपेक्षा वेध लोगों (वैध उपभोक्ताओं) को अधिक असुविधा होगी।

इस प्रकार क्रैंकिंग में निम्नलिखित क्रियाकलाप आते हैं -

1. प्रतिलिप्याधिकार प्रतिबन्ध को तोड़कर किसी कार्यक्रम में मामूली परिवर्तन करना।

2. बहुत से कार्यक्रमों के लिए प्रयोक्ता को कार्यक्रम को अपने कम्प्यूटर पर अधिष्ठापित करने के पहले पंजीकृत (वैध रूप से कार्यक्रम को खरीदना और पंजीकरण संख्या प्राप्त करना) कराना पड़ता है। अधिष्ठापित कार्यक्रमों की क्रैंकिंग करके उपभोक्ता बिना पंजीकरण संख्या के कार्यक्रमों को अधिष्ठापित कर लेता है।

3. कुछ कार्यक्रम पंजीकरण से पहले सीमित समय के लिए कार्यक्रमों के अधिष्ठापन की अनुमति देते हैं। ऐसा कार्यक्रमों को परखने के लिए किया जाता है। अपंजीकृत कार्यक्रमों की अक्सर एक नैग-स्क्रीन होती है, जिसमें एक प्रमुख संदेश प्रयोक्ता को पंजीकरण के लिए प्रेरित करती है या इसके कुछ गुण इन कार्यक्रमों को कुछ समय के लिए अनुपयुक्त कर देते हैं। क्रैकिंग खुले हुए कार्यक्रमों की अंकों/शब्दों की शृंखला को खोजती है व कार्यक्रमों के पंजीकरण के चिन्ह तलाशती है। एक बार यह ज्ञात हो जाने पर "नैग-स्क्रीन" हट जाती है और कार्यक्रम पूर्ण पंजीकृत कार्यक्रम की तरह से कार्य करने लगता है।

फ्रीक्स

फ्रीक्स वे व्यक्ति हैं जो टेलीफोन व्यवस्था में अपर्याप्तता से लाभ उठाने के लिए पर्याप्त समय, प्रयास और यहाँ तक कि धन को भी लगा देते हैं। यह 1970 के दशक में पश्गिचम में व 1980 के दशक में भारत में बहुत आम बात थी। फ्रीकिंग विशेष रूप से विद्यार्थियों में अधिक सामान्य है, विशेषकर उन विद्यार्थियों को जिन्हें फोन पर एक दूसरे से बात-चीत करने की अधिक आवश्यकता पड़ती है, लेकिन इस सुविधा के लिए भुगतान के प्रति वे अनिच्छुक रहते हैं। टेलीफोन के जाली (फर्जी) बिल के लिए कृत्रिम संयोजनों को प्रयोग में लाया जाता है। ऐसे संयोजनों के लिए योजनायें स्वयं इन्टरनेट पर भी पायी जाती है।

इस प्रकार के विचलन व अपराध के नवीनतम रूप को दिल्ली जैसे भारतीय नगरों में कार्डलेस टेलीफोन के साथ देखा जा सकता है। 'कार्डलेस' शब्द इस तथ्य को बताता है जिसमें हैंडपीस (हाथ में लिया जाने वाला यन्त्र) बेसिक फोन के किसी तार से नहीं जुड़ा होता बल्कि यह अपने संकेतों को एक विशेष प्रायिकता से भेजता रहता है। जो बात यहाँ पर ध्यान देने योग्य है वह यह है कि यदि हैंडपीस को वास्तविक बेसिक फोन से हटा लिया जाता है और इसको संचालित किया जाता है तो कुछ निश्चित परिस्थितियों में यह दूसरे बेसिक फोन पर अपने संकेतों को भेजेगा। इसका तात्पर्य यह है कि यदि कोई व्यक्ति हैंडपीस के साथ अपने स्थानीय क्षेत्र में घूमने जाता है और इसका उपयोग करता है तो वह दूसरे बेसिक फोन को बन्द कर देता है। इस प्रकार हैंडपीस का टेलीफोन बिल बेसिक फोन के बिल को प्रदर्शित करता है और उपभोक्तादूसरे व्यक्ति के बेसिक फोन के खर्च पर बात करता है।

साइफरपंक्स

साइफरपंक्स वे व्यक्ति है जो यह महसूस करते हैं कि वे कम्प्यूटर सिस्टम की दृष्टि को रोककर ही अपने सन्देशों को संकेतबद्ध कर सकते हैं। एतदर्थ वे ऐसे 'गोपनीय क्षेत्र' की रचना करते हैं जिसमें सेंध नहीं लगाया जा सकता। इसका तात्पर्य है कि संदिग्ध संदेशों को वैध रूप से सार्वजनिक संचार माध्यमों जैसे टेलीफोन लाइनों से भेजा जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका ने हाल ही मे एक ऐसा कानून बनाया है कि जो उस सम्प्रेषण को अवैध मानता है जिसका सरकार द्वारा अर्थ निकालना सम्भव नहीं है।

हैकिंग

विस्तार की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण साइबर अपराध का रूप है। सामयिक प्रौद्योगिकी में हैकर को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो कम्प्यूटर से पीड़ित है। एक हैकर कम्प्यूटर नेटवर्क में प्रवेश पा लेता है या वह प्रतिलिप्याधिकार के प्रतिबन्धों को अपनी चालाकी से मात कर देता है। फिर भी, हम स्पष्टता के लिए पुरानी पारिभाषिक शब्दावली को स्थापित करेंगे। हैकर्स कम्प्यूटर से पीड़ित कंम्प्यूटर व्यवसायी है जो अपने गहन और स्वच्छन्द या रूढ़िमुक्त ज्ञान का प्रयोग बहुधा अवैध लाभ प्राप्त करने के लिए (यह अभी भी भारत सहित बहुत से देशों में अवैध नहीं है।) दूसरे व्यक्ति या संगठन के कम्प्यूटर सिस्टम में प्रवेश करता है। इस पद का प्रयोग वैध गणनाओं का अनाधिकृत रूप से प्रयोग बिना इसके मालिक की जानकारी के किया जाता है। यहाँ तक कि एकाउन्ट के सीधे हैकिंग करके नहीं प्राप्त किया जाता बल्कि किसी दूसरे हैकर के प्रयोगों द्वारा प्राप्त किया जाता है।

जब कभी भी कम्प्यूटर उपभोक्ता एक कम्प्यूटर लाइन का उपयोग करके मुख्य कम्प्यूटर से जुड़ता है तो उसे अपने नाम को (उपभोक्ता की आई0डी0 या Login) और

गुप्त पासवर्ड दर्ज कराने की जरूरत होती है। मुख्य कम्प्यूटर के लिए चाहे उपभोक्ता वैध हो या अवैध, नाम और पासवर्ड वैध होना आवश्यक है। हैकिंग करने वाला अवैध व्यक्ति अपना नाम व पासवर्ड वैध व्यक्ति के सिस्टम में दर्ज कराये हुए होता है। हैकिंग की प्रक्रिया इन्टरनेट सेवाप्रदाता के नम्बर को डायल करके होती है। ऐसा करने से वे उन प्रतिबन्धों को तोड़ते हैं जो सामान्य उपभोक्ता के लिए लागू की जाती है और उन गुप्त फाइलों का वे लाभ लेते हैं जिसमें वैध उपभोक्ता के नाम व पासवर्ड होते हैं। इन फाइलों के गोपनीय अर्थों को जालसाजी करने वाले साफ्टवेयर के द्वारा जान लिया जाता है और प्रयोक्ताओं तथा उनके पासवर्ड की एक सूची बना ली जाती है। नाम एवं पासवर्ड के प्रत्येक समूह को 'एकाउन्ट' कहा जाता है। अधिकतर मामलों में इन एकाउन्ट्स को हैकर्स आपस में बाँट लेते हैं। कोई एक व्यक्ति एकाउन्ट को हैक करता है और उसको अपने मित्रों को देता है। इस प्रकार के हैकर्स में आपस में एक सामान्य प्रश्न पूछा जाता है, "क्या कोई नया एकाउन्ट मिला?"

हैकिंग "एकाउन्ट" को पाने के लिए नेटवर्क्स की सुरक्षा उपायों को अपनी चालाकी से मात कर देने तथा सिस्टम तक अपनाधिकृत रूप से पहुँचने के लिए वैध उपभोक्ता के नाम/पासवर्ड को दर्ज कराने के इन दोनों कार्यों को सूचित करता है।

हैकिंग 1995 तक भारत में अज्ञात था, चूँकि टेलीफोन लाइन पर आधारित नेटवर्क का प्रयोग आम नहीं था और इनसे जुड़ने के लिए मूल्य (Modem) की जरूरत होती थी जो काफी खर्चीली थी (एक सरल माडेम का मूल्य तब रू0 7,500 था)। एक लम्बे समय तक इन्टरनेट की सुविधा अनुसंधान संस्थानों तथा सरकार तक के लिए प्रतिबन्धित थी। इसका तात्पर्य है कि केवल अर्नेट ARNET (शिक्षा व अनुसंधान नेटवर्क का उपयोग अनुसंधान संस्थाओं द्वारा) और निकनेट (NICNET) (सरकार द्वारा प्रयुक्त) इन्टरनेट सुविधा उपलब्ध करवाते थे। इस काल के दौरान हैंकिंग बहुत सीमित था और सुरक्षा उपाय भी ढीले थे। यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त उल्लिखित दो नेटवर्कों में से एक नेटवर्क पर हैकर्स सूचना पाने के लिए चोरी से कम्प्यूटर प्रशासन की भूमिका की अदायगी करते थे और व्यावहारिक रूप में सिस्टम को चलाते थे। वास्तव में वे नये एकाउन्ट्स को बनाते थे और तब उनको अन्य हैकर्स में वितरित कराते थे।

सन 1995 में सरकार ने आम नागरिकों में इन्टरनेट सुविधा उपलब्ध करवाना आरम्भ कर दिया। तभी से हैंकिंग में अपार वृद्धि हुई। इन्टरनेट की सुविधा उपलब्ध करवाने के आरम्भिक दिनों में, सरकार सुरक्षा के प्रति बहुत सजग नहीं थी। एक ही समय में एक ही एकाउन्ट में नाम दर्ज कराने के लिए दर्जनों हैकर्स पहुँच जाते थे और वैध उपयोग के लिए प्रदान किये गये सुविधा का घण्टों उपयोग करते थे। एक बार में एक व्यक्ति को हैकर्स के द्वारा इस प्रकार के चार से भी अधिक एकाउन्ट्स दिये जाते थे। यहाँ

तक कि कोई नौसिखिया (Novice) उपभोक्ता भी इसमें सेंध लगा सकता था और कोई भी एकाउन्ट स्वयं प्राप्त कर लेता था। परिणामतः सरकार सुरक्षा की दृष्टि से सचेत हो गयी और तब उसने इन्टरनेट के उपयोग की प्रक्रिया को सख्त कर दिया और अब केवल समर्पित हैकर्स के एक छोटे समूह के लिए हैकिंग प्रतिबन्धित कर दी गयी है।

बहुधा हैकिंग से हैकर को कोई मौद्रिक लाभ नहीं होता है यह सेंध लगाने की और 'पहेली को हल करने की' केवल चुनौती है। जो हैकर्स के मुख्य अभिप्रेरणा को अभिप्रेरित करती है। सन 1997 में भारत की एकमात्र इन्टरनेट की सेवा प्रदाता बीएसएनएल को "हैक" कर लिया गया।

प्रायः (यह हैकर परम्परा में अलिखित कानून है और हैकर्स द्वारा लिखित कुछ पुस्तकों में कहा गया है) प्रविष्ट सिस्टम को छतिग्रत करने के लिए या रूपये को अपने एकाउन्ट में अन्तरित करने या लिखवाने के लिए नहीं होता है, बल्कि यह सही रूप में सिस्टम को प्रदर्शित करने वाली चुनौती के लिए होता है कि इसके पास समर्पित और सूचित आक्रमण के विरूद्ध कोई बचाव नहीं है। हैकिंग की तर्कणापरक व्याख्या के लिए एक अन्य तर्क "सूचना की स्वतन्त्रता के तर्क" का प्रयोग किया जाता है। यह कहा जाता है कि सूचना स्वतंत्रता पूर्वक उपलब्ध होनी चाहिए । इन्टरनेट सुविधा के लिए उपभोक्ताओं पर कर लगाकर सेवा प्रदाता उपभोक्ताओं का शोषण कर रहे हैं। इन परिस्थितियों में, हैकिंग को सामाजिक विरोध का एक कार्य समझा जाता है। हैकर भी अपने हैकर साथियों के लिए समान नैतिक आवश्यकताओं की रचना करता है। "कोई भी अन्तःक्षेत्रीय सदस्य (गुप्त हैकर समूह) सूचना कोड कभी भी न हटायेगा (मिटायेगा) या छति पहुँचायेगा जो कि वैध उपभोक्ता के सिस्टम से सम्बन्धित है और किसी भी तरह से वह सदस्य स्वयं आसानी से ठीक नहीं कर सकता है। कोई भी सदस्य दूसरे हैकर्स के नाम या फोन नम्बर को किसी कम्प्यूटर सिस्टम पर नहीं छोड़ेगा। वह किसी सिस्टम पर अपने जोखिम पर अपना नाम या फोन नम्बर छोड़ सकता है। सभी सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने एकाउन्ट्स सूचना को प्राप्त करें किन्तु अन्य सदस्यों द्वारा गृहीत सूचना का प्रयोग किसी दूसरे रूप में न करें।

आपराधिक सूचना

साइबर अपराध का अपेक्षाकृत कम प्रचलित रूप उस सूचना को प्राप्त करना है जो प्रतिबन्धित है या जिसका अभिप्राय अवैध उद्देश्यों के लिए है। इन्टरनेट आलमारी में बढ़ते हुए मैरूजुआना (एक प्रकार का धूम्रपान किये जाने वाला नशीला पदार्थ) के विस्तृत निर्देशों का आसानी से उपलब्ध हो जाने वाले पदार्थों से संवेदनमन्दक ड्रग्स का काढ़ा बनाने के नुस्खे, रोजमर्रे के पदार्थों से विस्फोटकों का निर्माण, मुफ्त टेलीफोन काल करने के यन्त्रों (उपायों) के निर्माण तथा लाक्स को ढूँढने का प्रस्ताव करता है।

अधिकांश देशों में इस प्रकार की सूचना का संग्रह गैर-कानूनी है। फिर भी कुछ देशों में इस प्रकार की सूचना के लिए उदार कानून हैं। जिन देशों में इस प्रकार की सूचना प्राप्त करने के प्रतिबन्ध हैं, कम्प्यूटर उपभोक्ता इसको उन देशों से आसानी से प्राप्त कर लेते हैं जहाँ पर यह प्रतिबन्धित नहीं हैं।

आतंकवादी समूहों के पास इन्टरनेट पर साइट्स होते हैं जो उनके विश्वासों का प्रचार करते हैं। खतरनाक धार्मिक समूह भी उनके विश्वासों का प्रचार करते हैं। यह हाल ही के आत्महत्या धार्मिक-समूह के "स्वर्ग का द्वार" जिसका इन्टरनेट पर व्यावसायिक रूप से निर्मित साइट है के मामले में दहलाने वाला प्रमाण है।

2.5 भारत में साइबर अपराध

अन्य देशों की भाँति भारत में भी इन्टरनेट के प्रयोग के प्रसार एवं विस्तार के कारण साइबर अपराध का एक नवीन वर्ग है। सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 एवं भारतीय दण्ड संहिता के अनुसार साइबर अपराध एक दण्डनीय अपराध है। संकलित सांख्यिकी के अन्तर्गत साइबर अपराध को निम्नलिखित दो शीर्षकों के आधार पर दर्शाया गया है-

(1) सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 के अन्तर्गत पंजीकृत अपराध

(2) भारतीय दण्ड संहिता (कम्प्यूटर के प्रयोग के सन्दर्भ में) के अन्तर्गत अपराध

वर्ष 2003 के दौरान सूचना प्रौद्योगिकी (आई.टी.) के अन्तर्गत 60 मामले पंजीकृत किये गये थे, जबकि 2002में 70 मामले पंजीकृत किये गये थे। इस प्रकार वर्ष 2002 की तुलना में वर्ष 2003 में 14.3 प्रतिशत साइबर आपराधिक घटनाएँ कम हुई। कुल 60 पंजीकृत मामलों में 23 प्रतिशत मामले अर्थात कुल 60 मामलों में 14 मामले गुजरात राज्य से प्रतिवेदित थे। इसके उपरान्त महाराष्ट्र से 12 मामले तथा तमिलनाडु से 10 मामले प्रतिवेदित किये गये थे।

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 के अन्तर्गत कुल 60 पंजीकृत मामलों में लगभग 33.0 प्रतिशत अर्थात 20 मामले अश्लीलता प्रकाशन या स्वयं में संचरण से सम्बन्धित थे जिसे सामान्यतः साइबर प्रोर्नोग्रैफी के नाम से जाना जाता है। ऐसे अपराधों के सन्दर्भ में वर्ष 2003 ई. में 17व्यक्ति गिरफ्तार किये गये थे। वर्ष 2003 में कम्प्यूटर सिस्टम के हैकिंग के कुल मामले 21 दर्ज थे जिसमें 18 व्यक्ति गिरफ्तार किये गये थे।

भारतीय दण्ड संहिता (आई.पी.सी.) के अन्तर्गत पंजीकृत साइबर अपराधों की घटनाएँ

भारत में साइबर अपराध के अन्तर्गत भारतीय दण्ड संहिता (आई.पी.सी.) की विविध धाराओं के तहत मामले पंजीकृत किये गये।

सन 2003 के दौरान भारतीय दण्ड संहिता (आई.पी.सी.) के अन्तर्गत 411 मामले दर्ज किये गये जबकि सन 2002 में ऐसे दर्ज किये गये मामलों की संख्या 738 थी। इस प्रकार 2002 की अपेक्षा 2003 में 44.0 प्रतिशत का ह्रास हुआ। आन्ध्र प्रदेश में इन 411 मामलों में आधे से कुछ अधिक अर्थात 218 मामले या 53.0 प्रतिशत के लगभग दर्ज किये गये थे । भारतीय दण्ड संहिता (आई.पी.सी.) के अन्तर्गत 269 मामले दर्ज किये गये थे, जबकि जालसाजी के सन्दर्भ 89 मामले दर्ज किये गये थे और कूट व्यापार के अन्तर्गत 53 मामले दर्ज किये गये थे। यद्यपि ये अपराध परम्परागत आई.पी.सी.अपराध के अन्तर्गत दर्ज किये गये थे, तथापि ये मामले साइबर अपराध के अन्तर्गत अन्तर्निहित इसलिए किये गये थे क्योंकि ये सब अपराध कम्प्यूटर, इन्टरनेट या इससे सम्बन्धित साधनों के आधार पर सम्पादित किये गये थे।

जहाँ तक राज्यों के आधार पर साइबर अपराध के वितरण का प्रश्न है, आन्ध्र प्रदेश में अन्य राज्यों की तुलना में साइबर आपराधिक कृत्य अधिक दर्ज किये गये थे। इसका तात्पर्य है कि अन्य राज्यों की अपेक्षा आन्ध्र प्रदेश में सर्वाधिक साइबर आपराधिक कृत्य अर्थात 218 मामले सम्पादित किये गये। आन्ध्र प्रदेश के बाद हिमाचल प्रदेश भारत का दूसरा राज्य है जहाँ साइबर अपराध के 87 मामले दर्ज किये गये थे तथा इस क्रम में तीसरा राज्य पंजाब है जहाँ साइबर अपराध के 61 मामले दर्ज किये गये थे।

साइबर अपराध के अभिप्रेरक कारक

राज्यों तथा संघ द्वारा प्राप्त जानकारी के आधार पर वर्ष 2003 में साइबर अपराध सम्पादन के लिए विविध कारक सामने आये हैं। ये निम्नलिखित हैं -

1. प्रतिशोध या उपनिवेशी कारक, 2. धन लिप्सा, 3. खसोट, 4. उपेक्षा, 5. शरारत/नियंत्रण प्राप्ति सन्तोष, 6. धोखेबाजी/अवैध लाभ प्राप्ति, 7. पूर्वदिन परेशान करना/उत्पीड़न 8. अन्य।

साइबर अपराध के कौन से अभिप्रेरक कारक हैं? यह विषय अत्यन्त विवादास्पद है। साइबर अपराध व्यवहार के विश्लेषण के लिए पर्याप्त रूप में समर्थ एवं मान्य किसी सैद्धान्तिक, वैचारिकी का विकास अब तक नहीं हो पाया है। अतः साइबर अपराध की कारणता का कोई सर्वमान्य सिद्धान्त अन्वेषित नहीं हो पाया है। साइबर अपराध के उत्तरदायी अभिप्रेरक कारकों के सन्दर्भ में मेरी निम्नलिखित स्थापनाएँ हैं -

समाज में साइबर अपराध चूँकि कम्प्यूटर व इन्टरनेट के वैध मानकों व वैध नियमकों के उल्लंघन का परिणाम है, अतः यह निम्नलिखित कारणों से प्रवाहित होता

है -

1. संकीर्ण स्वार्थ एवं अधोमुखी वृत्ति
2. अर्जनशील प्रवृत्ति का कपटपूर्ण दर्शन
3. प्रतियोगी आर्थिक व्यवस्था।
4. केवल द्रव्य तथा भौतिक उपभोग पर आधारित विलोमात्मक सफलता प्राप्त करने का दर्शन
5. द्रव्य की रसदार लालच
6. अन्धपरक अनैतिक व्यवहार व आचरण
7. द्रर्व्याजन की विभुक्षा।

निष्कर्ष -

शक्तिशाली व्यक्तिगत कम्प्यूटर के आगमन के साथ, गृह प्रयोक्ता तक विचलित एवं आपराधिक व्यवहार ने एक नया आयाम प्राप्त कर लिया है। कम्प्यूटर कच्ची सामग्री को संचालित करने के लिए प्रयोक्ता को ठोस (वास्तविक) शक्ति प्रदान करता है - चाहे यह ध्वनि हो, आकार हो या मल्टीमीडिया (ध्वनि व आकार) हो। जैसे-जैसे कम्प्यूटर अत्यधिक सस्ता व शक्तिशाली होता जायेगा, इसकी शक्ति अधिकाधिक उपभोक्ताओं तक पहुँचती जायेगी। यह संसार उपभोक्ताओं की दृष्टि से छल योजना, परिवर्तन तथा नियन्त्रण के लिए अत्यधिक उत्तरदायी होता जायेगा।

इसके दूसरे आयाम में कम्प्यूटर प्रयोक्ता का बढ़ता हुआ 'नेटवर्क' है, जिसमें वे एक दूसरे से जुड़े हुए हैं तथा सम्प्रेषण नेटवर्क बना रहे हैं जो भौगोलिक, राजनैतिक व अन्य सीमाओं को पार कर जाता है या उन सीमाओं से आगे निकल जाता है। इन्टरनेट के मामले में यह सबसे बड़ा प्रमाण है। नेटवर्क की गुमनामी सूचनाओं का आदान-प्रदान करने वालों के लिए अधिक स्वतंत्रता प्रदान करती है जबकि सामाजिक नियन्त्रण के औपचारिक कर्ताओं के व्यवहारों को बहुत कम नियन्त्रित कर पाती है।

साइबर अपराध प्रौद्योगिकी का एक अनुपम व विलक्षण परिणाम है, अत्यधिक वयैक्तिक है विविधतापूर्ण है अत्यधिक सक्षम है जो नैतिकता प्रदान करता है, जो आवश्यक रूप से सामाजिक लोकाचारों के समरूप नहीं है और जो कानून के सीमान्तों पर क्रियाशील होता हैं । अधिकांश मामलों में इनकी गतिविधियों को नियन्त्रित व नियमित करने के लिए अभी तक कानून नहीं बना है। इनकी गतिविधियाँ उसी तरह विभिन्न प्रकार की हैं और इनका विस्तार निष्कपट बातचीत से लेकर अधिक समर्पित "हैकिंग" तक है। अधिकतर मामलों में ऐसे ये अपराधी पुरूष व युवा (15 से 30 वर्ष

आयु के) होते हैं और समृद्ध परिवारों से आते हैं । कुछ मामलों में ये अपराधी सरकारी विभाग के कर्मचारियों, जो सूचना प्रौद्योगिकी के विकास में लगे होते हैं के बच्चे होते हैं। इनको कुछ "हैकर्स" के द्वारा इकट्ठा किया जा सकता है जो उपभोक्ताओं को सूचना सम्प्रेषण की सुविधा देने के लिए बुलाई गयी बैठक में भाग लेते हैं । इस प्रकार की बैठकों को "साइबर मीट्स" कहा जाता है और यह दिल्ली के सार्वजनिक पार्क में समय-समय पर बुलाई (सम्पन्न की) जाती है। इस प्रकार की बैठक में भाग लेने वाले अधिकतर उपभोक्ता वैध होते हैं लेकिन उनमें कुछ हैकर्स भी होते हैं।

जो ध्यान देने योग्य बात है वह यह है कि ये अपने कार्यों को अपराधी या अवैध रूप में परिभाषित नहीं करते हैं। वे उन कम्प्यूटर उपभोक्ताओं को तुच्छ समझते हैं जो अपने कम्प्यूटर का प्रयोग अवैध रूप से धन प्राप्त करने के लिए करते हैं। वे निश्चित रूप से यह विश्वास नहीं करते कि वे "कम्प्यूटर अपराध" में सम्मिलित हैं। लैण्डरेथ के अनुसार- वस्तुतः अधिकांश हैकर्स जो चोर होते हैं, तथा जो अपने ज्ञान का प्रयोग धन प्राप्त करने के लिए करते हैं। वे पूर्णतया हैकर नहीं होते हैं बल्कि वे अपराधी होते हैं। यह उदाहरण भी महत्वपूर्ण तथ्य को उजागर करता है कि हैकर्स अपने कार्यों को अपराधी कार्य नहीं समझते हैं । अधिकांश मामलों में साइबर अपराध के कार्य कानून द्वारा नियमित नहीं किये जाते हैं। इस प्रकार के विकासों से बहुत से देश जो राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर चुके हैं भयभीत होते हैं और उन्होंने अपर्यवेक्षित एवं वैयक्तिक उपभोक्ताओं के दूसरे वयैक्तिक उपभोक्ताओं से सम्पर्क रखने पर रोक या प्रतिबन्ध लगाया है। तथापि माध्यमों की प्रकृति इस प्रकार है कि नियंत्रण वस्तुतः असम्भव हैं ।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत अध्याय में हमने साइबर अपराध और इसके विभिन्न आयामों को बताने का प्रयास किया है। निःसन्देह यह अपराधिक व्यवहार का एक महत्वपूर्ण स्वरूप है और इस सन्दर्भ में अपराधशास्त्रियों से इस बढ़ती हुई प्रघटना के बारे में तथ्यपूर्ण जानकारी प्राप्त करना अपेक्षित हैं ।

2.6 प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1) www का क्या तात्पर्य है?

1. वर्ल्ड वाइड वेब 2. वर्ल्ड वाइल्डलाफ वेब 3. दोनों में कोई नहीं

2) फेसबुक साइबर समुदाय का उदाहरण है -

1. सत्य 2. असत्य

लघु उत्तरीय प्रश्न

1) साइबर पार्न पर एक नोट लिखें।

2) हैकिंग से आप क्या समझते हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1) साइबर अपराध तथा भूमण्डलीयकरण पर एक निबन्ध लिखें।

2) साइबर अपराध से आप क्या समझते हैं। साइबर अपराध के विभिन्न प्रकार क्या हैं, संक्षेप में चर्चा करें।

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Edwin H. Sutherland and Donald R. Cressey (1968), Principles of Criminology, the times of India press. Bombay.

2. Talcott Parsons (1979), The Social System, Amerind, New Delhi.

3. Robert G. Caldwell (1956), Criminology, Ronald Press, New York.

4. Jones, Stephen (2009), Criminology. Oxford University Press, New York.

5. Singh, Shyamdhar (2008), Theories of Criminology, Sapna Ashok Prakashan, Varanasi.

6. Paranjape, N. V. (1999), Criminology and Penology, Central Law Publications, Allahabad.

इकाई -3 भ्रष्टाचार तथा श्वेतवसन अपराध

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 भ्रष्टाचार का अर्थ

3.3 भ्रष्टाचार के कारण

3.4 भ्रष्टाचार को रोकने के लिए किये गये उपाय

3.5 श्वेतवसन अपराध का अर्थ तथा परिभाषा

3.6 श्वेतवसन अपराध मुख्य विशेषतायें

3.7 श्वेतवसन अपराध के कारण

3.8 श्वेतवसन अपराध के स्वरूप तथा प्रकार

3.9 प्रश्न

3.10 संदर्भ ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त भ्रष्टाचार से क्या अभिप्राय है तथा इसके विभिन्न आयामों से आपका परिचय कराया जायेगा।

- श्वेतवसन अपराध क्या है, इनके विभिन्न स्वरूप तथा प्रकार क्या हैं, इनके बारे में आप जान जायेंगे।

3.1 प्रस्तावना

भारत में भ्रष्टाचार की जड़ें गहरी हैं। जिस तेजी से अनेक नेताओं के नाम भ्रष्टाचार से जुड़ने लगे हैं, लगता है कि इक्कीसवीं शताब्दी में भी भ्रष्टाचार को बढ़ने से रोकना असम्भव होगा। बहुधा हम केन्द्र और राज्य के उच्च राजनीतिज्ञों को यह कहते हुए सुनते हैं कि "हमें भ्रष्टाचार के विरूद्ध युद्ध करना है।" "भ्रष्टाचार की बुराई से लड़ना है।" "भ्रष्टाचार से हम कोई समझौता नहीं करेंगे।" "किसी भी भ्रष्टाचारी व्यक्ति को माफ नहीं किया जायेगा, चाहे वह कितना भी ऊँचा क्यों न हो।"

सरल शब्दों में भ्रष्टाचार को 'रिश्वत का कार्य' कहा जा सकता है। इसे "निजी लाभ के लिए सार्वजनिक शक्ति का इस प्रकार प्रयोग करना जिसमें कानून तोड़ना शामिल हो या जिससे समाज के मानदण्डों का विचलन हुआ हो" भी कहा जाता है। डी0एच0

बेली ने भ्रष्टाचार को इस प्रकार बताया है : "निजी लाभ के विचार के परिणामस्वरूप सत्ता का दुरूपयोग जो धन सम्बन्धित नहीं भी हो सकता है।" एन्ड्रिस्की ने कहा है, "ऐसे तरीकों में सार्वजनिक शक्ति का निजी लाभ के लिए प्रयोग जो कानून का उल्लंघन करता हो।" मैरिस सैफेल ने कहा है, "भ्रष्टाचार वह व्यवहार है जो मानदण्डों और सार्वजनिक भूमिका निर्वाह के कर्तव्यों को संचालित करने या निजी लाभों के लिए पद के उचित उपयोग से विचलन होता है।" यह निजी लाभ कुछ कार्यो पर लगे प्रतिबन्धों की अवहेलना करके या उस कार्य के प्रति कुछ कर्तव्यों को पूरा करने के द्वारा प्राप्त किया जाता है। जे नाय का कहना है कि "भ्रष्टाचार निजी लाभों के लिए सार्वजनिक पद का दुरूपयोग दर्शाता है।" भ्रष्टाचार को इस प्रकार भी समझाया गया है : "यह आर्थिक या प्रतिष्ठा सम्बन्धी लाभों की प्राप्ति के लिए सार्वजनिक भूमिका के प्रति औपचारिक कर्तव्यों से विचलन हैं।"

समाज में भ्रष्टाचार अनेक स्वरूपों में फैला हुआ है। इनमें से प्रमुख इस प्रकार है। रिश्वत,(देने वाले के पक्ष में अवैध, बेइमानी से युक्त कार्य करने को प्रेरित करने के लिए नगद या वस्तु या उपहार में दिया गया), भाई-भतीजावाद (सम्बन्धियों को अनावश्यक पक्षपात द्वारा संरक्षण प्रदान करना), दुर्विनियोग (दूसरे के धन को अपने प्रयोग में लेना) संरक्षण (संरक्षक द्वारा गलत समर्थन/प्रोत्साहन दिया जाना और इस प्रकार पद का दुरूपयोग करना), और पक्षपात (एक व्यक्ति को छोड़कर दूसरे को अनावश्यक वरीयता देना)।

सामाजिक विश्लेषण बताता है कि सामाजिक बन्धन और नातेदारी भ्रष्टाचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आधुनिकीकरण के मान्य आदर्श तथा आज के शासकों द्वारा प्रचलन में लाए जाने वाले आदर्श परम्परात्मक समाज के सार्वजनिक व्यवहार के प्रतिमानों और मूल्यों के विपरीत है। आज नातेदारी व जातिगत निष्ठाएं सार्वजनिक सेवकों के मस्तिष्क में पहले से ही रहते हैं। आधुनिक प्रशासक का सबसे प्रथम दायित्व अपने परिवार के सदस्यों के प्रति होता है ओर इसके बाद निकट नातेदार या जाति के प्रति। इस प्रकार के बन्धन नियमों और प्रक्रिया से अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। नातेदार व जातियाँ ऐसे व्यवहार को, जो सार्वजनिक भूमिका के औपचारिक से विचलित होते हैं, 'विचलन' या भ्रष्टाचार नहीं समझते बल्कि इसे वे पारिवारिक दायित्व मानते हैं। यह अनेक सार्वजनिक सेवकों के निम्न और उच्च स्तर पर भ्रष्ट कार्यों को स्पष्ट करता है।

भ्रष्टाचार केवल भारत, चीन और पाकिस्तान जैसे विकासशील देशों में ही नहीं बढ़ रहा है,बल्कि अनेक यूरोपीय देशों में भी फैल रहा है। समृद्ध और विकसित देशों में भ्रष्टाचार की कल्पना तक नहीं की जा रही थी परन्तु अब जो तथ्य सामने आ रहे हैं वे महत्वपूर्ण तो हैं ही, चिंतनीय भी हैं। इन दिनों जर्मनी के लोकप्रिय नेता व पूर्व चांसलर पर भी रिश्वतखोरी का आरोप साबित किया गया है। फ्रांस में घोटाले के आरोपित वहां

के राष्ट्रीय विधानसभा के स्पीकर को भी 18 महीने का कारावास दिया गया था। रूस के राष्ट्रपति येल्तसिन की बेटी के स्विस बैंक के खाते में लाखों डालर जमा पाये गये। अमेरिका में पिछले राष्ट्रपति चुनाव (1985 में) के दौरान चीन की एक हथियार बेचने वाली सरकारी कम्पनी द्वारा दिया गया डेमोक्रेट पार्टी के चुनाव में लगभग एक लाख डालर का चन्दा सार्वजनिक हो चुका है। अमेरिका में यह भी बताया गया है कि 1995 चुनाव में भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी के मद में व्यापारियों को लगभग 11 हजार मिलियन डालर खर्च करने पड़े थे। इटली का प्रधानमंत्री भी 1990 में भ्रष्टाचार में कुख्यात रहा था। पश्चिमी यूरोप की बड़ी बड़ी कम्पनियों ने अपना माल बेचने के लिए दलाली या कमीशन देने की परम्परा शुरू की है। पाकिस्तान के दो भूतपूर्व प्रधानमंत्रियों (श्रीमती भुट्टो और नवाज शरीफ) के नाम भ्रष्टाचार के लिए बहुत मशहूर हो चुके हैं जिसके लिए उन पर मुकदमा भी चला और नवाज शरीफ को तो जुलाई 2000 में 13 वर्ष का कारावास भी दिया गया। ऐसे भ्रष्ट आरोपित नेता लोग आरोप को "राजनीतिक दुश्मनी की एक चाल" कह कर बेशर्मी से टाल जाते हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि न केवल एशियाई देशों को, बल्कि यूरोपीय और विकसित देशों को भी भ्रष्टाचार का कैंसर खाता चला जा रहा है। ईमानदारी में सबसे ऊपर (10 में से 9 अंक प्राप्त करने वाले) डेनमार्क, फिनलैण्ड, स्वीडन, न्यूजीलैण्ड, कनाडा, नीदरलैण्ड को रखा गया है।

एक गैर-सरकारी जर्मन संगठन (द हिन्दुस्तान टाइम्स मई 5, 1996 के अनुसार 1995 में भारत विश्व में सातवां सबसे भ्रष्ट देश माना गया था। यह संगठन वित्तीय पत्रकारों के तथा उन देशों से व्यवहार करने वाले व्यापारियों के दृष्टिकोण के अनुसार उनके लेन देन में उस देश को ईमानदारी या भ्रष्टाचार की श्रेणी प्रदान करके मूल्यांकन करता है। इस अध्ययन में इस संगठन ने न्यूजीलैण्ड, डेनमार्क और सिंगापुर को ईमानदार देश पाया (10से से 9 अंक से अधिक प्राप्त करके) और इन्डोनेशिया, चीन, पाकिस्तान, वेनेजुएला, ब्राजील, फिलीपीन्स, भारत, थाइलैण्ड, इटली और मोरक्को को भ्रष्ट देश पाया (10 से से 2 या 3 अंकों के बीच अंक प्राप्त करके)।

3.2 भ्रष्टाचार का अर्थ

लोकसेवकों में भ्रष्टाचार हमेशा एक या दूसरे रूप में विद्यमान रहा है, यद्यपि इसका स्वरूप, आयाम, प्रकार और छवि समय-समय और स्थान-स्थान पर बदलते रहे हैं। एक समय था जब रिश्वत गलत कार्यों को कराने के लिए दी जाती थी लेकिन अब सही कार्य को सही समय पर कराने के लिए दी जाती है।

'भ्रष्टाचार' शब्द के व्यापक अर्थ है किन्तु कानूनी प्राविधानों के अन्तर्गत लोकसेवकों के निम्नलिखित व्यवहार भ्रष्ट कहे गये हैं।

1. अधिकारिक हैसियत से किए गये कार्य के लिए पुरस्कार स्वरूप भेंट स्वीकार करना।

2. अवैध रूप से कोई भी वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करना।

3. सार्वजनिक सम्पत्ति का धोखाधड़ी से दुरूपयोग करना।

4. आय के ज्ञात संसाधनों से अधिक अनुपात में सम्पत्ति या आर्थिक संसाधन जुटाना।

5. अधिकारिक पद का दुरूपयोग।

6. सरकारी व्यवहार से सम्बन्धित किसी व्यक्ति से कीमती वस्तु खरीदने के लिए धन लेना यह मानते हुए कि उधार लिया धन वापस नहीं किया जाना है।

7. उच्च स्थिति या पद पर होने वाले व्यक्ति द्वारा ऐसे लोगों से भेंट/उपहार स्वीकार करना जिनके साथ उनके पद के नाते सम्बन्ध हों।

8. जानबूझ कर नियमों को अनदेखी करते हुए देयकों/करों/आदि के भुगतान करने से बचने में नागरिकों की मदद करना।

9. किसी बहाने से किसी कर्तव्य को करने से इन्कार करना जिससे दूसरों का फायदा होता हो, (जैसे अपराधी की मदद करने की नीयत से पुलिस अधिकारी का किसी मामले को पंजीकृत न करना)।

10. केन्द्र सरकार में कम से कम चार ऐसे मंत्रालय हैं जो धन अर्जन के लिए सोने की खान माने जाते है। ये हैं : रक्षा, पेट्रोलियम, ऊर्जा और संचार मंत्रालय। रक्षा मंत्रालय प्रतिवर्ष रक्षा सम्बन्धी खरीद पर लगभग 30,000 और 40,000 करोड़ रूपये के बीच खर्च करता है और यह कहा जाता है कि अस्त्र-शस्त्र, गोला-बारूद, अतिरिक्त कल पुर्जे और मिराज विमानों की मरम्मत व खरीद के लिए 15 से 40 प्रतिशत दलाली आम चलन है। पेट्रोलियम मंत्रालय तेल और प्राकृतिक गैस के आयात पर प्रतिवर्ष 40,000 करोड़ रूपये खर्च करता है। 1998-99 में इसने 24,000 करोड़ रूपये, 1999-2000 में 54,000 करोड़ रूपये खर्च किये और अनुमान है कि 2000-2001 में यह राशि 64,000 करोड़ रूपये देगी। आयातित तेल के बरैल किसी न किसी के लिए दलाली के रूप में आय का अच्छा साधन सिद्ध होते हैं। तेल की खुदाई के अधिकार देने में पेट्रोल पम्पों को खोलने में, पाइप लाइनों को बिछाने के लिए रिश्वत दिये जाने में भी बहुत सा धन लगता है। ऊर्जा मंत्रालय लगभग 4,000 करोड़ रूपये प्रतिवर्ष खर्च करता है जो अपने अधिकारियों का काला

धन कमाने के अच्छे अवसर प्रदान करता है। संचार मंत्रालय का बजट भी प्रतिवर्ष हजारों करोड़ रूपये का होता है ओर इस मंत्रालय में भी दलाली आम है।

चार अन्य विभाग जहाँ भ्रष्टाचार अतिव्याप्त है वे हैं : पी0डब्ल्यू0डी0 (लोक निर्माण विभाग), पुलिस, चुंगी और राजस्व। पी.डब्लू.डी को बजट और योजनाओं के अन्तर्गत भवनों के निर्माण, सड़कों के रख-रखाव, नालियों के निर्माण, बांधों के निर्माण, आदि के लिए एक बड़ी धनराशि आवंटित की जाती है।इस विभाग में ऊपर से लेकर नीचे तक भ्रष्टाचार व्याप्त है, जैसे कार्य स्थल का चुनाव, अनुमानित खर्च का तैयार किया जाना, धन की स्वीकृति, वस्तुओं की खरीद, निर्माण कार्य करवाना, बिलों का भुगतान और विवादों का समाधान आदि। यह कहा जाता है कि किसी प्रोजेक्ट के लिए स्वीकृत समस्त राशि में से लगभग 70 प्रतिशत कार्य पर खर्च किया जाता है, 20 प्रतिशत ठेकेदार का लाभ और 10 प्रतिशत विभिन्न अफसरों की जेबों में चला जाता है।

पुलिस विभाग को सबसे अधिक भ्रष्ट विभाग कहा जाता है जहाँ एक कान्स्टेबिल से लेकर उच्च पदस्थ अधिकारी तक रिश्वत लेते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि पुलिस अपराधी और शिकायतकर्ता दोनों से रिश्वत लेती है। पुलिस के अधिकार इतने विस्तृत हैं कि ईमानदार व्यक्ति को आरोप लगाकर गिरफ्तार कर सकते हैं और परेशान कर सकते हैं। गरीबों को छोटे छोटे बहानों पर (जैसे- रिक्शा चालक, आदि) उनकी जेबों से उनका सारा पैसा निकाल लेना, ट्रक ड्राइवरों से धन लेना, दुकानदारों से हफ्ता वसूल करना, आदि भ्रष्टाचार आम बातें हैं।

भ्रष्टाचार की सम्भावना उन क्षेत्रों में अधिक है जहाँ महत्वपूर्ण निर्णय किए जाते हैं, जैसे कर संग्रह का मूल्यांकन, ठेके स्वीकृत करना, बिल पास करना, चैक जारी करना, आपूर्ति को मान्यता देना आदि। अधिकारियों को पूर्व-निर्धारित प्रतिशत दिया जाता है और यह धनराशि उस संस्थान में सभी के हिस्से में आती है। रेल विभाग में वैगनों के आवंटन में, खराब होने वाली चीजों के पार्सल बुक कराने, नष्ट हुई चीजों के दावे पास करने, आदि के लिए पैसा देना पड़ता है। कई संस्थानों में तो ठेका देते समय एक निश्चित प्रतिशत धनराशि नियमतः ली जाती है। इसी प्रकार यदि यह धनराशि न दी जाये तो बिल के पास होने व चैक आदि प्राप्ति में देरी होना इसका परिणाम होता है। अक्सर बेईमान ठेकेदार और आपूर्तिकर्ता जो निम्न कोटि की चीजें देना चाहते है या थोड़े कार्य की स्वीकृति प्राप्त करना चाहते हैं अपना काम करवाने के लिए अपनी गलत कमाई में से काफी खर्च कर देते हैं। कर वंचना, खराब निर्माण, थोड़ी मात्रा में माल आपूर्ति करना,सरकारी वाहनों की मरम्मत आदि के लिए अत्यन्त ऊँची कीमत वसूल करना भ्रष्टाचार के अन्य उदाहरण हैं।

भ्रष्टाचार केवल उच्च स्तर पर व्याप्त है बल्कि निम्न स्तर तक भी फैला हुआ है। सहायक एवं कनिष्ठ अभियन्ता, टेलीफोन, राज्य विद्युत परिषद और जलदाय विभाग के मध्यम और निम्न श्रेणी के अधिकारी, राजस्व व चुंगी विभाग के निरीक्षक, सचिवालय लिपिक और रेलवे के कनिष्ठ कर्मचारी वर्ग छोटे-बड़े पक्षपात के लिए रिश्वत स्वीकार करते हैं। कई संस्थाओं में कनिष्ठ अधिकारियों की दलाली की निश्चित राशि बंधी है। उदाहरणार्थ, इन्जीनियरिंग विभाग में एक जूनियर इन्जीनियर सौदे की पूरी रकम का 5 प्रतिशत सहायक अभियन्ता 3 प्रतिशत और अधिशाषी अभियन्ता 2 प्रतिशत मांगता है। आयकर विभाग में दर भिन्न हैं निरीक्षक 10,000 रूपये तथा कमिश्नर के 5 लाख रूपया या अधिक बँधे हैं जो कर की राशि पर निर्भर करता है। पुलिस विभाग में दर भिन्न है : कॉस्टेबिल 10 रूपये से 2000 रूपये तक, उप-निरीक्षक और निरीक्षक के 2000 रूपये से 10000 रूपये तक, उप अधीक्षक और पुलिस अधीक्षक 10000 से 20000 रूपये या इससे भी अधिक है। सरकारी कार्यालयों में किसी कार्य की अनुमति प्रदान किए जाने के बाद भी जब तक सम्पूर्ण स्वीकृत धनराशि का 1 प्रतिशत या 2 प्रतिशत रिश्वत न दिया जाये तब तक सम्बन्धित लिपिक स्वीकृत-पत्र का टाइप नहीं करेगा या डाक नहीं डालेगा। निम्नतम स्तर पर चपरासी भी अपने साहब से मिलने देने के लिए आगन्तुक से 10 रूपये या 20 रूपये झाड़ लेते हैं। सरकारी विभागों में भ्रष्टाचार इतना व्याप्त है कि एक प्रधानमंत्री को भी एक सार्वजनिक सभा में कहना पड़ा कि सार्वजनिक कार्यक्रमों के लिए आवंटित धनराशि 100रूपये में से जनता के लाभ में केवल 20 रूपये ही लगते है। इसमें आश्चर्य नहीं कि जनता की उदासीनता के कारण ही देश में भ्रष्टाचार इतनी विकट स्थिति में पहुँचा है।

भेंट (उपहार) देना शहरों में भ्रष्टाचार का एक प्रमुख रूप है। एक ठेकेदार किसी अभियन्ता को या लेखा अधिकारी को अपने बिल पास कराने के लिए सूखे मेवे के डिब्बों और मिठाइयां और चाँदी के गिलास उपहार में देता है। डाक्टर और यहाँ तक कि पुलिस अधिकारी भी अपनी इच्छा के स्थान पर स्थानान्तरण के लिए मंत्री को उपहार देता है। वह व्यापारी जो आयकर के आकलन को अपनी पक्ष में कराने में सफल रहा है एक फ्रिज, या कार या कोई कीमती बिजली का सामान या सोने की चेन बेटे के जन्मदिन या बेटी के विवाह में देता है। इन सब में उपहार देने का एक स्वरूप और साथ ही कुछ 'सांस्कृतिक मूल्य' परिलक्षित होते हैं।

'गतिवान धन' भ्रष्टाचार के तरीकों में सामान्य है, विशेषज्ञ रूप से अनुदान व संस्वीकृत के मामलों में। यह प्रचलन सार्वजनिक कार्यालयों में प्रशासनिक विलम्ब का परिणाम है। एक बार एक फाइल किसी कार्यालय में आ जाये, इस पर निर्णय प्राप्त करना टेढ़ी खीर हो जाता है।विलम्ब से बचने के लिए 'गतिवान धन' जैसे भ्रष्ट तरीके

प्रयोग में लाए जाते हैं कभी कभी किसी फाइल पर निर्देश पारित होने के बाद भी इसकी सूचना प्राप्तकर्ता को देर से दी जाती है जब तक कि वह अधीनस्थ अधिकारियों को उपयुक्त धन नहीं देता।

रिश्वत और दलाली की दर प्रतिवर्ष ऊँची ही होती जा रही है । वैकल्पिक आर्थिक नीतियों के लिए गठित प्रारम्भिक समिति ने, जो वामपन्थी अर्थशास्त्रियों का एक समूह है, दलाली में कुछ अनुसन्धान किए हैं। इसका अनुमान है कि दलाली की राशि 1980-81 में 3,036 करोड़ रूपये से 1990-91 में 19,414 करोड़ रूपये की आश्चर्यचकित करने वाली ऊँचाई तक पहुँच गई, अर्थात एक ही दशक में राशि में छः गुनी से अधिक वृद्धि हो गई।

भारत में 1947 के भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम के अन्तर्गत भ्रष्टाचार के पंजीकृत मामलों की संख्या 1981 और 1987 के बीच 300 से 500 तक थी लेकिन 1988 के अधिनियम के लागू होने के बाद अब यह संख्या 1,700 से 2100 प्रति वर्ष तक है। जब 1988 में केवल (राज्यों में यानी सी.बी.आई. मामलों को छोड़कर) 1,295 भ्रष्टाचार के मामले पंजीकृत किए गये केवल 70 प्रतिशत से 75 प्रतिशत मामलों में ही व्यक्तियों को आरोप पत्र जारी हुए। (क्राइम इन इंडिया,1998:225)। उदाहरण के तौर पर 1998 में 2817 नये मामले दर्ज किए गये जबकि 4644 मामले पहले से ही न्यायालयों में लम्बित पड़े थे। सर्वाधिक संख्या में मामले 1998 (कुल 2817 में से) महाराष्ट्र में 16.2 प्रतिशत और उसके बाद पंजाब में 11 प्रतिशत, राजस्थान में 9.6 प्रतिशत, उड़ीसा में 9.4 प्रतिशत रिपोर्ट किये गये थे। 1998 में 10,163 लोगों पर मुकदमें चले जिनमें से केवल 23.6 प्रतिशत ही अभियुक्त पाए गए।

सर्वविदित है कि एक बड़ी संख्या में राजनीतिज्ञ न केवल भारत में बल्कि विश्व में भ्रष्ट हैं। राजनीतिज्ञों के भ्रष्टाचार का पर्दाफाश होने पर लोगों को कभी आघात नहीं पहुंचता। ईमानदार राजनीतिज्ञ वर्तमान में लुप्तप्राय प्रजाति होती जा रही है।भ्रष्ट राजनीतिज्ञ न केवल बेदाग, बिना दण्ड के बच निकलते हैं बल्कि वे तो राजनीतिज्ञ मंच पर सम्मानीय नेता के रूप में अकड़ कर चलते हैं। लाल बहादुर शास्त्री और सरदार वल्लभ भाई पटेल जैसे मंत्रियों के उदाहरण कम है। जिनकी मृत्यु पर बैंक में जमा राशि नगण्य थी। हमारी इस धरती पर जब एक व्यक्ति बेरोजगारी के कारण अपने भूखे बच्चों की रोटी का प्रबन्ध करने के लिए चोरी करता है तब उसको जेल की हवा खानी पड़ती है, जबकि वे लोग जो देश को दोनों हाथों से लूटने में लगे हैं सम्मानीय नागरिक होते हैं क्योंकि या तो वे राजनीति में बड़ी तोप हैं या सत्ता के केन्द्र।

गत दो या अधिक दशकों में हमारे देश में भारी दलाली और परोक्ष भुगतान से सम्बन्धित अनेक घोटाले और आर्थिक अनियमितताओं के मामले प्रकाश में आए हैं। इन

घोटालों में अधिकतर मुख्यमंत्री, मंत्री, महत्वपूर्ण राजनीतिक पदों पर आसीन नेता, नौकरशाह और बड़े व्यापारी शामिल रहे हैं। लेकिन 'साक्ष्य के अभाव' के कमजोर आधार पर अपराधियों को प्रकाशित, खोजने, पकड़ने, मुकदमा चलाने और दण्डित करने में कुछ भी नहीं किया गया। यहाँ हम कुख्यात घोटालों जैसे बोफोर्स, चारा कांड, स्टॉक मार्केट प्रतिभूतियों, हवाला, चीनी और कुछ अन्य को इंगित करेंगें।

3.3 भ्रष्टाचार के कारण

1. स्व-हित वाले राजनैतिक वर्ग का अभ्युदय

भ्रष्टाचार या सार्वजनिक बेईमानी के कई कारण बताए गए हैं। प्रथम कारण है ऐसे राजनैतिक अभिजात वर्ग का अभ्युदय जो राष्ट्र हित के कार्यक्रमों और नीतियों की अपेक्षा अपने हित में विश्वास करता है। वास्तव में ब्रिटिश शासन के पश्चात का शासन मंत्रियों और नौकरशाहों का शासन कहलाता है। आजादी के बाद प्रथम दो दशकों में राजनैतिक अभिजात इस पद तक ईमानदार समर्पित और राष्ट्रवादी थे कि वे हमेशा देश की प्रगति के लिए कार्य करते थे। 1967 में चौथे आम चुनाव में केन्द्र और राज्य में सत्ता में ऐसे लोग आए जो अपने निहित स्वार्थों के आधार पर कार्य करते थे, या यों कहा जाये कि वे अपने परिवा, जाति, क्षेत्र, दल, आदि के स्वार्थों के लिए कार्य करते थे। हो सकता है कि उनके कार्यक्रम और उनकी नीतियां राष्ट्रहित की रही हों लेकिन मुख्य रूप से वे उनके निजी हितों पर ही आधारित थे। उन्होंने नौकरशाहों को भी अपनी पदचिन्हों पर चलने के लिए प्रोत्साहित कियां। हमारे देश में अधिक संख्या में नौकरशाह रीतिवादी हैं और समाज हित के विकासवादी कार्यक्रमों की अपेक्षा अपने पारिश्रमिक तथा अन्य लाभों के प्रति अधिक चिन्तित रहते हैं। इस प्रकार राजनीतिज्ञयों और नौकरशाहों ने अपने पद और शक्ति का दुरूपयोग अवैध लाभों के लिए प्रारम्भ किया। नये व्यापारी नेता, जो अपने मुनाफे को शक्ति और सत्ताधारी लोगों के साथ बांटना चाहते थे, का अभ्युदय भी सार्वजनिक सेवकों में भ्रष्ट आदतों के विकास के लिए उत्तरदायी रहा। भ्रष्टाचार का उदय सरकारी अफसरों के निर्णय लेने की शक्ति से भी होता है। जैसे - लाइसेन्स जारी करने, आयकर निर्धारण, विस्तार प्रदान करना आदि में।

नियमों के अर्थ, न कि नियम, अधिकारियों को परोक्ष रूप से धन लेकर जेब में डालने योग्य बनाते हैं। अनेक अधिकारी हजारों और लाखों रूपये देकर अपने को किसी खास जगह तैनात करते हैं केवल इसलिए कि उन जगहों पर हजारों लाखों रूपये रिश्वत कमाने का अवसर होंता है।

सरकार की आर्थिक नीतियाँ

दूसरा कारण है कि सरकार की आर्थिक नीति। हाल के अधिकतर घोटाले उन

क्षेत्रों में हुए हैं जहाँ क्रय नीति या मूल्य सरकार के नियंत्रण में है। चीनी, उर्वरक, तेल, सैन्य अस्त्र-शस्त्र, बिजली के उपकरण कुछ उदाहरण हैं। एक अप्रवासी भारतीय व्यापारी ने न्यायालय में दावा किया कि भारत को लुग्दी बेचने के लिए ठेका प्राप्त करने के लिए उसे पूर्व प्रधानमंत्री के मौखिक आश्वासन पर, चन्द्रास्वामी को 20 लाख रूपये देने पड़े। इसी प्रकार की दलाली अन्य कई घोटालों में देनी पड़ी। मुख्य समस्या अर्थतंत्र को भ्रमित सरकारी नियमों से मुक्त कराने की है। लेकिन निजीकरण के प्रति उदासीन रवैये से भी काम नहीं चलेगा। अब देश को स्पष्ट और पारदर्शी नियमों की आवश्यकता है। कुछ व्यक्तियों (जैसे मंत्री, महानिदेशकों, और सचिवों) द्वारा एकतरफा निर्णय भ्रष्टाचार को न्योता देना है। 1995 में महाराष्ट्र का एनरान प्रोजेक्ट मुसीबत में लटक गया क्योंकि उसकी बातचीत व शर्तें गुप्त रूप से तय हुई थीं।

आवश्यक वस्तुओं की कमी

भ्रष्टाचार कमी के कारण भी होता है। जब आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति में कमी होती है, सत्ताधारी लोग उन वस्तुओं की पूर्ति सुनिश्चित करने के लिए कुछ अपेक्षा करते हैं या उनकी कीमतें बढ़वा लेते हैं। यह तब होता है जब मांग बहुत ज्यादा होती है लेकिन रोजाना की आवश्यकताओं की पूर्ति बहुत कम होती है, जैसे चीनी, सीमेन्ट, तेल आदि।

व्यवस्था में परिवर्तन

हमारे समाज में मूल्य व्यवस्था में परिवर्तन के साथ बदलते रहते हैं। नैतिकता, ईमानदारी और त्याग के पुराने आदर्श निरर्थक माने जाते हैं और भेंट स्वीकार करना मूर्खता की अपेक्षा 'आवश्यकता' के रूप में माना जाता है।

अप्रभावी प्रशासनिक संगठन

भ्रष्टाचार प्रशासनिक कमी से भी पनप सकता है। देखभाल व सतर्कता की कमी, प्रशासनिक कर्मचारियों को अत्यधिक शक्ति देना, गैरजिम्मेदारी, त्रुटिपूर्ण सूचना व्यवस्था, आदि अधिकारियों को न केवल भ्रष्ट होने का अवसर प्रदान करते हैं बल्कि भ्रष्ट तरीके अपराने के बाद भी वे अप्रभावित रहते हैं।

भ्रष्टाचार के कारणों को आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, वैधानिक और न्यायिक श्रेणी में भी रखा जा सकता है। आर्थिक कारणों में, उच्च जीवनशैली के प्रति अति मोह मुद्रा प्रसार, लाइसेंस प्रणाली तथा ज्यादा लाभ देने की प्रवृत्ति हे। सामाजिक व्यवसायियों में ईमानदारी की कमी, जीवन के प्रति भौतिकतावादी दृष्टिकोण, सामाजिक मूल्यों में गिरावट अशिक्षा, अर्जनशील सांस्कृतिक गुण सामन्तवादी स्मृतियाँ, जनता की सहनशीलता व उदासीनता, तथा शोषणवादी सामाजिक संरचना है। राजनैतिक कारणों में, राजनैतिक संरक्षण, अप्रभावी राजनैतिक नेतृत्व, राजनैतिक तटस्थता, राजनैतिक अनैतिकता, चुनाव

में धन देना, अपराधियों की राजनैतिक नेताओं के साथ सांठगांठ,आदि हैं। वैधानिक कारणों में महंगी न्याय व्यवस्था, न्यायिक उदासीनता, न्यायाधीशों में प्रतिबद्धता की कमी, तथा तकनीकी कारणों से अपराधियों का छूट जाना आदि है।

भ्रष्टाचार को बढ़ाने वाले कुछ कारक इस प्रकार भी हैं :

पहला कारक है एक अधिकारी के हाथ में शक्ति का केन्द्रित होना जिस कारण उसके लिए मनमाना निर्णय करना संभव है। और पीड़ित नागरिक प्रभावी हल पाने की स्थिति में नहीं रहता। शक्ति और विवेक मुख्यतः कार्यकारिणी, पुलिस और न्यायपालिका में निहित हैं जिनके सभी सदस्य चरित्रवान नहीं होते हैं।

दूसरा कारक है आर्थिक व सामाजिक पिछड़ापन। लोकसेवक और उसके ग्राहकगणों की प्रस्थिति के बीच फासला इतना अधिक होता है कि लोकसेवक समाज के प्रति अपने दायित्वों को भूल जाता है और ग्राहकगण उसकी अपमानभरी भाषा भी सहन करते हैं।

तीसरा कारक है उपनिवेशवादी और सामन्तवादी ताकतों से शक्ति प्राप्त लोगों की जनता के द्वारा अधीनता स्वीकार करना।

चौथा कारक है अधिकारियों का गैरजिम्मेदारीपूर्ण रवैया और प्रशासनिक विलम्ब।

पांचवाँ कारक है भ्रष्टाचार के मामलों में उदासीनता से निपटना। जो लोग श्रेणीक्रम का लाभ उठाते हैं और शक्तिशाली होते हैं वे जवाबदेही से कतराते हैं और भ्रष्ट अधीनस्थ व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही करने में ढीलापन दिखाते हैं। यह बात पुलिस, सचिवालय, पी0डब्लू0डी0, सीमाशुल्क विभाग और कई अनेक विभागों में है।

अंतिम कारक जनता की चीख पुकार में कमी तथा जनमंच की कमी है। जो भ्रष्टाचार के विरूद्ध आवाज उठा सके। हमारी सामाजिक व्यवस्था ऐसी 'मुलायम' है कि लोग सबसे भ्रष्ट व्यक्ति के विरूद्ध निष्क्रिय और गूँगे बन जाते हैं, उनके समाज विरोधी व्यवहार को सहन करते हैं और शक्तिशाली जनप्रचार करने में असफल रहते हैं।

भ्रष्टाचार की बात करते समय क्या हमें बड़े वित्तीय मामलों या घोटालों पर ही बात करनी चाहिए या फिर सार्वजनिक, नौकरशाही, औद्योगिक, संस्थात्मक आदि प्रकार के भ्रष्टाचार पर या फिर उन मामलों पर जो दिखाई तो नहीं देते किन्तु हमारे दैनिक जीवन में छाये रहते हैं और हमारे नैतिक ताने बाने को कमजोर बनाते रहते हैं। कुछ लोग महसूस करते हैं कि हमें भ्रष्टाचार को कई श्रेणियों में बांट लेना चाहिए। एक विचार के अनुसार भ्रष्ट कार्य का आधार 'धनराशि' होनी चाहिए, जबकि दूसरा विचार है कि 'आवश्यकता'

पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए। एक बड़े लाभ की प्राप्ति के लिए खर्च किए गये थोड़े रूपये पर परेशानी नहीं होनी चाहिए। दूसरा विचार यह है कि 'वांछित सेवा' प्राप्त करने के लिए 'खर्च' की गई राशि चिन्ता का विषय नहीं होनी चाहिए। भ्रष्टाचार तभी आता है जब कीमत चुकाई जाती है लेकिन उसके लिए कोई सेवा नहीं पायी गई। लेकिन भोजन में मिलावट या नकली दवाएं बेचने पर और इसी प्रकार के मामलों को क्या कहें? सामान्यतः हमारे दैनिक जीवन में ऐसे मामले 'भ्रष्टाचार' नहीं कहे जाते। क्या परीक्षा में नकल करवाना भ्रष्टाचार है? क्या उत्तर पुस्तिका में परीक्षक द्वारा अंक बढ़ाए जाना, किसी मित्र की सिफारिश पर या नातेदार या सहयोग के कहने पर (लेकिन धन स्वीकार करके नहीं) भ्रष्टाचार है? अपने बचाव में परीक्षक कहते हैं कि वे 'एहसान' करते हैं और उपस्थिति पंजिका पर हस्ताक्षर कर देते है। लेकिन अपनी कुर्सी पर नहीं मिलते। वे तभी उपलबध होते हैं जब उन्हें फाइल आगे बढ़ाने के लिए धन दिया जाता है। यहां धन लेना भ्रष्टाचार है।

कुछ लोग कहते हैं कि जब भ्रष्टाचार अमेरिका, जापान, इंग्लैण्ड, फ्रांस, कनाडा और जर्मनी जैसे विकसित देशों में तो भारत में अनावश्यक रूप से इसके लिए लोग क्यों चिन्तित है? यह लोग भूल जाते हैं कि भ्रष्टाचार की प्रकृति उन देशों में हमारे देश से भिन्न हैं जबकि भारत में हमें रेल आरक्षण के लिए न केवल व्यवसायिक संस्थाओं में प्रवेश हेतु बल्कि बच्चों को प्राथमिक स्कूल में प्रवेश के लिए भी, सिनेमा टिकट, खरीदने के लिए, गैस सिलेण्डर खरीदने के लिए, बिना हेल्मेट स्कूटर चलाने के लिए, बकाया राशि का बिल पास कराने के लिए, टैक्स वापस लेने के लिए पैसा देना पड़ता है। आम आदमी के दैनिक जीवन को यह सब बातें प्रभावित करती है। अतः हमें ऐसे भ्रष्ट कार्यों पर भी चिन्ता करनी है।

भ्रष्टाचार ने हमारे समाज को कई प्रकार से प्रभावित किया है -

1. इसने देश के आर्थिक विकास को रोका है।
2. इसने समाज में हिंसा और अराजकता को जन्म दिया है क्योंकि भ्रष्ट व्यक्ति के पास कानून लागू करने वालों को अपने फायदे के लिए खरीदने की धन शक्ति है।
3. इसने जातिवाद, भाषावाद और साम्प्रदायवाद को जन्म दिया है।
4. इसने नैतिकता को गिराया है और वैयक्तिक चरित्र को नष्ट किया है।
5. इसने अकुशलता को बढ़ाया है, भाई भतीजावाद और सुस्ती में वृद्धि की है और प्रशासन के हर क्षेत्र में अनुशासनहीनता को जन्म दिया है जिससे साधारण आदमी का जीवन कष्टप्रद हो गया है।

6. इसने जनता की दृष्टि में अफसरों की विश्वसनीयता को कम कर दिया है।

7. इसने देश में काले धन में वृद्धि की है।

8. इसने खाने पीने की चीजों में, दवाओं में मिलावट करने जैसी क्रियाओं को रास्ता दिखाया है और उपभोक्ता पदार्थों में कमी पैदा की है।

9. इसने सरकार को केन्द्र और राज्य दोनों स्तरों पर अस्थिर बनाया है।

3.4 भ्रष्टाचार को रोकने के लिए किये गये उपाय

भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम सितम्बर 1988 में लागू हुआ। इसमें 1947 के भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम के प्राविधान समाहित थे और आई.पी.सी. की कुछ धाराएं अपराध प्रक्रिया संहिता और 1952 का अपराध क़ानून अधिनियम के प्राविधान भी समाविष्ट है। यह पता लगाने पर कि द्वितीय महायुद्ध के बाद लोकसेवकों में रिशवतखोरी और भ्रष्टाचार काफी बढ़ गए हैं। और बहुत से स्वाथ्री अधिकारियों ने बहुत धन इकट्ठा कर लिया है तथा मौजूदा आई.पी.सी. और सी.आर.पी.सी. भ्रष्टाचार सम्बन्धी समस्याओं से जूझने के लिए अपर्याप्त हैं 1947 का भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम पारित किया गया। सी.आर.पी.सी. में लोकसेवाओं से सम्बन्धित अपराध संज्ञेय नहीं हैं लेकिन 1947 के अधिनियम द्वारा अपराधियों के विरूद्ध अपराध की कुछ मान्यताएं बनाना न्यायालय के लिए आवश्यक हो गया। 1947 के अधिनियम के अन्तर्गत साक्ष्य प्रस्तुत करने का बोझ आरोपी पर आ गया। आरोपी के विरूद्ध जांच उप पुलिस अधीक्षक से नीचे के अधिकारी द्वारा नहीं की जा सकती। 1947 के अधिनियम ने रिश्वत लेना, धन का दुरूपयोग करना, आर्थिक लाभ उठाना, आय से अधिक सम्पत्ति जमा करना तथा अधिकारिक पद का दुरूपयोग करना आदि भ्रष्टाचार के कार्य व अपराध घोषित किये हैं। परन्तु मुकदमा चलाने का अधिकार केवल विभागीय अधिकारियों को दिया गया है न कि केन्द्रीय जाँच ब्यूरो को।

1988 के अधिनियम में 'लोक सेवक' शब्द का क्षेत्र व्यापक कर दिया गया और इसमें बडी संख्या में कर्मचारियों को शामिल किया गया। केन्द्रीय कर्मचारियों और केन्द्र प्रशासित राज्यों के कर्मचारियों के अलावा, सार्वजनिक उपक्रमों, राष्ट्रीयकृत बैंकों, केन्द्रीय व राज्यों से सहायता प्राप्त सहकारी समितियों के पदाधिकारी, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के कर्मचारी, उप कुलपति, केन्द्रीय व राज्य सरकारों से आर्थिक सहायता प्राप्त करने वाली संस्थाओं में वैज्ञानिक और प्रोफेसर तथा स्थानीय प्रशासन से सम्बन्धित संस्थाओं के कर्मचारी, सभी को 'लोकसेवक' घोषित कर दिया गया। यद्यपि, संसद सदस्य तथा विधायिकाओं के सदस्य सार्वजनिक कार्य करते हैं तथापि उन्हें इस

अधिनियम की परिधि से अलग रखा गया है (जिसका 'कारण' एक साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति भी समझ सकता है)। इस अधिनियम के अन्तर्गत 1947 के अधिनियम में वर्णित सभी भ्रष्ट कृत्य सम्मिलित किए गये हैं (रिश्वत, दुरूपयोग, धन सम्बन्धी लाभ उठाना, आमदनी से अधिक सम्पत्ति एकत्र करना)। अधिनियम सम्पूर्ण भारत में (जम्मू और कश्मीर को छोड़कर) सभी नागरिकों पर लागू होता है, भले ही वे देश में रहते हों या देश से बाहर।

विद्यमान केन्द्रीय जाँच ब्यूरो और भ्रष्टाचार विरोधी पुलिस जांच पड़ताल, कार्यवाही प्रारम्भ करने और भ्रष्ट मंत्रियों तथा शीर्षस्थ अधिकारियों को दण्डित करने में असहाय सिद्ध हुए हैं। इसमें आश्चर्य नहीं, हाल ही में लोगों ने 'न्यायिक सक्रियतावाद' की बात करना शुरू कर दिया है। यह सर्वविदित है कि सी.बी.आई. बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री के मामले की तेजी से जांच केवल उच्च न्यायालय के संरक्षात्मक शाखा के अन्तर्गत ही कर सकी। सी.बी.आई. सरकारी तंत्र होने के कारण सरकार को दरकिनार करके लंबी अवधि के आधार पर न्यायालय को सीधे रिपोर्ट नहीं कर सकती। इसकी कार्यप्रणाली सरकारी देखरेख के बिना नहीं चलती। सी.बी.आई.के अधिकारियों ने अपने ऊपर राजनैतिक दबाव की बात स्वीकार की है। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि निम्न और मध्यम कोटि के लोकसेवकों पर सतर्कता बरतने में सी.बी.आई. की भूमिका सीमित ही होगी। लोकपाल और लोकायुक्तों को ही मंत्रियों तथा उच्चस्थ राजनीतिज्ञों को दण्डित करना होगा समाज केवल पुलिस की निगरानी पर निर्भर नहीं रह सकता क्योंकि पुलिस कुख्यात है कि वह भ्रष्ट अधिकारियों के विरूद्ध साक्ष्यों को मिटाने, तोड़मोड़ कर प्रस्तुत करने तथा झूठे मामले बनाने में माहिर है।

श्री के. सन्थानम की अध्यक्षता में एक भ्रष्टाचार निरोधक समिति का गठन 1960 में किया गया था। विभाग के कामकाज को कुशल बनाने के लिए सन्थानम समिति ने यह उपाय सुझाए थे :

1. सतर्कता अधिकारियों को भ्रष्टाचार की शिकायतों की जांच करने की स्वतंत्रता देना न कि भ्रष्ट प्रथाओं की जांच करने की।
2. सतर्कता अधिकारियों को कुशल कार्य के लिए प्रोन्नति का आश्वासन देना।
3. उच्चस्थ अधिकारियों के मामलों की जांच पड़ताल के लिए सतर्कता अधिकारियों को उनके मूल केडर में वापस भेजने से सुरक्षा का आश्वासन देना।
4. केन्द्रीय सतर्कता आयोग में केन्द्रीय लोक सेवाओं और तकनीकी सेवाओं को प्रतिनिधित्व देना (यह सिफारिश 1998 के अन्तिम महीनों में सतर्कता आयोग का पुर्नगठन करके लागू कर दी गई)।

5. सतर्कता विभाग के अराजपत्रित कर्मचारियों को विभाग के नियमों और कार्यप्रणाली के विषय में गहन प्रशिक्षण देना क्योंकि सतर्कता के 80 प्रतिशत मामलों की छानबीन निम्न स्तर पर ही होती है।

6. मामलों की छानबीन में विलम्ब को रोकने के लिए सरकार द्वारा व्यवस्था के चरणों की संख्या में कमी।

इस समिति की सिफारिशों के आधार पर ही केन्द्र में सरकारी और अन्य कर्मचारियों के विरूद्ध भ्रष्टाचार के मामलों को देखने के लिए 1964 में केन्द्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना की गई थी। केन्द्रीय सरकार ने निम्नलिखित चार विभागों की स्थापना भ्रष्टाचार विरोधी उपायों के अन्तर्गत की।

1. कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग में प्रशासनिक सतर्कता प्रभाग।

2. केन्द्रीय जाँच ब्यूरो।

3. राष्ट्रीयकृत बैंकों/सार्वजनिक उपक्रमों/मंत्रालयों/विभागों में घरेलू सतर्कता इकाइयाँ।

4. केन्द्रीय सतर्कता आयोग।

भ्रष्टाचार से निपटने के लिए दिये गये कुछ सुझाव विचारणीय है -

केन्द्रीय मंत्रियों और सांसदों के विरूद्ध कार्यवाही करने के लिए (राजनीतिक भ्रष्टाचार के विरूद्ध) शक्तिवान लोकपाल संस्था की स्थापना करना।

1. सी.बी.आई. पर निर्भर हुए बिना लोकपाल की अपनी स्वतंत्र जांच पड़ताल करने वाली तथा मुकदमा चलाने वाली एजेन्सी होनी चाहिए।

2. लोकपाल के पास अपनी छानबीन करने के बाद मंत्री के विरूद्ध विशेष अदालत में प्रथम दृष्टा दोषी ठहराए जाने के बाद मुकदमा चलाने की शक्ति होनी चाहिए।

सी.बी.सी. के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं -

1. किसी भी लोकसेवक के विरूद्ध भ्रष्टाचार की शिकायत आने पर उसकी जांच पड़ताल करना।

2. भ्रष्टाचार के लिप्त आरोपी व्यक्ति के विरूद्ध की जाने वाली कार्यवाही के प्रकार के विषय में अनुशासनात्मक अधिकारी को परामर्श देना।

3. नियमित मामला पंजीकृत करने के लिए सी.बी.आई. को निर्देशित करना।

4. मंत्रालयों/विभागों/बैंकों/सार्वजनिक उपक्रमों में सतर्कता और भ्रष्टाचार विरोधी

3.5 श्वेतवसन अपराध का अर्थ तथा परिभाषा

दिसम्बर सन 1939 में सदरलैण्ड ने 'अमेरिका सोशियोलॉजिक सोसायटी' के अपने अध्यक्षीय भाषण में इस पद का प्रयोग अपने शोध प्रपत्र "वाइट कॉलर क्रिमिनैलिटी" किया । इस प्रपत्र के माध्यम से उन्होंने यह बताने का प्रयास किया कि आपराधशास्त्रीय साहित्य में सामान्यता केवल ऐसे अपराधियों की ही चर्चा की गई है जिनकी समाजिकार्थिक प्रस्थिति अत्यन्त निम्नस्तरीय रही है समाजशास्त्रियों एवं अपराध शास्त्रियों का ध्यान अपराधियों की ओर आकर्षित नहीं हुआ है जो प्रायः समृधनी, सुसभय, सुसंस्कृत एवं सुशिक्षित सामाजिक पृष्ठभूमि से सम्बन्धित है तथा जो अवैधानिक और असामाजिक ढंग से अधिकाधिक धन व सम्पदा तथा भौतिक सुख-समृद्धि की वस्तुओं को अर्जित करने में संलग्न हैं। ऐसे अपराधी सफेदपोश, सफेद लिबास एवं श्वेत वसन या वस्त्र से ढके रहने वाले ऐस उच्चस्तरीय व्यक्ति होते हैं जो किसी समाज या देश के उच्च सामाजिक स्तर के प्रतिनिधि, नेता, प्रणेता अथवा प्रशासनतन्त्र में शीर्षस्थ या उच्च सत्ताधारी होते हैं। इस प्रकार के अपराधी एक ओर जहाँ स्वयं ही समाज एवं देश के नियंता होते हैं, वही दूसरी ओर वे अपनी प्रतिष्ठा की ओट में अपनी व्यावसायिक क्रियाओं के सन्दर्भ में अर्थार्जन हेतु अपराधिक कृत्य करते हैं। इस प्रकार के अपराध को सदरलैण्ड ने सफेदपोश अपराध तथा ऐसा अपराध करने वालों को सफेदपोश अपराधी की संज्ञा दी है। अपने उत्तरोत्तर अन्वेषण एवं सर्वेक्षण को सतत क्रियाशील रखते हुए उन्होंने अन्य अनुसंधान प्रपत्रों, प्रतिवेदनों, विशेषकर "क्राइम एण्ड बिजिनेस" एवं "इस वाइट कॉलर क्राइम ए क्राइम" तथा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण शोध ग्रन्थ 'वाइट कॉलर क्राइम' में इस विषय पर विस्तृत विवेचन किया है।

सदरलैण्ड ने स्पष्ट किया है कि अपराध केवल निम्न सामाजिक आर्थिक वर्ग के व्यक्ति ही नहीं करते प्रत्युत उच्च सामाजिक-आर्थिक वर्ग के व्यक्ति भी करते हैं जिनका अध्ययन सन 1939 ई. तक के समाजशास्त्रियों एवं अपराधशास्त्रियों ने नहीं किया है जबकि ऐसे व्यक्ति समाज को अनेकानेक रूपों में प्रायः अत्यन्त क्षतिग्रस्त करते हैं। ये लोग समाज में रहकर समाज की ही कब्र खोदते रहते हैं। ये महाविध्वंसक एवं क्रूर डाकुओं से भी अधिक खतरनाक, धोखेबाज, भयंकर तथा विनाशकारी होते हैं। इस प्रकार सदरलैण्ड की अपराध की यह व्याख्या अपराध की परम्परागत व्याख्याओं से पूर्णतया भिन्न एक क्रान्तिकारी व्याख्या है जो लिबासीय आवरण में ढँके रहने वाले उच्चस्तरीय लोगों द्वारा कार्यान्वित एवं संचालित होता है। यद्यपि इस अपराध की अवधारणा का प्रथम प्रयोग इ.ए.रास ने सन 1907 ई. में किया और तत्पश्चात अलबर्ट मोरिस ने सन 1934 में इसका समर्थन किया, परन्तु सन 1939 में सदरलैण्ड की व्याख्या के उपरान्त

ही यह व्याख्या हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध के पशचात क्लीनार्ड (1946-1952) तथा हार्टुग (1950) ने युद्धकालीन काला बाजार से सम्बन्धित अपराधिक व्यवहारों का अध्ययन प्रस्तुत किया। क्लीनार्ड ने अपनी पुस्तक से "दि ब्लैक मार्केट" में उन अमेरिकी व्यापारियों के काले कारनामों का पर्दाफाश किया जो राज्य के मूल्य नियन्त्रण कानूनों का उल्लंघन कर रहे थे। कई अन्य विद्वानों ने भी सफेदपोश अपराध का अध्ययन किया है।

सफेदपोश अपराध की अवधारणा का स्पष्टीकरण करते हुए सदरलैण्ड ने यह दर्शाया कि यह समाज के उच्च सामाजिक-आर्थिक वर्ग (जो कि आदरणीय या प्रतिष्ठित व्यावसायिक व व्यापारिक क्रियाकलापों में संलग्न लोगों से निर्मित है) तथा निम्न वर्ग (अर्थात निम्न सामाजिक- आर्थिक प्रस्थिति समूह के लोगों से निर्मित है) के मध्य अपराध का तुलनात्मक अध्ययन है। इस तुलना का एक मात्र उद्देश्य अपराधी व्यवहार की कारणता के एक नूतन सिद्धान्त को विकसित करना था।

सदरलैण्ड का मत है कि अब तक के अध्ययन परिणामों के आधार पर यह स्थापित किया गया है कि उच्च वर्ग के सदस्यों की अपेक्षा निम्न वर्ग के सदस्यों द्वारा अपराध अधिक किये जाते हैं। अपराध सम्बन्धी यह सांख्यिकी पुलिस एवं न्यायालयी प्रतिवेदनों पर आधृत है। अपराधशास्त्रियों ने सामान्यतः इसी सांख्यिकी एवं अपराधियों के व्यैक्तिक इतिहासों को लेकर अपराधिक व्यवहार के सामान्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। सदरलैण्डका कहना है कि इस प्रकार के अपराधिक व्यवहार के सिद्धान्त अपूर्ण एवं भ्रामक हैं क्योंकि इनके प्रतिदर्श का चयन ही पक्षपातपूर्ण है। अन्य शब्दों में इस प्रकार के प्रतिदर्शों में व्यावसायिक एवं व्यापारिक लोगों द्वारा किये गये अपराधों के विवरणों की अवहेलना की जाती रही है। इस प्रकार अपने सफेदपोश अपराध की नवीन अवधारणा के प्रस्तुतीकरण में, सदरलैण्ड ने अपराधिक व्यवहार के समग्र अध्ययन के आधार पर एक नवीन सिद्धान्त की रूपरेखा प्रस्तुत की है।

3.6 श्वेतवसन अपराध की आधारभूत मान्यतायें तथा मुख्य विशेषतायें

सदरलैण्ड द्वारा प्रतिपादित सफेदपोश अपराधिता की आधारभूत मान्यताएँ अधोलिखित है -

1. अपराधिक नियमों के विरूद्ध होने के कारण सभी मामलों में सफेदपोश अपराध ही मूल या वास्तविक अपराध है।
2. सफेदपोश अपराधिता एवं निम्नवर्गीय अपराधिता में अन्तर प्रमुख रूप से अपराधिक कानून या विधान को लागू करने की नीति के कारण होता है जिसमें

प्रशासकीय आधार पर सफेदपोश अपराधियों को अन्य अपराधियों से पृथक कर दिया जाता है।

. अपराधशास्त्रियों व समाजशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित अपराध की कारणता के प्रायः सभी परम्परागत सिद्धान्त अयुक्तियुक्त हैं।

4. अपराध की कारणता का यह परम्परागत सिद्धान्त की अपराध निर्धनता या मनोविकृत दशाओं से जुड़ा हुआ है, प्रामाणिक एवं विश्वसनीय नहीं है क्योंकि इनके प्रतिदर्श अभिनतिपूर्ण हैं तथा इन पर आधृत उपलब्धियों को सफेदपोश अपराध के सन्दर्भ में लागू नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इनके अध्ययन परिणामों के आधार पर निम्नवर्गीय अपराधिता की व्याख्या नहीं की जा सकती है।

5. सफेदपोश अपराधिता तथा निम्नवर्गीय अपराधिता दोनों की व्याख्या करने वाले एक नवीन अपराधिक व्यवहार सिद्धान्त का निर्माण अत्यावश्यक है।

6. इस सन्दर्भ में एक नवीन प्राकल्पना विभेदक साहचर्य तथा सामाजिक विघटन की धारणाओं के आधार पर प्रस्तुत की जा सकती है।

सदरलैण्ड के अनुसार,"सफेदपोश अपराध प्रतिष्ठित तथा उच्च सामाजिक प्रस्थिति धारण करने वाले व्यक्तियों द्वारा उनके व्यवसाय के सन्दर्भ में किया गया अपराध है।" इस प्रकार सफेदपोश अपराध उच्च सामाजिक आर्थिक वर्ग के व्यक्तियों द्वारा उनके सामान्य व्यवसाय के दौरान में किये गये उन कृत्यों का संकेतक है जिनसे किसी अपराधिक विधि का उल्लंघन होता है।

उद्योगपतियों तथा औद्योगिक संगठनों, व्यवसायियों अथवा राजनीतिज्ञों, प्रशासकों तथा प्रबन्ध अधिकारियों द्वारा अपने सामान्य व्यापार व व्यवसाय के सन्दर्भ में किये गये अपराधिक कृत्य इसके कुछ उदाहरण है। सफेदपोश अपराध के अन्तर्गत "उच्च अपराध जगत" के अपराधिक सदस्यों द्वारा सम्पादित किये जाने वाले अपराधों को ही समाविष्ट किया जा सकता है।

इस परिभाषा में गैर-सफेदपोश अपराधियों द्वारा सम्पादित किये जाने वाले अपराधियों को सम्मिलित नहीं किया जा सकता है क्योंकि ऐसे अपराधी "उच्च अपराध जगत" के अपराधिक सदस्यों की भाँति परम्परागत रूप से प्रतिष्ठित तथा उच्च सामाजिक प्रस्थिति वाले व्यक्ति नहीं होते हैं । उदाहरण स्वरूप, यदि किसी दलाल ने अपनी पत्नी के प्रेमी को अपनी बन्दूक की गोली चला कर मार डाला है तो वह सफेदपोश अपराध नहीं है, किन्तु यदि वह अपने व्यापार के सम्बन्ध में कानून का उल्लंघन करता है और दोषी ठहराया जाता है तो वह एक सफेदपोश अपराधी है। एडिलहर्ट्ज के अनुसार

सदरलैण्ड तथा उन्हीं के समान परिभाषा देने वाले अन्य लेखकों ने सफेदपोश अपराध की अवधारणा को अत्यन्त परिसीमित रूप से परिभाषित किया है। इस परिभाषा में उन अपराधों को अन्तर्विष्ट नहीं किया जा सकता जिनका व्यक्ति के व्यवसाय से सम्बन्ध नहीं होता। इस कारणवश एडिलहट्र्ज ने इस अवधारणा को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "सफेदपोश अपराध" एक अवैध क्रिया अथवा अवैध क्रिया का अनुक्रम है जिसका सम्पादन रूपया अथवा सम्पत्ति प्राप्त करने अथवा भुगतान या रूपया या सम्पत्ति की हानि से बचने अथवा व्यापार या वैयक्तिक लाभ प्राप्त करने के लिए अभौतिक साधनों द्वारा तथा छिपाकर किया जाता है।"

सदरलैण्ड का मत है कि यद्यपि सफेदपोश अपराधियों की संख्या अधिक या कम मात्रा में विश्व के प्रायः सभी देशों में पायी जाती है, किन्तु इस अपराध की आवृत्ति पूँजीवादी देशों में अपेक्षाकृत बहुत अधिक पाई जाती है, तथापि पुलिसतन्त्रीय प्रतिवेदनों में इनकी सूची प्राप्त नहीं होती है। इसका प्रधान कारण यह है कि ऐसा अपराध करने वाले व्यक्ति सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से प्रायः इतने सशक्त होते हैं कि अपराध का यथोचित पता नहीं लग पाता। इनका पता लगाना कठिन होता है। पता लगने पर इनको गिरफ्तार करना और अत्यंत कठिन कार्य है। यदि गिरफ्तार किये भी जाते हैं तो वे स्वय कानून की प्रकृति को बदल देते हैं, क्योंकि ये प्रायः न्यायालयों के न्यायाधीशों, विधिवेत्ताओं, प्रशासकों तथा विधायकों के समतुल्य होते हैं। परिणामतः न्यायालय द्वारा उन्हें न तो अपराधी सिद्ध किया जाता है और न ही सामान्य जनता में उन्हें अपराधी कहने का साहस होता है। क्योंकि सामान्य जनता को ऐसे अपराधियों के अपराधिक कृत्यों के बारे में या तो जानकारी नहीं होती है और यदि होती भी है तो बहुत ही कम। सफेदपोश अपराधियों के दण्ड विधान सामान्य अपराधियों से भिन्न होते हैं। शायद इसी कारण वे लोकलांछन तथा आलोचना से बच जाते हैं, जबकि ये अपराधी व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा सामाजिक संस्थाओं पर परिणामों की दृष्टि से किसी अन्य प्रकार के अपराधियों के समाज के लिए बहुत अधिक खतरनाक हैं। आधुनिक सफेदपोश अपराधियों की व्याख्या करते हुए सदरलैण्ड ने "अमेरिकन सोशियोलाजिकल रिव्यू" में "वाइट कॉलर क्रिमिनैलिटि" शीर्षक शोध प्रपत्र में लिखा है, "वर्तमान समय के सफेदपोश नवाब या सामान्त डकैतों से भी अधिक धोखेबाज तथा कपटी हैं। इस प्रकार के अपराधियों का प्रतिनिधित्व करने वालों में क्रूगर, स्टेविस्की, व्हीटनी, मिटचेल, फोशाय, इनसूल, वान सवेरिंगेन्स, फाल, सिंक्लेयर तथा अनेक अन्य व्यापारी, राजकुमार तथा वित्त एवं उद्योग के नायक या अधिपति हैं।"

विडम्बना इस बात की है कि इनके खतरनाक होने पर भी इनके प्रति जो लोक-क्षोभ होना चाहिए वह हो नहीं पाता है। समाचार-पत्रों में भी इनके सम्बन्ध में विवरण

जो प्रकाशित होते है। उनसे भी लोक निन्दा प्रगाढ़तर नहीं हो पाती है जबकि चोरी, गृहभेदन, लूट, डकैती, बलात्कार के वृत्तान्त लोमहर्षक प्रतिक्रिया को जाग्रत कर देते हैं और लोक आक्रोश को प्रगाढ़तर कर देते हैं। इसलिए सफेदपोश अपराधियों के विरूद्ध कठोर कानून भी पारित नहीं हो पाते हैं।

सदरलैण्ड के अनुसार सफेदपोश अपराध की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. सफेदपोश अपराध प्रायः उन व्यक्तियों द्वारा सम्पादित किये जाते हैं जो तत्कालीन सामाजिक संरचना में प्रतिष्ठित एवं उच्च सामाजिक प्रस्थिति धारण किये होते हैं।
2. सफेदपोश अपराध तथाकथित प्रतिष्ठित तथा उच्च सामाजिक स्तर के व्यक्तियों द्वारा सदैव अपने व्यवसाय के दौरान कार्यान्वित एवं संचालित होते हैं।
3. सफेदपोश अपराध सामान्यतः आर्थिक अपराधिक प्रघटनाओं से सम्बन्धित होते हैं। अधिक धनार्जन करने के सन्दर्भ में ऐसे अपराध घटित होते हैं।
4. सफेदपोश अपराधी अपने अपराधिक कृत्य को सदैव छिपाने का प्रयास करते हैं। वे अपने अपराध को इस प्रकार छिपाने का प्रयास करते हैं ताकि आहत व्यक्ति यह अनुभव न कर सके कि उसे वास्तव में हानि पहुँची है।
5. सफेदपोश अपराधी अपने को कानूनोपरि समझता है तथा व्यापारिक सफलता तथा वैयक्तिक लाभ पर कानून या नीतिपरक व्यवहारों के अनुपालन की तुलना में उच्चतर मूल्य प्रदान करता है।
6. सफेदपोश अपराध से सम्बन्धित मुकदमों का निर्णयन दीवानी अथवा फौजदारी के सामान्य न्यायालय के अन्तर्गत नहीं किया जाता प्रत्युत उनका निर्णयन एक विशेष प्रकार की न्यायिक व्यवस्था में होता है जो किसी प्रशासकीय समिति तथा दीवानी अथवा समतुल्य न्याय अधिकार के अधीनस्थ न्यायालय से सम्बन्धित होता है।
7. सफेदपोश अपराधियों की सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक प्रस्थिति उच्चतर होने के कारण यथोचित रूप में इन पर अभियोग नहीं चलाया जा सकता।
8. ऐसे अपराधों में बड़े बड़े व्यापारिक समूहों तथा पूँजीपतियों का हाथ होता है अतएवं इनकी निरपेक्ष न्यायिक जाँच नहीं हो पाती हैं ।
9. सफेदपोश अपराध वस्तुतः एक संगठित अपराध है। अतः सफेदपोश अपराधियों का एक ऐसा संगठित गिरोह होता है जिनका प्रमुख कार्य अपराध करना तथा साथ ही सदस्यों को कानून के चंगुल से बचाना होता है।

10. सफेदपोश अपराधी प्रायः न्यायालयों, विधिवेत्ताओं एवं विधायकों के समतुल्य होते हैं, अतः ये शासनतंत्र, पुलिसतंत्र तथा न्यायतंत्र को प्रभावित किये रहते हैं। यदि इनके विरूद्ध कोई अभियोग चलाया भी जाता है तो इनके प्रति शासनतन्त्र न केवल कछुआ की भाँति मौन साधे रहता है प्रत्युत उदासीनता का भाव प्रकट करता है। अतः ऐसे अपराधियों को गिरफ्तार करना एवं दण्ड प्रदान करना कठिन होता हैं ।

11. सफेदपोश अपराधियों के काले कारनामों का पता लगाना कोई सरल कार्य नहीं है। उनके विरूद्ध न तो सरलता से प्रमाण मिलता है और न ही उनके अपराधिक कृत्यों के बारे में किसी प्रकार की सूचना उपलब्ध होती है।

12. अधिकांश सफेदपोश अपराधी अपने काले कारनामों पर आवरण डालने के लिए समाज-कल्याणकारी संस्थाओं से या तो सम्बन्धित होते हैं अथवा ऐसी संस्थाओं के संस्थापक भी होते हैं। वस्तुतः ये समाज के लिए आस्तीन का सर्प होते हैं।

13. समाचार पत्र-पत्रिकाएँ तथा प्रचार समितियाँ स्वयं बड़े-बड़े व्यापारिक समूहों द्वारा नियन्त्रित होती हैं, अतः इनके द्वारा भी सफेदपोश अपराधियों के विरूद्ध प्रचार करना सम्भव नहीं हो पाता है।

14. सफेदपोश अपराधों का स्वरूप इस प्रकार होता है कि उनके कारण इतने अधिक व्यक्ति आहत होते हैं कि प्रत्येक पर व्यक्तिगत रूप से इसका प्रभाव न्यूनतम होता है। सम्भवतः यही कारण है कि इन अपराधों के प्रति समाज कठोर नीति नहीं अपनाता है तथा अपराधी के पकड़े जाने पर उनकी सामाजिक प्रस्थिति पर किसी प्रकार का प्रत्याघात नहीं होता है।

15. सफेदपोश अपराध के सन्दर्भ में न्यायाधीशों द्वारा क्रेता सावधान का कैवियट इम्पटर का सिद्धान्त लागू किया जाता है, जिसका तात्पर्य होता है कि प्रत्येक क्रेता को किसी वस्तु का क्रय करते समय पूर्ण सावधानी बरतनी आवश्यक है जिससे उनमें किसी प्रकार की हानि या धोखा न हो। अतः यदि क्रेता क्रय करते समय विक्रेता द्वारा किये गये मिथ्याकथन, धोखा या जालसाजी का पता नहीं लगा पाता है तो हानि होने पर वह उसके लिए स्वयं ही उत्तरदायी होगा। किन्तु इस सामान्य मान्यता के कारण वर्तमान शताब्दी के प्रथम तीन वर्ष में सफेदपोश अपराधों में इतनी वृद्धि हुई है कि सन 1933 में अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने अपने न्यायालय से सफेदपोश अपराधों के मामले में क्रेता सावधान का सिद्धान्त लागू न किये जाने पर बल दिया।

16. सफेदपोश अपराधी आवश्यक रूप से प्रज्ञावान स्थिर बुद्धि वाले सुविचारी तथा दूरदर्शी होते हैं।

17. सामान्यतः व्यापारिक एवं औद्योगिक क्षेत्रों में घटित होने वाले सफेदपोश अपराध प्रायः अप्रत्यक्ष तथा वैयक्तिक स्वरूप के होने के कारण उन्हें करने वाले अपराधियों का पता लगाना कठिन होता है जबकि अन्य प्रकार के अपराध करने वाले व्यक्तियों के अपराध प्रत्यक्ष एवं वैयक्तिक स्वरूप के होते हैं तथा उनमें अपराधी की शारीरिक क्रिया अवश्य रहती है जिससे उन्हें ढूँढ निकालना आसान होता है। उदाहरणस्वरूप, मारपीट या चोरी करने वाले अपराधी द्वारा स्वयं की शारीरिक क्रिया से यह अपराध किये जाते हैं जिससे साक्षियों के आधार पर उनका पता लगाना अपेक्षाकृत सरल होता है।

18. सफेदपोश अपराधी एक ओर जहाँ अपने को अपराधी व्यक्ति नहीं मानते हैं, वहीं दूसरी ओर सामान्य अपराधी को वे क्षुद्र अपराधी समझते हैं।

19. सफेदपोश अपराधों की समस्या केवल सामाजिक नहीं है। प्रत्युत आवश्यक रूप से एक विधिक समस्या है। सदरलैण्ड का मत है कि सफेदपोश अपराधों को गम्भीरता के आधार पर अन्य सामान्य अपराधों से अलग नहीं किया जा सकता। वस्तुतः सफेदपोश अपराधी समाज के लिए सामान्य अपराधियों की तुलना में अधिक घातक होते हैं।

20. सफेदपोश अपराध पेशेवर अपराध संगठित अपराध की कोटि का होता है जो यह न केवल जानबूझकर किया जाता है बल्कि संगठित रूप से किया जाता है। अपराध के संगठन औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं।

3.7 सफेदपोश अपराध के कारण

सफेदपोश अपराध की समस्या मनुष्य की अधिकाधिक धनार्जन करते तथा भौतिक सुख-समृद्धि, एशोआराम आदि विलासितावादी वस्तुओं के संग्रहण करने की प्रवृत्ति के कारण उत्पन्न हुई है। धन-संग्रहण का उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ महत्व आधुनिक समाज में उच्चतर प्रस्थिति का निर्धारक मापदण्ड बन चुका है। आज के प्रतियोगितापूर्ण अर्थव्यवस्था व औद्योगिक समाज के बदलते परिवेश में जहाँ मनुष्य की सफलता तथा कीर्ति उसके अपराध द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली भौतिक उपभोग की वस्तुओं पर निर्भर रहती है, वहाँ प्रत्येक व्यक्ति में अपने अन्य साथियों की अपेक्षा अधिकाधिक धन संग्रहण करने तथा भौतिक विलासितावादी वस्तुओं से आच्छादित रहने की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। अपनी इस भौतिक प्यास को मिटाने के लिए व्यक्ति अपनी बुद्धि का

उपयोग ऐसी योजनाओं में करता है जो सफेदपोश अपराध के रूप में गोचर होती है तथा उसके लिए लाभप्रद सिद्ध होती हैं। परन्तु ध्यातव्य है कि कभी कभी किसी आवश्यकता विशेष के कारण विवश होकर भी सफेदपोश अपराध प्रकाशित किये जा सकते हैं। किन्तु सफेदपोश अपराध के उत्पत्तिमूलक कारणों को और भी अधिक स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित कारणात्मक सूत्रों का उल्लेख कर देना यहाँ पर आवश्यक प्रतीत होता है-

1. पूँजीवादी अर्थव्यवस्था जितनी ही अधिक सशक्त होगी, सफेदपोश अपराध उतने ही अधिक घटित होंगे।
2. व्यक्ति में धन-लोलुपता की प्रवृत्ति जितनी ही अधिक होगी, उनमें अवैधानिक कार्य करने की प्रवृत्ति उतनी ही अधिक होगी।
3. आर्थिक साधनों का वितरण जितना ही असमान होगा, उच्चतर वर्ग के सदस्यों अर्थार्जन करने के सन्दर्भ में सामाजिक तथा अवैधानिक कार्य करने की प्रवृत्ति उतनी ही अधिक होगी।
4. भौतिकवादी वस्तुओं को संग्रहण करने की प्रवृत्ति जितनी ही अधिक विकसित होगी व्यक्तियों में सफेदपोश अपराधिता की प्रवृत्ति उतनी ही अधिक होगी।
5. वर्ग चेतना की प्रवृत्ति जितनी ही उग्रतर होगी लोगों में अपनी सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति उच्चतर बनाये रखने के लिए अपने व्यावसायों के सन्दर्भ में अवैधानिक तथा असामाजिक साधनों के आधार पर अर्थार्जन करने की प्रवृत्ति उतनी ही अधिक होगी।
6. बड़े-बड़े व्यापारियों, व्यावसायियों तथा उच्च पदस्थ अधिकारियों का वर्ग अपनी व्यापारिक व व्यावसायिक सफलता तथा वैयक्तिक लाभ को कानून अथवा नैतिक नियमों के अनुपालन की अपेक्षा जितना ही अधिक महत्वपूर्ण समझेगा उनमें सफेदपोश अपराध करने की मनोवृत्ति उतनी ही अधिक होगी।
7. व्यापार-वाणिज्य तथा उद्योग नियंत्रक कानून जितने ही अधिक उदारवादी, नमनीय, शिथिल निष्क्रिय एवं दोषपूर्ण होंगे, सफेदपोश अपराध उतने ही अधिक बढ़ेंगे।
8. बड़े-बड़े उद्योगपतियों, व्यापारियों व्यावसायियों एवं अधिकारियों का राजनीतिकतंत्र, पुलिसतंत्र तथा न्यायालयीतंत्र से जितना ही अधिक निकटस्थ सम्बन्ध होगा, उनमें सफेदपोश अपराध करने की अन्मेषिता उतनी ही अधिक होगी।
9. सामान्य जनता जिसे आहत व्यक्तियों का एक समष्टि कहा जा सकता है में सफेदपोश अपराधियों द्वारा हुई क्षति के प्रति चेतना तथा अज्ञानता का अभाव जितना ही अधिक होगा समाज में सफेदपोश अपराधिता की आवृत्ति उतनी ही

अधिक होगी।

10. सामान्य जनता में सफेदपोश अपराधियों के प्रति सम्मान प्रदानकरने की जितनी ही अधिक मनोवृत्ति होगी समाज में सफेदपोश अपराध उतने ही अधिक होगे।

11. सामान्य जनता सफेदपोश अपराधियों के काले कारनामों से जितना अधिक परकीकृत होगी समाज में ऐसे अपराधियों की संख्या उतनी ही अधिक बढ़ेगी।

12. कोई समाज जितना ही अधिक विघटित होगा सफेदपोश अपराध उसमें उतने ही अधिक होंगे।

3.8 सफेदपोश अपराध के स्वरूप तथा प्रकार

सदरलैण्ड तथा अन्य अनेक समाजशास्त्रियों एवं अपराधशास्त्रियों ने अपने अपने अध्ययनों में सफेदपोश अपराध के विभिन्न स्वरूपों का विवेचन किया है जिनमें धोखाधड़ी, विश्वासघात, जालसाजी, जमाखोरी, चोरबाजारी, कालाबाजारी, घूसखोरी, मिलावट, तस्करी, टैक्स बचाना, विज्ञापनों में झूठा व अयथार्थ वर्णन, पेटेन्ट्स तथा कापीराइट एवं व्यापार-चिन्ह या ट्रेडमार्क सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन इत्यादि समविष्ट है। वस्तुतः सफेदपोश अपराध का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि यह कह पाना अत्यन्त कठिन है कि मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में चाहे वह व्यक्तिगत हो या सामाजिक या व्यावसायिक, न्यायालयी हो या चिकित्सालयी, प्रशासनिक हो या गैर-प्रशासनिक, शासकीय हो या गैर-शासकीय, राजनीतिक हो या धार्मिक, कुछ ऐसी अनियमितताएँ पाई जाती हैं जिन्हें इन क्षेत्रों में लगे हुए बहुत से व्यक्ति अपने दिन-प्रतिदिन के व्यवहार में करते ही रहते हैं। सामान्यतः सफेदपोश अपराध के प्रमुख स्वरूपों को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है -

1. व्यक्तियों द्वारा वैयक्तिक स्तर पर तदर्थ आधार पर किये जाने वाले सफेदपोश अपराध -

सफेदपोश अपराध का यह वह स्वरूप है जिसे कोई व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन में गैर-व्यापारी या गैर-व्यावसायी जीवन में व्यक्तिगत लाभ के लिए वैयक्तिक स्तर पर तदर्थ रूप में करता है। कहना न होगा कि सम्पत्तिकर या आयकर से बचने के उद्देश्य से समाज के अनेक सम्मानीय व उच्च पदस्थ व्यक्तियों में अपनी सम्पत्ति अथवा आय के सम्बन्ध में जान-बूझ कर मिथ्यात्मक विवरण प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। इसी प्रकार क्रय-विक्रय कर से बचने की नीयत से अनेक क्रेता एवं विक्रेता असत्य कथन करते हैं। स्पष्टतः ऐसा करना सफेदपोश अपराध का ही एक प्रकार है। इसी प्रकार जीवन-बीमा तथा सामान्य बीमा के प्रकरणों में बीमा कराने वाले तथा बीमा करने वाले दोनों ही पक्ष कपटपूर्ण तरीके अपनाते हैं ताकि उन्हें अधिकाधिक धनराशि प्राप्त हो सके। बीमे की

राशि समय से पूर्व प्राप्त करने के लालच में अनेक व्यक्ति जानबूझकर हत्या, आगजनी आदि घृणित अपराध करने में भी नहीं हिचकिचाते हैं। इसी प्रकार उधार पर वस्तुएँ लेना किन्तु उधार चुकाने की नियत न होना, जालसाजी एवं फरेबी करना, विश्वासघात एवं धोखाधड़ी, अपराधियों को आश्रय देना, अपराधियों को अपराधिक कार्य करने की दुष्प्रेरणा देना इत्यादि व्यक्तिगत स्तर पर किये जाने वाले सफेदपोश अपराध के ही उदाहरण हैं। वैयक्तिक स्तर पर किये जाने वाले सफेदपोश अपराध का एक प्रमुख प्रकार गबन भी है। प्रायः बैंकों के प्रबन्धक, निदेशक, कार्यालयों के लेखापाल, विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों के संरक्षक तथा संस्थापक तथा किसी भी आर्थिक निकाय से सम्बन्धित अधिकारी व सार्वजनिक सेक्युलर तथा सेक्रेट ट्रस्टों के व्यवस्थापक जो समाज के अभिभावक जैसे होते हैं, ऐसे अपराध करते हैं।

- व्यापारिक क्षेत्र में सफेदपोश अपराध
- व्यावसायिक क्षेत्र में सफेदपोश अपराध
- चिकित्सा व्यवसाय में सफेदपोश अपराध
- विधिक व्यवसाय में सफेदपोश अपराध
- अभियान्त्रिकी व्यवसाय में सफेदपोश अपराध
- दफ्तरशाही अथवा नौकरशाही क्षेत्र में सफेदपोश अपराध
- पुलिसतंत्रीय क्षेत्र में सफेदपोश अपराध
- स्थानीय स्वायत्त प्रशासन में सफेदपोश अपराध
- धार्मिक परिवेश में सफेदपोश अपराध
- ठेकेदारी वृत्ति में सफेदपोश अपराध
- राजनीतिक क्षेत्र में सफेदपोश अपराध
- शैक्षिक संस्थाओं में सफेदपोश अपराध।

"क्या सफेदपोश अपराध" अपराध है?

सामान्यतः अपराध समाज में कानून द्वारा निषिद्ध वह व्यवहार है जिसके लिए अपराधिक दण्ड संहिता में दण्ड निर्धारित है। यह दण्ड न्यायिक प्रक्रिया द्वारा जुर्माना, कारावास, मृत्यु तथा सुधारगृह के कारावास के रूप में अपराधी को दिया जा सकता है। किन्तु कुछ ऐसे भी व्यवहार होते हैं जो किसी व्यापारिक व व्यावसायिक परिप्रेक्ष्य में किये जाते है। ऐसे व्यवहार व्यापार व व्यवसाय विशेष के संदर्भ में हितकर होते हैं, किन्तु सार्वजनिक रूप से वे अहितकर होते हैं। इस प्रकार के व्यवहार करने वाले व्यक्तियों को भी दण्डित किया जा सकता है किन्तु ऐसे व्यवहारों के लिए अपराधिक दण्ड संहिता में

दण्ड का उल्लेख नहीं होता है। यद्यपि यदि उनके द्वारा अपनायी गयी व्यापारिक व व्यावसायिक अनियमितताओं का स्पष्टतः पता लग जाता है तो उन्हें उसके लिए न्यायालय द्वारा दण्डित किया जा सकता है, किन्तु ऐसे व्यक्ति इतने चतुर होते हैं कि वे कानून के चंगुल में फंसते नहीं हैं। वे अपनी तरकीब एवं चालाकी से कानून की परिधि में रहते हुए भी भयंकर अपराध करते रहते हैं। वे अपने कौशल, बुद्धि, धन तथा राजनीतिक सम्बन्धों के कारण अपने को कानूनी पकड़ से साफ बचाये रहते हैं। इस प्रकार एक तरफ ऐसे सामान्य दोषी तुच्छ अपराधी हैं जो अपनी बेवकूफी, मूर्खता तथा अज्ञानता के कारण कानून के चंगुल में फँस जाते हैं। वे प्रायः अशिक्षित या कम पढ़े लिखे एवं गरीबी में पलने वाले हैं दूसरी तरफ जो प्रायः धनी, समृद्ध, सुखी एवं ऐशो-आराम तथा सभ्य एवं सुसंस्कृत सामाजिक पृष्ठभूमि से सम्बद्ध है। इसका उद्देश्य असामाजिक तथा अवैधानिक ढंग से अधिकाधिक सम्पत्ति एवं भौतिक सुख-समृद्धि की वस्तुओं को अपार्जित करना होता है। ऐसे व्यक्ति समाज, देश एवं शासनतंत्र के नेता, प्रणेता, प्रतिनिधि पूँजीपति एवं सत्ताधारी होते हैं। इस प्रकार के प्रतिष्ठित एवं उच्च सामाजिक प्रस्थिति धारण करने वाले व्यक्तियों द्वारा उनके व्यावसायों के सन्दर्भ में किये गये अपराधों को आज सफेदपोश अपराध के नाम से जाना जाता है। अब यह प्रश्न उठता है कि क्या इस प्रकार के अपराधों को हम अपराध कह सकते हैं या नहीं? सदरलैण्ड ने अपनी पुस्तक "व्हाइट कॉलर क्राइम" के तृतीय अध्याय में विशेष रूप से इसी प्रश्न पर विचार किया है। सदरलैण्ड का मत है कि "अपराध की आवश्यक विशेषता यह है कि यह वह व्यवहार है जिसे राज्य के लिए हानिकर रूप में स्वीकार कर राज्य द्वारा निषिद्ध कर दिया गया है तथा जिसके विरूद्ध राज्य की प्रतिक्रिया हो, कम से कम अन्ततः दण्ड के रूप में हो सकती है।"

3.6 प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) सफेदपोश अपराध (White Collar Crime)पर विस्तृत अध्ययन किसने किया?

1. दुर्खीम 2. बेवर 3. मार्क्स 4. सदरलैण्ड

(2) बोहरा समिति का गठन भ्रष्टाचार के अध्ययन के लिये किया गया था।

1. सत्य 2. असत्य

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) सफेदपोश अपराध के कारणों को बतायें।

(2) सफेदपोश तथा रूढ़िगत अपराध में अंतर बतायें।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) सफेदपोश अपराध से आप क्या समझते हैं? स्दरलैण्ड के अपराध के इस स्वरूप को कैसे समझते हैं?

(2) "भारत में भ्रष्टाचार तथा नैतिक मूल्य" इस विषय पर एक निबंध लिखें।

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Edwin H. Sutherland and Donald R. Cressey (1968), Principles of Criminology, the times of India press. Bombay.
2. Talcott Parsons (1979), The Social System, Amerind, New Delhi.
3. Robert G. Caldwell (1956), Criminology, Ronald Press, New York.
4. Jones, Stephen (2009), Criminology. Oxford University Press, New York.
5. Singh, Shyamdhar (2008), Theories of Criminology, Sapna Ashok Prakashan, Varanasi.
6. Paranjape, N. V. (1999), Criminology and Penology, Central Law Publications, Allahabad.

इकाई -4 राजनीति का अपराधीकरण तथा नये अपराधी व्यक्तित्व

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 राजनीति के अपराधीकरण का अर्थ

4.3 नये अपराधी व्यक्तित्व

4.4 राजनीति तथा अपराधीकरण

4.5 राजनीतिज्ञों तथा सार्वजनिक कम्पनियों के भ्रष्टाचार पर आयोग

4.6 राजनीतिक तथा आर्थिक अपराधों के रोकथाम हेतु उपाय

4.7 लोकपाल तथा राजनीतिक अपराध

4.8 प्रश्न

4.9 संदर्भ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप राजनीतिक अपराधीकरण का तात्पर्य तथा इसके कारणों को जान सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

लोकतांत्रिक संस्थाएं समझदार नागरिकों के सहारे चलती हैं पिछले वर्षों में चौकाने वाली कुछ बातें हुई। अपराधियों की भागीदारी प्रबल होने के पुष्ट प्रमाण मिले हैं। राजनेताओं ने उनसे दूर रहने के बजाय उनका साथ लिया। घूसखोरी, कमीशनखोरी, अनियमितताओं के खुले प्रमाण सामने आये। किसी का कोई नुकसान नहीं हुआ। इसकी एक वजह थी कि जनता के पास दबाव बनाने की ताकत नहीं थी। मीडिया की उपस्थिति ने अचानक इस ताकत को शक्ल दी। गुजरात में मुसलमानों की बर्बर हत्याओं की मीडिया ने जिस तरह भर्त्सना की उसके असर से तमाम मुकदमें फिर से खुले। प्रियदर्शिनी मट्ट और जेसिका लाल के मुकदमों की दिशा बदली। आज का जैसा मीडिया होता तो क्या नब्बे के दशक का हवाला मामला सस्ते में निपट सकता था। यह मीडिया की नहीं, जनता की ताकत है। इसका बेहतर इस्तेमाल हो सकता है, बशर्ते जनता में गुणात्मक सुधार

हो। जनता में सुधार राजनीति में खुद-ब-खुद नजर आएगा।

4.2 राजनीति के अपराधीकरण का अर्थ

अतीत में महान साहित्य, संगीत और कला की रचना सम्भव नहीं थी, यदि उसे पसंद करने वाले और संरक्षण देने वाले न होते । वे आज हैं और आगे भी होंगे। फिर भी परिष्कृत रूचियों और ज्ञान-संधान प्रवृत्तियों के निरंतर विकास की आवश्यकता है। इसके मूल में ज्ञान है, जो समाज की दशा बदल सकता है। उच्चतर ज्ञान सबसे पहले आत्मवलोचन की प्रेरणा देता है।वह हमें श्रेष्ठ को चुनने की दृष्टि और निकृष्ट को त्यागने की वृत्ति देता है। नए और पुराने में काफी कुछ वरेण्य है और त्याज्य भी। प्रगतिशील, मानवीय, कल्याणकारी और युगांतरकारी मूल्यों को चुनने वाला समाज दुखी नहीं हो सकता। क्या हम उचित और अनुचित का फर्क कर पाते हैं? प्रायः हम राजनीति को गलीज कर्म मानकर कोसते हैं। यह जाने बगैर कि राजनीति समाज के श्रेष्ठतम मूल्यों का प्रतिनिधित्व करती है। हमारी राजनीति ऐसी नहीं है तो दोष किसका है? लुटेरों, लफंगों और हत्यारों को समाजसेवी का तमगा लगाने की छूट किसने दी? सॉक्रेटीस को जहर पिलाने वाले के पीछे स्वार्थी राजनेता थे। उसके शिष्य प्लेटो पर शायद इसी बात का इतना गहरा असर था कि उसने राजनेता के लिए विद्वान और विचारक होने की शर्त रखी। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में शैक्षिक योग्यताएं अनिवार्य बनाना उचित नहीं, पर कुछ मानवीय मूल्य तो होने चाहिए। लोकप्रिय होना या चुनाव जीत ले जाना एक गुण है, पर यही सब कुछ नहीं। जनता समझदार हो तो, लोकलुभावन बातें करके मूर्ख बनाने वाले भी सफल नहीं होंगे। पत्थर उछाल कर आसमान फोड़ने वाले भी हमें चाहिए, पर अंततः जरूरत तो सीधे-सादे, जागरूक ईमानदार नागरिकों की है।

पिछली शताब्दी में साठ के दशक में जब कुछ बाहुबलियों ने राजनीतिक नेताओं का सानिध्य प्राप्त करना प्रारम्भ किया तो पुलिस-प्रशासन के लिए अपराध नियंत्रण के मार्ग पर एक और बाधा खड़ी होनी शुरू हो गई थी। नेताओ द्वारा चुनावी सफलता के लिए बाहुबल के उपयोग ने उन्हें समाज में 'सम्मानित' स्थान पर बैठने का अवसर प्रदान किया तथा उनको दण्ड दिलाने की प्रक्रिया की गति धीमी होने लगी। आगे चलकर ये बाहुबली स्वयं चुनावी राजनीति में उतरने लगे और शताब्दी के अंत में ऐसे तत्वों की प्रायः सभी राजनीतिक खेमों में पैठ मजबूत होती गई, लेकिन ऐसे तत्व यह जानते थे कि उनकी रक्षा सत्ता के साथ जुड़े रहने में ही है। इसलिए वे चुनाव के पूर्व हवा के रूख का आकलन कर या फिर चुनाव के बाद त्रिशंकु स्थिति का लाभ उठाकर सत्ता का संरक्षण पाने में सफल होते रहे हैं। 21वीं शताब्दी के प्रारम्भ में इन बाहुबलियों का प्रभाव इतना अधिक व्यापक हो गया कि अब उनके बिना चुनावी सफलता का आकलन करना भी

MASY 09 18B

राजनेताओं के लिए मुश्किल हो गया। अब तो सत्ता संभाले लोग भी सत्ता में बने रहने के लिए जनता से यह कह कर वोट देने की अपील कर रहे हैं कि यदि वे सत्ता से बाहर रहे तो उन्हें जेल भी जाना पड़ सकता है या उनकी हत्या हो सकती है।

30-40 वर्ष पहले अपराध के दण्ड से बचने के लिए अपराधियों द्वारा राजनीतिक नेताओं की शरण में जाने का जो उपक्रम शुरू हुआ था अब उसकी चरम स्थिति है। कोई आँकड़ों से यह दावा भले ही करे कि उसके सत्ता में रहते हुए अपराध कम हुए हैं, लेकिन हकीकत यह है कि यह अब सत्ता के संरक्षण से ही नहीं, बल्कि स्वयं सत्ताधारियों ने आपराधिक कृत्य को राज-काज का मुख्य उद्देश्य बना लिया है। सत्ता के शिखर पर बैठे व्यक्ति और स्थायी तंत्र में संचालन की कमान संभालने वाले लोग, दोनों की अदालती निगरानी के जिस मुकाम पर पहुँच गये हैं उसका तर्कसंगत समाधान तभी संभव है जब मतदाता न केवल बाहुबलियों, बल्कि उनके संरक्षकों को भी अपने मत से वंचित कर उन्हें वहाँ भेजे जहाँ उनको वास्तव में होना चाहिए। निर्वाचन आयोग ने इसी दिशा में कतिपय प्रयास किए हैं और अब उनकी सफलता मतदाताओं की परिपक्वता पर निर्भर करती है।

प्रशासनिक तंत्र का राजनीतिकरण भी आज उतनी ही बड़ी समस्या है जितनी कि राजनीति का अपराधीकरण। निर्वाचन आयोग को चुनावों के पूर्व जिस तरह अधिकारियों के तबादले करने के लिए विवश होना पड़ रहा है वह प्रशासनिक तंत्र पर आयोग के अविश्वास को ही प्रकट करता है।

राजनीति का जिस रफ्तार से अपराधीकरण हुआ है उतनी ही तेजी से उसमें भ्रष्टाचार की जड़े भी फैली हैं। राजनीतिक सत्ता संभालने वाले अब बजट की व्यवस्था से धन अर्जित करने में लग गए हैं। इसके विरूद्ध कुछ साहसी लोगों ने अदालत में जाकर उनकी स्थिति को बेनकाब करने की कोशिश की है। शुभ संकेत यह है कि सत्ता का संरक्षण प्राप्त होने के बावजूद उनको दंडित करने की प्रक्रिया शुरू हो सकी है, क्योंकि ऐसे लोगों की सत्ता समीकरण में केन्द्रीय स्तर पर भी भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी है।

4.3 नये अपराधी व्यक्तित्व

समाज में बदलाव एक मौलिक नियम है। इस बदलाव की वजह से समाज के ताने-बाने तथा सामाजिक संस्थाओं में एक विघटन दिखाई पड़ता है। यह विघटन सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों ही प्रकार का होता है। बदलाव की इस प्रक्रिया से अपराध के आयाम भी बदलते है।

विज्ञान तथा तकनीक के क्षेत्र में बदलाव की वजह से समाज में जो उलझाव आते हैं, इसकी वजह से अपराध के आयाम तथा अपराधी व्यक्तित्व में भी बदलाव आ रहे हैं।

आज क सन्दर्भ में व्यक्तित्व की विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में अपराध को समझना क्य उचित होगा। आइजेन्क तथा शेल्डन का सिद्धान्त तथा अन्य सिद्धान्त क्या आज की स्थिति में महत्वपूर्ण है। इस प्रश्न का उत्तर जो भी हो परन्तु बदली हुई सामाजिक, आर्थिक-तकनीकि तथा वैज्ञानिक युग में अपराधी व्यक्तित्व में बदलाव आ रहे हैं। उदाहरण के तौर पर इस कम्प्यूटर इन्टरनेट युग में जो साइबर अपराध हो रहे हैं वे उन ही लोगों द्वारा किये जा रहे हैं जो अपने क्षेत्र में तकनीकि रूप से दक्ष तथा पढ़े लिखे लोग हैं। दूसरे उदाहरण के तौर पर संगठित आतंकवादी गतिविधियों को संचालित करने के लिए भी ऐसे आपराधिक प्रवृत्ति के लोग जिम्मेदार हैं जो बौद्धिक रूप से तथा तकनीकि रूप से दक्ष हैं। आज बदलती हुई परिस्थितियों में इन अपराधों के पीछे निहित कारण भी अलग हैं। पहले जहाँ अपराध आर्थिक तथा अन्य फायदे के लिये किये जाते थे, आज के समय में एक विचारों की प्रवृत्ति भी अपराधों को करने के लिए प्रेरित करती हैं। राजनीति तथा अपराधी गठजोड़ एक नई तरह की चुनौती बनकर सामने आयी है।

4.4 राजनीति तथा अपराधीकरण

यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि वर्तमान भारतीय समाज में सफेदपोश अपराध की व्यापकता में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। यद्यपि किसी भी समाज में सफेदपोश अपराधियों की संख्या का अनुमान लगाना या उनकी वास्तविक गणना करना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन कार्य अवश्य है। इस सन्दर्भ में जो भी दत्त-सामग्री प्राप्त होती है, वे अपराध सम्बन्धी पुलिस रिपोर्टों, पकड़े गये अपराधियों की संख्या या बन्दीगृहों में रह रहे दण्डित अपराधियों पर आधारित होते हैं। किन्तु, सफेदपोश अपराधी ऐसे उच्च सामाजिक आर्थिक वर्ग के व्यक्ति होते हैं जिनके अपराधिक कृत्य न तो पुलिस रिपोर्टो में देखे जा सकते हैं और न ही न्यायालय द्वारा वे सिद्ध दोष अपराधी होते हैं। ऐसे अपराधियों को तो कारागार में जाने का कोई प्रश्न ही नहीं है।

वस्तुतः सफेदपोश अपराधी ऐसे उच्च सामाजिक-आर्थिक तथा राजनैतिक वर्ग के सदस्य होते है जिनकी समाज में पहचान उनके धन से नहीं प्रत्युत उनकी प्रतिष्ठा व सम्मान से होती है। भला ऐसे महानुभावों का अपराधिक प्रमाण उपलब्ध करना सम्भव नहीं है। क्लीनार्ड एवं क्वीनी का यह कहना है कि सफेदपोश अपराधियों का जीवन भूमिका के चारों ओर परिभ्रमण नहीं करता। अधिकतर तो वह सम्मानयुक्त नागरिक की भूमिका ही अदा करता है। सन 1995 के भारत के हवाला काण्ड तथा वर्तमान में घटित स्पेक्ट्रम घोटाला काण्ड ने यह दर्शाया है कि उसमें लिप्त सभी व्यक्ति उच्च पदस्थ व्यक्ति थे। कोई मन्त्री था तो कोई बहुत बड़ा ऑफिसर। फिर ऐसे व्यक्तियों के अपराधिक कृत्यों को प्रतिबिम्बित करना क्या कोई आसान कार्य है?

यह निश्चित है कि भारत में सफेदपोश अपराध व अपराधियों की कोई अधिकृत सूचना उपलब्ध नहीं है। किन्तु इस तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि समकालीन भारतीय समाज में सफेदपोश अपराध एक भयानक राष्ट्रीय समस्या के रूप में उभरकर सामने आयी है। ऐसे अपराधों की वृत्ति समस्या अत्यन्त तीव्रता के साथ बढ़ी है। हवाला लेन-देन, गबन, कर वंचना, वित्तीय धोखेबाजी, मिलावट अथवा स्वास्थ्य व सुरक्षा सम्बन्धी कानूनों का उल्लंघन, कर्मचारियों द्वारा चोरी,उपभोक्ताओं के साथ धोखाधड़ी, खाद्यपदार्थों एवं दवाओं में मिलावट, बैंकों तथा वित्त सम्बन्धी धोखेबाजी, विदेशी विनियमों का उल्लंघन, आयात-निर्यात उल्लंघन औद्योगिक नियमों का उल्लंघन, वाणिज्यिक घूसखोरी, काला बाजार, तस्कर बाजार, जमाखोरी और चिटफण्ड घोटाले आयकर एवं उत्पाद शुल्क वंचना,आयात लाइसेंसों की अवैध बिक्री निगमों व बड़े-बड़े उद्योगों व विश्वविद्यालयों में हिसाब किताब की हेरा-फेरी/लोकसेवा आयोग, उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग, माध्यमिक शिक्षा आयोग, तथा प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षकों की चयन-प्रक्रिया में घूसखोरी, रिश्वतखोरी किस प्रकार व्याप्त है, सर्वविदित नहीं तो भी भारत के एक जागरूक नागरिक से छिपी बात नहीं है।

आज के भारत मं तीव्र सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन हो रहे हैं। इनका प्रायः सभी संस्थाओं पर प्रभाव पड़ रहा है। सफेदपोश अपराध के कई नए आयाम उभरे हैं। सामाजिक-राजनैतिक संस्थाएँ बहुत तेजी से परिवर्तित हो रही हैं और सांस्कृतिक आदर्शमानक उनके साथ-साथ परिवर्तित नहीं हो पाये हैं। इसलिए आधुनिक भारत में सांस्कृतिक विलम्बन पाया जाता है। पिछले कुछ वर्षों में प्रस्थिति उन्नयन के लिए लोगों की आकांक्षाएँ बहुत उच्च हुई हैं। अनेक लोगों ने उच्च प्रस्थिति प्राप्त करने के लिए अनाचारों को अपनाया है। पहले अपराध प्रायः समाज में आर्थिक दृष्टि से विपन्न और असुस्थित लोग अधिक करते थे। परन्तु अब ऐसी स्थिति नहीं है। आज समाज में आर्थिक अपराध और महापराध अक्सर आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न और सुस्थित लोग अधिक करते हैं। कर चोरी, तस्करी, और रिशवत खोरी कुछ ऐसे सामान्य अपराध हैं जो समाज के उच्च वर्गों के लोगों द्वारा सम्पादित किये जाते हैं। 2 जी स्पेक्ट्रम घोटाला तथा केन्द्रीय कैबिनेट के मंत्रियों तथा सांसदों का जेल जाना एक नई हकीकत की तरफ इशारा करता है। कामनवेल्थ गेम्स घोटाला भी राजनैतिक व्यक्तियों द्वारा अपराध में लिप्त होने के पर्याप्त सबूत देता है।

समाज में शक्ति एवं सत्ता भी अपराध का एक सशक्त कारण है। शक्तिमान एवं सत्ताधारी व्यक्तियों में अपने प्रभाव और सत्ता के दुरूपयोग करने की प्रवृत्ति पायी जाती है। व्यापार, व्यवसायों और सरकारी सेवाओं में रत शिक्षित लोगों में सफेदपोश अपराध विशेष रूप से देखने में आता है। ऐसा कौन भारतीय नागरिक होगा जिसने तहलका डॉट

कॉम के बारे में न सुना हो। क्रिकेट मैच फिक्सिंग मामले से मशहूर हुए तहलका, डॉट कॉम ने गुप्त कैमरों की मदद से रक्षा सौदे में राजनीतिज्ञों और सैन्य अधिकारियों द्वारा रिश्वत लेने के तथ्य का खुलासा करके भारत के अन्धे नागरिकों को नेत्र प्रदान कर दिया। तहलका डॉट कॉम के सम्पादक तरूण तेजपाल ने नई दिल्ली में विशिष्ट लोगों के मध्य टेपों को जारी किया। पूरे मामले के खुलने के बाद देश की राजनीति में भूचाल आ गया। कहना न होगा कि आज देश में सफेदपोश अपराध की गति में जिस दर से निरन्तर वृद्धि होती जा रही है, समाज और राष्ट्र के लिए महाघातक है। एतदर्थ, इस अपराधिक गतिविधि पर नियन्त्रण आवश्यक है क्योंकि इससे जहाँ एक ओर नैतिकता का पतन होता हैं, वहीं दूसरी ओर सामाजिक विघटन को प्रोत्साहन मिलता है।

वर्तमान में 2 जी स्पेक्ट्रम तथा कॉमनवेल्थ घोटाला अपराध तथा राजनीति के गठजोड़ को दर्शाता है। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ दशकों पूर्व तक आपराधिक न्याय प्रशासकों का ध्यान केवल रूढ़िगत अपराधों पर ही केन्द्रित था तथा सफेदपोश अपराधों के प्रति वे विशेष सजग नहीं थे। परन्तु गत तीन दशकों से वे सफेदपोश अपराधों की रोकथाम के लिए भी उतने ही प्रयत्नशील हैं जितने कि अन्य सामान्य अपराधों के लिए। सन 1988 में किये गये कम्पनी विधि में संशोधन, एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम, 1969 के परिवर्तनों, फेरा कानून में 1992 के संशोधनों, बैंकिंग और इन्शोरेन्स सम्बन्धी कानूनों में किये गये सुधारों से स्पष्ट है कि सरकार सफेदपोश अपराधों के प्रति चिंतित है और इनके निवारण के लिए आवश्यक कदम उठा रही है। लोकपाल और लोकायुक्तों की नियुक्ति के परिणामस्वरूप राजनीतिक क्षेत्र मे व्याप्त भ्रष्टाचार पर नियंत्रण पाना संभव हो सकेगा।

भारत में राजनीतिक अपराधीकरण एक चुनौती

क्या हमारे समाज में भ्रष्टाचार को रोकना सम्भव है? कई नेता जब प्रथम बार सत्ता में आते हैं तो घोषणा करते हैं कि वे भ्रष्टाचार मिटाने के लिए वचनबद्ध हैं, लेकिन जल्दी ही वे स्वयं भ्रष्ट हो जाते हैं और धन इकट्ठा करना शुरू कर देते हैं। 1977 में जब बंगाल में कम्युनिस्ट सरकार सत्ता में आई, तब यह कहा जा रहा था कि यह कुछ ही वर्षों में भ्रष्टाचार समाप्त कर देगी। आज पार्टी में अधिकतर सत्ताधारी नेता इस हद तक भ्रष्टाचार में लिप्त है कि पोलिटब्यूरो का एक सदस्य, जो एक समय त्रिपुरा का मुख्यमंत्री था, को अप्रैल 1995 में पार्टी से ही इस कारण निकाल दिया गया, क्योंकि उसने पार्टी के शीर्षस्थ व्यक्ति को भ्रष्ट और भाई भतीजावाद में लिप्त होने का दोषी ठहराया। 1984में जब राजीव गाँधी प्रधानमंत्री बने उन्होंने भी भ्रष्टाचार के विरूद्ध जंग

का ऐलान कर दिया लेकिन जल्दी वे स्वयं बोफोर्स घोटाले में आरोपित हो गये। इस प्रकार भ्रष्टाचार एक संस्थात्मक रूप ले चुका है।

भ्रष्टाचार के विषय में कई भ्रामक धारणाएं हैं जिनको हमें मिटाना पड़ेगा यदि इससे हम वास्तव में लड़ना चाहते हैं । इनमें से कुछ इस प्रकार हैं : भ्रष्टाचार जीवनशैली बन गया है और अब इसके विषय में कुछ भी नहीं किया जा सकता, या कि भ्रष्टाचार स्वतंत्रयोत्तर काल की घटना है और यह जनतंत्र में लोगों को अत्यधिक आजादी देने का परिणाम है या कि गरीब और पिछड़े देशों के लोग सामान्यतः बेईमान और स्वभाव में अविश्वसनीय होते हैं और आसानी से ललचा जाते हैं, जबकि विकसित देशों के लोग भ्रष्टाचार में कम लिप्त होते हैं। या कि भ्रष्टाचार केवल निम्न या अधीनस्थ स्तर पर ही होता है, या कि भ्रष्टाचार शिक्षित लोगों की अपेक्षा अशिक्षित लोगों में अधिक पाया जाता है या कि भ्रष्टाचार प्रमुखतः राजनीतिज्ञों के कारण फैलता है। यह सभी भ्रमात्मक तथ्य अत्यन्त भद्दे और अशोधित हैं और भ्रष्टाचार को रोकने के उपायों की योजना बनाते समय हमें इनसे सावधान रहना है।

भ्रष्टाचार को कम करने के कुछ तरीके सुझाए गये हैं। ये हैं : एक, भ्रष्टाचार को नियन्त्रित करने के लिए हमें कानून, कार्यविधि, और प्रशासन पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। विशिष्ट स्तर और विशिष्ट व्यक्तियों के विशेष स्थितियों में काम करने और व्यवहार करने के सम्बन्ध में कानून और नियमों का होना आवश्यक है। 'बुरे' कानूनों/नियमों को समाप्त किया जाना चाहिए। यदि कानून/नियम अत्यन्त कठोर, जटिल और द्विअर्थक हों तो इससे भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलेगा ही। कानून ऐसे न हों कि उनमें विवेक प्रयोग की अत्यधिक छूट हो। विवेक का प्रयोग अधिकारी के स्तर और उसकी भूमिका के आधार पर निश्चित होना चाहिए। प्रशासनिक कारकों में संरचनात्मक और प्रकार्यात्मक दोनों ही कारक शामिल हैं। संगठन की संरचना किस प्रकार की है। यह तथ्य भ्रष्टाचार के लिए कमजोरियों का निर्धारण करेगा। प्रकार्यात्मकता कम करने की निरन्तर प्रक्रिया को इंगित करती है जो कि कार्य की गुणवत्ता, परिमाण, निरीक्षण तथा मान्य कमियों की अधिकता दर्शाती है। दो, कृत्रिम कमी और अभावों पर नियंत्रण हो जिससे अवैध संतुष्टि की सुविधा को बल मिलता है, तीन, सतर्कता में वृद्धि हो। यह एक भ्रम है कि सतर्कता से कुशलता में बाधा उत्पन्न होती है, बल्कि यह तो इसमें वृद्धि करती है। संदिग्ध अधिकारी जिनकी निष्ठा संदेहास्पद हो, को संवेदनशील पदों से दूर रखा जाये। भ्रष्टाचार के ज्वलंत बिन्दुओं का अचानक निरीक्षण किया जाये। चार, उदारीकरण की नीति को सावधानी से लागू किया जाये। कभी कभी उदारीकरण और मुक्त बाजार की नीतियाँ भ्रष्टाचार को कम करती है। लेकिन वर्तमान में उदारीकृत अनुमतियाँ, कोई 'पक्षपात' प्राप्त करने के बदले में

स्वीकृति की जाती है। अमेरिका, जापान, दक्षिणी कोरिया, इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड और मलेशिया जैसे पूंजीवादी देश अत्यधिक भ्रष्ट समाजों में गिने जाते हैं। जापान में तो आए दिन हम भ्रष्टाचार, घोटालों आदि के विषय में सुनते रहते हैं जो कि बेईमानी और दम्भ के संस्थानीकरण को दर्शाते हैं। पांच, चुनाव के खर्चों पर सख्ती से नियंत्रण लगाया जाये। अन्तिम, भ्रष्टाचार को सफलता से रोकने के लिए लोगों का सहयोग लिया जाना चाहिए।

भारत जैसे प्रजातंत्र में क्या लोग कभी यह महसूस करेंगे कि भ्रष्टाचार जैसी समस्या से लड़ने के लिए उन्हें भूमिका निभानी है? वास्तव में अधिकतर भ्रष्टाचार इसलिए होता है क्योंकि लोग सहनशील होते हैं और इसके विरूद्ध हल्ला-गुल्ला नहीं करते हैं तथा शक्तिशाली मंच की कमी भी होती है। यद्यपि अनेक बुद्धिजीवी, शिक्षित, सुपरिचित और स्पष्टवादी नागरिक देश की इस शैतानी समस्या के प्रति चिन्तित रहते हैं लेकिन वे अपना विरोध, शक्तिशाली जनमत बनाने में नहीं लगा पाते और असफल हो जाते हैं। जिम्मेदार और जागरूक नागरिकों का सम्मिलित प्रयास भ्रष्टाचार के स्तर को नीचे गिरा सकता है। हमारे विश्वविद्यालयों के छात्र भी ऐसे समाजोन्मुखी उद्देश्यों को लेकर इस बुराई के विरूद्ध आन्दोलन प्रारम्भ कर सकते हैं।

एक और प्रभावशाली उपाय ऐसे तरीकों को लागू करना हो सकता है जो राजनैतिक दलों को चुनावी धन को स्थाई रूप से प्राप्त करने में मदद करें, या केन्द्रीय सरकार चुनाव कोष से चुनाव को वित्तीय व्यवस्था प्रदान करें। यह व्यवस्था जर्मनी, नार्वे और स्वीडन और यूरोप के कुछ प्रगतिशील देशों में अपनाई जा रही है। राजनीतिक दलों को राज्य द्वारा आर्थिक सहायता पूर्व चुनावों में उनको मिले वोटों के आधार पर की जा सकती है। यह धन प्रति वोट के हिसाब से, यों कहिए दो रूपये प्रति वोट, या इसी प्रकार निश्चित किया जा सकता है। प्रति वोट के हिसाब से धन देने का विचार संसद में हाल के ही वर्षों में चर्चा का विषय बना है। मुद्रास्फीति की वर्तमान दर पर संसद और विधानसभाओं के चुनाव के लिए लगभग 1000 करोड़ रूपये की आवश्यकता है। क्योंकि चुनाव प्रति 5 वर्ष में होते हैं अतः सरकार को केन्द्रीय बजट में केवल 200 करोड़ रूपये वार्षिक रखने होंगे। क्योंकि हमारा वार्षिक बजट 50,000 करोड़ रूपये से भी अधिक का होता है, इसका अर्थ हुआ कि वार्षिक बजट में 0.4 प्रतिशत ही चुनाव पर खर्च होगा। यदि सरकार यह समझती है कि इतना थोड़ा सा धन भी नहीं दिया जा सकता तो वोटों पर चुनाव कर लगाया जा सकता है। चुनाव को सरकारी सहायता भ्रष्टाचार को काफी हद तक कम करेंगीं। चुनावों में राज्य द्वारा धन दिया जाना न केवल भ्रष्ट व्यापारियों एवं स्वार्थी समूहों से आने वाले योगदान को कम करेगा बल्कि स्वतंत्र

एवं स्वच्छ चुनावों में भी योगदान करेगा और विधायिकाओं में ईमानदार व्यक्तियों को आकर्षित करेगा तथा विविध पार्टियों द्वारा खर्च किये गये धन को समाप्त करेगा।

4.5 राजनीतिज्ञों और सार्वजनिक कम्पनियों के भ्रष्टाचार पर आयोग

गत 52 वर्षों में राजनीतिज्ञों और सार्वजनिक कम्पनियों के विरूद्ध लगे भ्रष्टाचार के आरोपों की जाँच के लिए भारत सरकार द्वारा दो दर्जन से भी अधिक आयोग (1955 और मार्च 2000 की बीच) नियुक्त किये जा चुके हैं। इनमें से नौ आयोग ने तो 1963 से 1983 तक ही विविध राज्यों के मुख्यमंत्रियों के विरूद्ध नियुक्त किये गये थे। ये थे : पंजाब के मुख्यमंत्री सरदार प्रताप सिंह कैरों के विरूद्ध दास आयोग (1963), जम्मू कश्मीर के मुख्यमंत्री बख्शी गुलाम महमूद के विरूद्ध आयंगर आयोग (1965), गोवा के मुख्यमंत्री दयानन्द भाण्डोकर के विरूद्ध कपूर आयोग (1968), उड़ीसा के मुख्यमंत्री बीजू पटनायक के विरूद्ध खन्ना आयोग (1967), असम के मुख्यमंत्री वी0 के0 मेहताब के विरूद्ध मधोकर आयोग (1968), तमिलनाडु के मुख्यमंत्री करूणानिधि के विरूद्ध सरकारिया आयोग (1976), कर्नाटक के मुख्यमंत्री देवराज अर्स के विरूद्ध ग्रोवर आयोग (1977), आन्ध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री वेंगल राव के विरूद्ध विमदा लाल आयोग (1977), और पंजाब के मुख्यमंत्री जैलसिंह के विरूद्ध गुरूदेव सिंह आयोग (1979)।

मंत्रियों के विरूद्ध पांच आयोग इस प्रकार थे : केन्द्रीय वित्त मंत्री टी. टी. कृष्णमाचारी (जीवन बीमा निगम के अध्यक्ष और सचिव भी) के विरूद्ध छागला आयोग (1956), बिहार के पांच मंत्रियों के विरूद्ध अय्यर आयोग (1967), बिहार के 13 मंत्रियों के विरूद्ध मधोलकर आयोग (1968), केरल के मंत्री आर. के. कुंजू के विरूद्ध आयोग (1969), और केन्द्रीय रक्षामंत्री बन्सीलाल के विरूद्ध (ठेके देने पर) रेड्डी आयोग (1977)।

भ्रष्टाचार के ही आरोपों के विरूद्ध पांच अन्य आयोग इस प्रकार थे : सरकारी मामलों में अतिरिक्त संवैधानिक अधिकारों का प्रयोग करके हस्तक्षेप करने तथा भ्रष्टाचार के विरूद्ध जांच के लिए मोरारजी देसाई के पुत्र कान्ति भाई देसाई और प्रधानमंत्री चरण सिंह की पत्नी गायत्री देवी के विरूद्ध वैद्यालिंगम आयोग (1979), केरल और तमिलनाडु स्पिरिट घोटाले के विरूद्ध, कैलासम सदाशिवम और रे आयोग (1981), बोफोर्स तोप सौदे के भ्रष्टाचार के आरोपों पर जांच हेतु शंकरानन्द समिति (1990) और सुरक्षा घोटाले पर जानकीरमन समिति (1992)।

बोहरा समिति की स्थापना जुलाई 1993 में भारत में भ्रष्टाचार के अध्ययन के

लिए की गयी थी जिसमें सरकारी कार्यकर्ताओं, राजनैतिक महानुभावों, अपराधी गठजोड़ और माफिया संगठनों के बीच सम्बन्धों का अध्ययन किया जाना था। समिति ने अक्टूबर 5, 1993 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। सरकार 18 माह तक इस रिपोर्ट को दबाए रही लेकिन संसद में विपक्षी दलों के दबाव डाले जाने पर 1 अगस्त, 1995 को यह रिपोर्ट संसद के दोनों सदनों में रखी गई। इस रिपोर्ट में राजनीतिज्ञों और अपराधियों के बीच गठजोड़ पर विध्वंसक प्रहार किए गये हैं इसमें कहा गया है कि माफिया जाल एक समानान्तर सरकार चला रहा है जिससे राज्यतंत्र निरर्थक हो गया है। समिति ने तो यह भी कह डाला कि 'कुछ' सांसद और विधायक केवल इन 'गिरोहों' और सशस्त्र सेनाओं के बल पर ही राजनैतिक सत्ता में आए हैं। समिति में एक सर्वाधिकार एजेन्सी की स्थापना की सिफारिश की है जो सभी एजेन्सियों से सूचना एकत्र करे, उनकी तुलना करें, और उन अपराधी सिन्डीकेटों, तस्कर गिरोहों और देश में कार्यरत आर्थिक लॉबीज के विरूद्ध तुरन्त प्रभावी और निरोधक कार्यवाही करे जिन्होंने स्थानीय स्तर पर सरकारी तंत्र से तथा राज्य और केन्द्रीय स्तर पर राजनीतिज्ञों और प्रचारतंत्र से वर्षों से सम्पर्क जाल विकसित कर लिया है।

भारत में 11 राज्यों में (बिहार, हिमांचल प्रदेश, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और उत्तर प्रदेश आदि सहित) मंत्रियों, विधायकों, सरकारी कार्यकर्ताओं तथा अन्य सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के विरूद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच के लिए लोकायुक्त की स्थापना की गई है। राष्ट्रीय स्तर पर ऐसी कोई संस्था नहीं है जो मंत्रियों की ईमानदारी व नैतिकता पर निगाह रखने का कार्य करती रहे। यद्यपि अगस्त 1992 में और पुनः अगस्त 1994 में प्रधानमंत्री ने वायदा किया था कि स्वीडन के ओमबड्समैन और यूरोप के कुछ अन्य देशों की तरह यहाँ भी कानूनी तौर पर केन्द्रीय स्तर पर एक संस्था बनाई जायेगी। गत 32 वर्षों (1968 और 2000 के बीच) में पांच बार (1968, 1971, 1977, 1985 और 1989 में) लोकपालों को नियुक्त करने के सम्बन्ध में लोकसभा में लोकपाल विधेयक प्रस्तुत किया गया था किन्तु पारित कभी नहीं किया गया। संयुक्त मोर्चा सरकार ने सितम्बर 1996 में लोकपाल विधेयक संसद में पेश किया था जो भी पास नहीं हो सका। 1999 में अटल बिहारी वाजपेयी की राजग गठबन्धन सरकार ने भी लोकपाल बिल पास करने का आश्वासन दिया था परन्तु अगस्त 2000 तक कुछ नहीं हो पाया है। वास्तव में रूकावट यह है कि राजनैतिक इच्छाशक्ति का अभाव रहा है। लोकपाल का दूसरा स्थानापन्न नहीं है जिसका कार्यक्षेत्र उच्च पदस्थ लोगों , प्रधानमंत्री सहित, के विरूद्ध भ्रष्टाचार आरोपों की जांच करने तक ही सीमित हो। भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम के अन्तर्गत मुकदमा चलाना केवल तभी सम्भव है जब शिकायतकर्ता को सरकार की अनुमति प्राप्त हो जाये जो कि शायद ही

कभी किसी खास कारण पर दी जाती है। जब तक सरकार सहमत न हो कोई भी नागरिक विशेष अदालत अधिनियम के अन्तर्गत अपील नहीं कर सकता कि कार्यवाही के लिए प्रथम दृष्टा मामला बनता है । लोकपाल में यह दोनों बाधाएं नहीं होगी जो कि किसी व्यक्ति द्वारा एक शपथ पत्र भर कर चलाया जा सकता है।

4.6 राजनीतिक तथा आर्थिक अपराधों की रोक-थाम हेतु उपाय

भारत जैसे विशाल देश में जहाँ अधिकांश लोग अशिक्षित और गरीबी से पीड़ित हैं, अपराधों का बाहुल्य होना स्वाभाविक ही है। अतः आपराधिक न्याय-प्रशासकों के लिए अपराध निवारण, विशेषतः सफेदपोश अपराधों का निवारण, एक विकट समस्या बनी हुई है। तथापि सफेदपोश अपराधों की रोकथाम के लिए निम्नलिखित उपाय प्रभावी हो सकते हैं -

1. प्रचार-प्रसार के माध्यमों द्वारा जनता में इन अपराधों के प्रति लोक-चेतना जागृत करना आवश्यक है। यह कार्य विधिक साक्षरता अभियान द्वारा अधिक अच्छी तरह सम्पन्न हो सकता है। इसके लिए दूरदर्शन, रेडियो, फिल्म, रंगमंच आदि श्रव्य-दृश्य (आडियोविज्यूअल) माध्यमों का प्रयोग भी किया जा सकता है। इनके द्वारा लोगों को सफेदपोश अपराधों के गम्भीर परिणामों से अवगत कराया जा सकता है ताकि वे इनसे दूर रहें और उन्हें करने वालों को प्रताड़ित करें।

2. सफेदपोश अपराधों की सुनवाई और विचारण के लिए विशेष अधिकरण गठित किये जाने चाहिए जिन्हें पाँच वर्ष तक की सजा देने की अधिकारिता हो।

3. इन अपराधों के निवारण हेतु कठोर कानूनी प्रावधान रखे जाने चाहिए तथा गम्भीरतम दण्ड की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि लोग इन अपराधों को करने से डरें और इनसे परावृत्त रहें। इन अपराधों के लिए ऐसे विधायन भी उचित एवं वैध माने जाएं जो भूतलक्षी प्रभाव रखते हैं।

   इन सन्दर्भ में भारत के द्वितीय राष्ट्रपति डा0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने लिखा है कि जमाखोरी, कालाबाजारी या सट्टाखोरी जैसे सफेदपोश एवं सामाजिक, आर्थिक अपराधों में लिप्त अपराधी देश के लिए सबसे घातक शत्रु हैं तथा उनके विरूद्ध कड़ी से कड़ी कार्यवाही की जानी चाहिए, भले ही वे कितने ही प्रतिष्ठित या प्रभावी व्यक्ति क्यों न हों । यदि इन्हें दण्डित किये बिना छोड़ दिया जाता है, तो लोगों का न्याय के प्रति विशवास उठ जायेगा। इन अपराधियों को, जो कि समाज के लिए गम्भीर खतरा उत्पन्न करते हैं, आजीवन कारावास और यहाँ तक कि मृत्युदण्ड भी दिया जाना चाहिए ताकि लोग ऐसे अपराधों से परावृत रहें।

4. कुछ विभिज्ञों का मानना है कि सफेदपोश अपराधियों को कारावास का दण्ड देने की बजाय कठोरतम दण्ड देना उचित होगा जो वास्तविक हानि से कई गुना अधिक हो।

5. भारतीय दण्ड विधि में 'सफेदपोश अपराध' शीर्षक का एक नया अध्याय जोड़ा जाना चाहिए ताकि इन अपराधों में लिप्त अपराधी सामान्य अपराधी की भाँति दण्डित किये जा सकें। इसके लिए वर्तमान दण्ड विधि में संशोधन करना आवश्यक होगा। इसके पूर्व 'सफेदपोश अपराध' की निश्चित विधिक परिभाषा करना नितान्त आवश्यक है।

6. भारत में निरन्तर बढ़ती हुई आपराधिकता को ध्यान में रखते हुए एक राष्ट्रीय अपराध निवारण आयोग का गठन किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है जो अपराध और अपराधियों से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं का सर्वेक्षण करता रहे और इन पर नियन्त्रण के प्रभावी उपचारात्मक उपाय सुझाता रहे।

7. सफेदपोश अपराध विरोधी अभियान में जनता की सक्रिय भागीदारी सम्भवतः सबसे अधिक प्रभावकारी सिद्ध होगी। जब तक जनता इन अपराधों के प्रति रोष और तिरस्कार नहीं दर्शाती, तब तक सफेदपोश अपराधों का निवारण कठिन हैं। यह कार्य शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा नैतिक आचरण तथा चरित्र-निर्माण पर बल देकर किया जा सकता है। ईमानदारी, निष्ठा, राष्ट्रीय भावना ये सब चरित्र निर्माण से ही सम्भव हैं जिन्हें बच्चों से ही प्रारम्भ किया जाना चाहिए। अतः इस कार्य में शालाएँ आदर्श भूमिका निभा सकती हैं। आज का बालक कल का सजग नागरिक होगा, अतः यदि बचपन से ही उचित शिक्षा द्वारा बालक-बालिकाओं में अच्छे नागरिक के गुण विकसित किये जाएँ, तो निःसन्देह ही आगे चल कर ये बच्चे आदर्श नागरिक बनेंगे और आने वाली पीढ़ी में आपराधिकता की प्रवृत्ति स्वयमेव कम होती जाएगी।

उल्लेखनीय है कि भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ जनसंख्या में बेशुमार वृद्धि हो रही है, रूढ़िगत अपराधों के साथ-साथ आर्थिक अपराधों में भारी वृद्धि हुई है। ये अपराध अधिकतर समाज के उच्च एवं मध्यमवर्ग के लोगों के साथ जुड़े हैं जो वर्तमान औद्योगिक, वाणिज्यिक तथा वैज्ञानिक प्रगति की उपज कहे जा सकते हैं। आधुनिक समय में निरन्तर बढ़ती हुई भौतिकवादी प्रवृत्ति के कारण अधिक से अधिक धन कमाने की लालसा बढ़ती जा रही है और यह जीवन का अन्तिम लक्ष्य बन चुका है। परिणामतः नैतिक मूल्यों का दिनोंदिन ह्रास होता जा रहा है और दुर्व्यपदेशन, भ्रष्टाचार, मुनाफाखोरी, काला बाजारी , मिलावट, करों का अपवर्जन आदि ने व्यापार एवं व्यवसाय जगत की

सामान्य तकनीक का रूप धारण कर लिया है। ऐसी स्थिति में समाज में बढ़ती हुई सफेदपोश आपराधिकता के प्रति उदासीनता बरतने के बजाय जनता के सक्रिय सहयोग एवं भागीदारी से इनका निवारण किया जाना ही एकमात्र प्रभावी उपाय है जिसमें कानून सहायक भूमिका निभा सकता है।

ज्ञातव्य है कि आर्थिक अपराध जिन्हें सफेदपोश अपराध के नाम से सम्बोधित किया जाता है अधिकतर ऐसे व्यक्तियों द्वारा कारित होते हैं जो समाज में प्रतिष्ठित एवं सम्भ्रान्त होने के अलावा उच्च-शिक्षित तथा अपने व्यापार या व्यवसाय में निपुण या पारंगत होते हैं। अतः वे इन अपराधों को इतने सुनियोजित तरीके से करते हैं कि साधारणतः इनका पता लगाना मुश्किल होता है। इन अपराधों में केवल एक या कुछ व्यक्ति ही प्रभावित नहीं होते, वरन् सम्पूर्ण राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था पर इनका कुप्रभाव पड़ता है। मुद्रा की जालसाजी, तस्करी, वित्तीय घोटाले, आर्थिक धोखाधड़ी आदि ऐसे जघन्य सफेदपोश अपराध हैं जो राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था और सुरक्षा के लिए संघातक होते हैं।

4.7 लोकपाल तथा राजनीतिक अपराध

लोकपालों की नियुक्ति उच्चासीन लोगों के विरूद्ध भ्रष्टाचार के आरोपों को देखने के लिए एक प्रभावी उपाय सिद्ध हो सकता है। वर्तमान में 11 राज्यों में नियुक्त लोकपाल निष्प्रभावी हो गये हैं क्योंकि कई अयोग्यताएं और कमियाँ रह गई हैं। उनके ही अनुभवों से पता लगा कि लोकपालों के अधिकार विस्तृत किये जाने की आवश्यकता है। उनकी सिफारिशों को कानूनी दर्जा दिया जाना चाहिए। इनकी सिफारिशों को संसद पटल पर रखा जाना चाहिए और प्रचार माध्यमों द्वारा प्रकाशित किया जाना चाहिए। लोकपाल के लिए उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश या दो या तीन अन्य न्यायाधीश होने चाहिए। उनका चयन कार्यपालिका द्वारा न होकर चार लोगों की एक समिति द्वारा होना चाहिए, जिसमें प्रधानमंत्री, भारत के मुख्य न्यायाधीश, लोकसभा के अध्यक्ष, और विपक्ष के नेता होने चाहिए। लोकपाल के पास स्वतंत्र जांचतंत्र होना चाहिए।

अन्त में यह कहा जा सकता है आजकल भ्रष्टाचार लोगों को कोई आघात नहीं पहुँचाता। जब इस प्रकार के कृत्य पकड़े भी जाते हैं, तब भी मंत्री और बड़े अधिकारी तो आजाद घूमते हैं । ज्यादा से ज्यादा उनका स्थानान्तरण कर दिया जाता है। जब भ्रष्टाचार पर नैतिक, कानूनी और सामाजिक प्रतिबन्ध नहीं लगते तब तक इसको समाप्त करने या कम करने की कोई संभावना नहीं है। वैसे भ्रष्टाचार को सभी स्तरों पर जड़ से उखाड़ फेंकना संभव नहीं है, लेकिन इसे सहनशीलता की सीमा तक रोके रखना सम्भव है। भ्रष्टाचार एक कैंसर की तरह है जिससे प्रत्येक भारतीय को सावधान रहना है। आर्थिक

क्षेत्र में सरकारी नियंत्रण की कमी, उदारीकरण की नीति और चुनावी खर्चे में नियंत्रण, भ्रष्टाचार को रोकने के महत्वपूर्ण नुस्खे हो सकते हैं। लोगों ने भ्रष्ट व्यक्तियों को बहुत समय से सहन किया है। अब समय आ गया है जब गम्भीर राजनैतिक शासकों द्वारा भ्रष्टाचार को रोकने की बात को गम्भीरता से लिया जाये।

1968 के बाद लगातार संसद में 10 बार किन्हीं न किन्हीं स्वरूपों में लोकपाल के पद की स्थापना को लेकर विधेयक लाये गये, थोड़ी बहस हुई फिर सत्तारूढ़ दल ने नियमों, बहस में उभरे बिन्दुओं, लोकपाल के अधिकारों को सीमित या असीमित बनाये रखने के प्रश्न को गोलमाल कर ठंडे बस्ते में डाल दिया। कांग्रेस हो या बी.जे.पी. सत्ता में रहते कोई प्रभावशाली लोकपाल के पद के सृजन का इच्छुक नहीं रही, दोनों ही अपने सत्ताकाल में लोकपाल की परिधि मं प्रधानमंत्री को नहीं लाना चाहती। वर्तमान समय में लोकपाल संस्था की स्थापना के लिए नागरिक समाज द्वारा किया जा रहा आन्दोलन एक महत्वपूर्ण कदम है। अन्ना हजारे द्वारा नेतृत्व वाला यह आन्दोलन क्या अपने मकसद में सफल होगा यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है।

4.8 प्रश्न

वस्तुनिष्ठ

(1) अन्ना हजारे एक ..... समाज

1. राजनीतिज्ञ हैं 2. समाज सेवक हैं 3. एक समाज वैज्ञानिक हैं

4. इनमें से कुछ नहीं।

(2) 1962 में जीप खरीद मामले में किस पर आरोप लगे।

1. अर्जन सिंह 2. कृष्णामेनन 3. इन्दिरा गाँधी 4. इनमें से कोई नहीं

लघु उत्तरीय

(1) नये अपराधी व्यक्तित्व पर टिप्पणी लिखें।

(2) वर्तमान समय में चल रहे नागरिक समाज आन्दोलन पर टिप्पणी लिखें।

दीर्घ उत्तरीय

(1) भ्रष्टाचार तथा राजनीति के सम्बन्धों की चर्चा कीजिए। उदाहरणों द्वारा अपने पक्ष को समझाइये।

(2) भ्रष्टाचार तथा राजनीति के सन्दर्भ में नागरिक समाज की भूमिका की चर्चा करें।

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Edwin H. Sutherland and Donald R. Cressey (1968), Principles of Criminology, the times of India press. Bombay.

2. Talcott Parsons (1979), The Social System, Amerind, New Delhi.

3. Robert G. Caldwell (1956), Criminology, Ronald Press, New York.

4. Jones, Stephen (2009), Criminology. Oxford University Press, New York.

5. Singh, Shyamdhar (2008), Theories of Criminology, Sapna Ashok Prakashan, Varanasi.

6. Paranjape, N. V. (1999), Criminology and Penology, Central Law Publications, Allahabad.

इकाई -5 महिलाओं के विरूद्ध अपराध

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 महिलाओं के विरूद्ध अपराध की अवधारणा

5.3 महिलाओं के विरूद्ध अपराध के कारण

5.4 महिलाओं के विरूद्ध हिंसा

5.5 महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा

5.6 महिलाओं के विरूद्ध अपराध नियंत्रण तथा कानून

5.7 प्रश्न

5.8 संदर्भ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त महिलाओं के विरूद्ध अपराध की कानूनी अवधारणा से आपका परिचय होगा। महिलाओं के विरूद्ध अपराध के कारण तथा नियंत्रण के तरीकों तथा कानूनों के बारे में आप समझ सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

आज के समय में महिला प्रताड़ना का ग्राफ बहुत ऊपर चढ़ गया है। पारिवारिक हिंसा, महिलाओं की प्रताड़ना के बढ़ते वेग को कम करने के लिए तथा उनकी सुरक्षा के लिए भारतीय उच्चतम न्यायालय ने घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 का कानून बना दिया था, लेकिन नियम-कायदे न बन पाने की वजह से यह बिना धार के हथियार जैसा था। अब नियम-कायदे बन गये हैं और यह कानून गुरूवार 26 अक्टूबर 2006 से अमल में आ गया है। इस कानून का मुख्य उद्देश्य महिलाओं को पुरूषों की तरह हिंसा से सुरक्षा देना है। इसके तहत बिना विवाह के साथ रहने वाली महिला, विधवा और बहनों को भी सुरक्षा मिलेगी। निमय-कायदों के उल्लंघनों को संज्ञेय आदि जमानती अपराध माना जाएगा।

5.2 महिलाओं के विरूद्ध अपराध की अवधारणा

यद्यपि महिलायें किसी भी अपराध यथा "नरहत्या", "डकैती", "धोखा",

''ठगना'', ''छल-कपट'' आदि से आहत हो सकती हैं, किन्तु केवल उन्हीं अपराधों को महिलाओं के विरूद्ध अपराध कहा जाता है, जो प्रत्यक्षतः विशेष रूप से महिलाओं के विरूद्ध हैं। विस्तृत रूप से महिलाओं के विरूद्ध अपराधों को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है - (1) भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत अपराध तथा (2) विशेष और स्थानीय कानूनों के अन्तर्गत अपराध।

1. भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत अपराध

इसके अन्तर्गत सात प्रकार के अपराधों का उल्लेख किया गया है। ये अधोलिखित हैं -

1. बलात्कार
2. विभिन्न उद्देश्यों के सन्दर्भ में अपहरण एवं भगा ले जाना।
3. दहेज के लिए हत्या, दहेज मृत्यु अथवा उनके प्रयास।
4. उत्पीड़न, मानसिक एवं शारीरिक दोनों।
5. छेड़छाड़
6. लैंगिक संतापन।
7. लड़कियों का आयात, पहले इसे तंग करने या परेशान करने के वर्ग में रखा गया था।

2. विशेष एवं स्थानीय कानूनों के अन्तर्गत अपराध

यद्यपि सभी कानून लिंग विशिष्ट नहीं है।, तथापि पूरे देश में लिंग विशिष्ट कानून जो अपराध सांख्यिकी के लिए अंकित किये जाते हैं वे निम्नलिखित पांच हैं-

1. अनैतिक, अवैध व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956
2. दहेज निषेध अधिनियम, 1961
3. बाल विवाह निरोध (सुधार) अधिनियम, 1979
4. महिला अनुचित प्रतिनिधित्व निषेध अधिनियम, 1986
5. सती (निवारण) अधिनियम, 1987 का आयोग (कमीशन)
6. डोमेस्टिक वायलेन्स एक्ट, 2006

4.3 महिलाओं के विरूद्ध अपराध के कारण

महिलाओं के विरूद्ध जो अपराध किये जाते हैं उनमें बलात्कार, अपहरण, दहेज

मृत्यु , उत्पीड़न, छेड़-छाड़, लैंगिक संताप, लड़कियों का आयात, अनैतिक अवैध व्यापार, स्त्रियों का अश्लील प्रदर्शन इत्यादि प्रमुख हैं। यद्यपि अपराध के सभी प्रकार धार्मिक तथा नागरिक समूहों द्वारा वर्जित हैं और कानून द्वारा भी प्रतिबन्धित है। वे व्यक्ति जो महिलाओं के विरूद्ध ऐसे आपराधिक कृत्य करते हैं, उन्हें हेय एवं घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। परन्तु फिर भी ऐसे अपराधों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। एतदर्थ, इनकी निरन्तरता और कारणों को समझने के लिए समाजशास्त्रीय विश्लेषण की आवश्यकता है।

महिलाओं के विरूद्ध अपराध के कारणों पर यद्यपि व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक अध्ययनों का अभाव है। किन्तु अपराधशास्त्रीय कलेवर का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवलोकन करने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि महिलाओं के विरूद्ध अपराधों के कारणों की व्याख्या व्यक्ति के व्यक्तित्व प्रतिरूपों के आधार पर की जा सकती है। जो उसके जैवजननिक, मनोजननिक, तथा समाजजननिक विशेषताओं का समग्र संगठन है तथा जो उसके आत्मनिष्ठ और प्रत्यक्ष आचरण को सापेक्षतः स्थायित्व प्रदान करता है।

जैवजननिक कारक

व्यक्ति की जैवजननिक विशेषतायें उसकी जैविक संरचनाओं से उत्पन्न होती है। जैविक संरचनाओं के अन्तर्गत कुछ विचारकों जैसे लुईस बेर्मन तथा लाप एवं स्मिथ, काटन, हन्टर तथा बेने आदि ने मूल प्रवृत्तियों, आनुवंशिकता ग्रन्थियों तथा शारीरिक दोषों को अपराधिक व्यवहार के लिए उत्तरदायी ठहराया है। इस संन्दर्भ में महिलाओं के विरूद्ध अपराध करने वालों की जैविक संरचनाओं की अपराधिक तीव्रता को निम्नलिखित सैद्धान्तिक सूत्रों में बांधा जा सकता है -

1. किसी व्यक्ति के मूल प्रवृत्तिजन्य आदिम या जैविकीय स्वभाव का दमन सामाजिक जीवन में जितना अधिक होगा, उसमें महिलाओं के विरूद्ध अपराध करने की प्रवृत्ति उतनी ही अधिक तीव्र होगी।

2. किसी व्यक्ति की ग्रन्थियां जितनी अधिक दोषपूर्ण होगी, उसमें महिलाओं के विरूद्ध अपराध करने की प्रवृत्ति उतनी ही अधिक तीव्र होगी।

3. किसी व्यक्ति में शारीरिक दोष जितने अधिक होंगे उसमें महिलाओं के विरूद्ध असामाजिक व्यवहार करने की प्रवृत्ति उतनी ही अधिक होगी।

यद्यपि वर्मन, स्लाप एवं स्थिम, काटन, हन्टर तथा बेने आदि विद्वानों ने अपने अध्ययनों द्वारा यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि अपराधिता एवं जैवजननित कारकों में सार्थक सम्बन्ध है, किन्तु इन विद्वानो के अध्ययन परिणामों के आधार पर अपराधिता की उत्पत्ति के एक सामान्य नियम का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता है।

इतना अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि व्यक्ति की जैविक संरचनाओं के दोषों के परिणामस्वरूप व्यक्ति के सामाजिक समायोजन में बाधा पहुँचती है और यह बाधा कभी कभी विचलनकारी व अपराधिक व्यवहार के जनन में प्रेरक कारक सिद्ध होती है।

मनोजननिक कारक

महिलाओं के विरूद्ध अपराध के उद्गम स्रोत के सन्दर्भ में एक अन्य धारणा मनोजननिक कारकों की है जो प्रमुखतः मनोचिकित्सकों, मनोविश्लेषणवादियों एवं मनोवैज्ञानिकों की देन है। इन सिद्धान्तवादियों का मत है कि बुद्धि तथा अन्य मानसिक योग्यताएं जैसे - मनोजननिक तथ्य व्यक्तित्व गुण की भी विशिष्टाताएं व्यक्ति में अपराधिता को जन्म देती है। इन सिद्धान्तकारों के मतों को निम्नलिखित सैद्धान्तिक सूत्रों में रखा जा सकता है -

1. मनोजननिक विलक्षणताओं का जितना अधिक प्रादुर्भाव होगा, व्यवहार में अपराधिता की सम्भावना उतनी ही अधिक बढ़ जायेगी।
2. बुद्धि एवं मानसिक योग्यताओं की विलक्षणता एवं अपराधिता में गहरा सम्बन्ध है।
3. किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व जितना अधिक दोषपूर्ण होगा, उसका व्यवहार सामाजिक-सांस्कृतिक परिभाषाओं में उतना ही अधिक विपरीत दिशा में होगा।

महिलाओं के विरूद्ध अपराधिक व्यवहार के सन्दर्भ में मनोजननिक कारक जैसे - बुद्धि व मानसिक योग्यताएं, व्यक्तित्व गुण जैसे आत्म की अवधारणा तथा व्यक्तित्व गुण यद्यपि महत्वपूर्ण भूमिका निभातें हैं । फिर भी अपराधिक व्यवहार की सम्पूर्ण व्याख्या इनके आधार पर नहीं की जा सकती है। इस सन्दर्भ में कोई स्पष्ट प्रभाव उपलब्ध नहीं है कि अमुक व्यक्तित्वगुण सदैव महिलाओं के विरूद्ध अपराधिक व्यवहार से सम्बद्ध है।

समाजजननिक कारक

जैवजनिक एवं मनोजननिक कारकों के अतिरिक्त व्यक्तित्व संगठन का एक अन्य पक्ष समाजजननिक है। इन तीनों की समग्रता का परिणाम व्यक्तित्व है। समाज, जननिक कारकों के अन्तर्गत सामाजिक सम्बन्ध, समाजीकरण की प्रक्रिया, संस्कृति, सामाजिक नियन्त्रण की व्याख्या तथा सामाजिक संरचना की प्रमुख भूमिका है। इनसे सम्बन्धित अनुभवों के आधार पर ही समाजजननिक व्यक्तित्व गुणों व मनोवृत्तियों का निर्माण होता है। अतः यहां इस सन्दर्भ में विचार किया जा सकता है कि विभिन्न समाजजननिक कारक क्या हैं? ये किस प्रकार महिलाओं के विरूद्ध अपराध की पृष्ठभूमि निर्मित करते हैं तथा इस पृष्ठभूमि के आधार पर निर्मित मनोवृत्तियां किस रूप में महिलाओं के विरूद्ध

अपराधिक व्यवहार को जन्म देती हैं। अतः महिलाओं के विरूद्ध अपराधिक व्यवहार के समाजजननिक कारकों के परिणामों को सैद्धान्तिक सूत्रों के रूप में इस प्रकार रखा जा सकता है।

1. पारिवारिक तथा वैवाहिक कुसमायोजनद की समस्या जितनी गम्भीर होगी, महिलाओं के विरूद्ध अपराध की दर उतनी ही होगी।

2. सामाजिक समूहों के मध्य सामाजिक सम्बन्धों में टूटने की तीव्रता जितनी ही अधिक होगी, उनमें महिलाओं के विरूद्ध अपराध करने की प्रवृत्ति उतनी ही अधिक होगी।

3. सामाजिक आदर्शमानकों एवं मूल्यों के प्रति व्यक्तियों का भावात्मक लगाव जितना ही कम होगा, वे भावावेश में महिलाओं के विरूद्ध अपराध उतना ही अधिक करेंगे।

4. सामाजिक नियन्त्रण के अभिकरण या साधन व्यवहार के नियमन में जितने ही अधिक कमजोर होंगे, महिलाओं के विरूद्ध अपराधिक व्यवहार उतने ही अधिक होंगे।

5. समाज द्वारा स्वयं अपराधिक कृत्यों को प्रोत्साहन जितना ही अधिक दिया जायेगा। महिलाओं के विरूद्ध अपराध उतने ही अधिक होंगे।

6. सांस्कृतिक लक्ष्यों एवं संस्थागत साधनों के बीच असन्तुलन की मात्रा जितनी ही अधिक होगी, महिलाओं के विरूद्ध अपराधिक व्यवहार की सम्भावना उतनी ही अधिक होगी।

7. सामाजिक संरचना की प्रकृति जितनी ही अधिक विचलनकारी या विपथगमनात्मक या अपराधिक होगी, लोगों में महिलाओं के विरूद्ध अपराध करने की प्रवृत्ति उतनी की अधिक होगी।

8. सामूहिक अभिवृत्तियां जितनी ही अधिक विचलनकारी व अपराधिक होंगी, महिलाओं के विरूद्ध अपराध करने की मनोवृत्तियाँ उतनी ही अधिक होगी।

5.4 महिलाओं के विरूद्ध अपराध को नियन्त्रित करने के उपाय

महिलाओं के विरूद्ध अपराध को नियन्त्रित करने के सन्दर्भ में हम निम्नलिखित उपायों को निर्दिष्ट कर सकते हैं -

1. महिलाओं के प्रति लोगों में समाज की परम्परागत धारणा के प्रति विकर्षण, अनास्था तथा घृणा औ ी वर्ग के लिए प्रेम और श्रद्धा के भाव जागृत करना।

2. पुरूष प्रभुत्व समाज में व्यक्ति के रूप में महिलाओं की पहचान कराने की आवश्यकता।

3. शोषण और दमन के विरोध में महिलाओं का संघर्ष।

4. जन आन्दोलनों द्वारा महिलाओं में उनके अधिकारों के प्रति चेतना जागृत करना।

5. सामाजिक कानूनो को अधिक प्रभावशाली बनाना तथा उनके हितार्थ और नये विधान बनाना।

6. वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति को स्त्रियों के दमन और शोषण के परम्परागत रचनातन्त्र को चुनौती देने योग्य बनाना।

7. पारिवारिक न्यायालयों का विस्तार करना तथा वादों का शीघ्रातिशीघ्र निस्तारण करना।

8. न्यायाधीशों द्वारा असहाय, पीड़ित तथा संकोचशील स्त्रियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण न्याय करना।

9. पीड़ित महिलाओं के लिए उद्धारगृहों की स्थापना करना तथा

10. पीड़ित महिलाओं के लिए महिला आवासों का निर्माण करना।

इन उपर्युक्त उपायों के अतिरिक्त महिलाओं को इस पुरूष प्रभुत्व समाज में व्यक्ति के रूप में स्वयं पहचान बनानी होगी, तभी उनका उत्पीड़न शोषण और दमन बन्द होगा। ज्ञातव्य है कि जब भी कोई महिला अपने आपको एक व्यक्ति के रूप में पहचान प्रकट की है, उसको अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। किन्तु हिम्मत हारने की बात नहीं है। यह स्वीकार करने योग्य है कि महिलाएं पुरूषों से किसी भी तरीके से कमजोर नहीं हैं। भारत के विकास में उनका बहुत योगदान रहा है। ब्रिटिश राज्य के विरूद्ध स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने हिस्सा लिया। भारत के इतिहास में उन कठिन समय में उन्होंने बहुत सामाजिक कार्य किया। राष्ट्रीय हित में महिलाओं के अत्याधिक योगदान के बावजूद भी उनका शोषण किया जाता है। स्त्रियों का दमन और शोषण इसलिए होता है क्योंकि वे प्रायः अपने को अधमाधम एवं निरीह प्राणी के रूप में समझती हैं। इसके विपरीत उनकी प्रतिष्ठा श्रम और पौरूष पर ही आधृत हो सकती हैं। इन दोनों के अभाव में स्त्री जाति का नाश अवश्यम्भावी है।

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा

आजकल शायद ही कोई विषय सामाजिक विज्ञानों में शोधकर्ताओं, केन्द्रीय

और राज्य सरकारों, योजना दलों और सुधारकों का ध्यान इतना आकृष्ट करता हो जितना कि महिलाओं की समस्याएँ। महिलाओं की समस्याओं के अध्ययन के उपगम जरा-विज्ञान (वृद्ध होने के प्रक्रियाओं का अध्ययन) से अध्ययन से लेकर मनोरोग विज्ञान और अपराध विज्ञान तक होते हैं। परन्तु महिलाओं से संबंधित एक महत्वपूर्ण समस्या जिस पर ध्यान नहीं दिया गया है और जिससे बचा गया है, वह है महिलाओं के विरूद्ध हिंसा की समस्या।

महिलाओं का उत्पीड़न

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा का समस्या कोई नई नहीं है। भारतीय समाज में महिलाएँ एक लम्बे काल से अवमानना, यातना और शोषण का शिकार रही हैं, जितने काल के हमारे पास सामाजिक संगठन और पारिवारिक जीवन के लिखित प्रमाण उपलब्ध हैं। आज शनैःशनैः महिलाओं को पुरूषों के जीवन में महत्वपूर्ण प्रभावशाली और अर्थपूर्ण सहयोगी माना जाने लगा है। परन्तु कुछ दशक पहले तक उनकी स्थिति दयनीय थी। विचारधाराओं, संस्थागत रिवाजों, और समाज में प्रचलित प्रतिमानों ने उनके उत्पीड़न में काफी योगदान दिया है। इनमें से कुछ व्यावहारिक रिवाज आज भी पनप रहे हैं। स्वाधीनता के पश्चात हमारे समाज में महिलाओं के समर्थन में बनाये गये कानूनों महिलाओं में शिक्षा के फैलाव और महिलाओं की धीरे-धीरे बढ़ती हुई आर्थिक स्वतंत्रता के बावजूद असंख्य महिलाएँ अब भी हिंसा का शिकार हैं। उनको पीटा जाता है, उनका अपहरण किया जाता है, उनके साथ बलात्कार किया जाता है, उनको जला दिया जाता है या उनकी हत्या कर दी जाती है। वे कौन सी महिलाएँ हैं जिन्हें उत्पीड़ित किया जाता है? उनको उत्पीड़ित करने वाले और हिंसा के अपराधकर्ता कौन लोग हैं? महिलाओं के विरूद्ध हिंसा के मूल कारण क्या हैं? कुछ विद्वानों ने , जिन्होंने पाश्चात्य समाज में इन पहलुओं का अध्ययन किया है, इस समस्या की व्याख्या के लिए 'व्यक्तित्व' उपागम और 'परिस्थिति' उपागम का उपयोग किया है। परन्तु इन दोनों उपागमों के कई बिन्दुओं को लेकर उनकी आलोचना हुई है।

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा की प्रकृति और विशेषताएँ

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा का वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है :

1. अपराधिक हिंसा जैसे बलात्कार, अपहरण हत्या।
2. घरेलू हिंसा जैसे दहेज संबंधी मृत्यु, पत्नी को पीटना, लैंगिक दुर्व्यवहार, विधवाओं और/या वृद्ध महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार -

3. सामाजिक हिंसा जैसे पत्नी/पुत्रवधू को मादा भ्रूण की हत्या के लिए बाध्य करना, महिलाओं से छेड़-छाड़, सम्पत्ति में महिलाओं को हिस्सा देने से इंकार करना, अल्पवयस्क विधवा को सती होने के लिए बाध्य करना, पुत्र वधू को और अधिक दहेज लाने के लिए सताना।

बलात्कार

यद्यपि बलात्कार की समस्या सभी देशों में गम्भीर मानी जाती है फिर भी सांख्यिकी रूप में भारत में पाश्चात्य समाज की तुलना में इतनी गम्भीर नहीं है। उदाहरणार्थ, अमेरिका में बलात्कार के अपराधों की प्रति लाख प्रतिवर्ष दर लगभग 26 है, कनाडा में यह लगभग 8 है इंग्लैण्ड में यह प्रति एक लाख जनसंख्या पर लगभग 5.5 है। इसकी तुलना में भारत में इसकी दर 0.5 प्रति एक लाख जनसंख्या है। हमारे देश में 1996 और 1998 के बीच हुए बलात्कार के मामलों की संख्या को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक चार घंटों में सात बलात्कार होते हैं या प्रतिवर्ष 15,000 मामले होते हैं। केन्द्रीय सरकार द्वारा "महिलाओं के विरूद्ध अपराध" पर प्रस्तुत की गयी एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में प्रत्येक 40मिनट में एक महिला का बलात्कार होता है। इसका अर्थ हुआ कि एक महीने में 1,275 तथा एक वर्ष में 15,300 बलात्कार होते हैं।

आयु के हिसाब से बलात्कार के शिकार की प्रतिशतता 16 से 30वर्ष के आयु समूह में सर्वाधिक है (56.0 प्रतिशत), जबकि 10 वर्ष से कम आयु के शिकार लगभग (4.2 प्रतिशत) है, 10 और 16 वर्ष के बीच आयु के शिकार लगभग (22.8 प्रतिशत) है, तीस वर्ष से ऊपर के शिकार (17.0 प्रतिशत) हैं गरीब लड़कियाँ ही अकेली बलात्कार का शिकार नहीं होतीं, अपितु मध्यम वर्ग की कर्मचारियों के साथ भी मालिकों द्वारा लैंगिक अपमान किया जाता है। जेल में कैद महिलाओं के साथ अधीक्षकों द्वारा बलात्कार किया जाता है, अपराध संदिग्ध महिलाओं के साथ पुलिस अधिकारियों द्वारा, महिला मरीजों के साथ अस्पताल के कर्मचारियों द्वारा, और रोजाना वेतनभोगी महिलाओं के साथ ठेकेदारों और बिचौलियों द्वारा यहाँ तक कि बहरी और गूँगी, पागल और अंधी और भिखारिनों को भी नहीं छोड़ा जाता। निम्न मध्यम श्रेणी से आई हुई महिलाएँ जो कि अपने परिवारों का प्रमुख रूप से भरण पोषण करती हैं लैंगिक दुर्व्यवहार को खामोशी से और बिना विरोध किये सहन करती रहती है। यदि वे विरोध करती हैं तो उन्हें सामाजिक कलंक और अपमान का सामना करना पड़ता है इसके अतिरिक्त उन्हें पाप की पीड़ा और व्यक्तित्व के रोग भयंकर रूप से सताते हैं।